सैद्धान्तिकी

समय–समाज के संदर्भों की शोध–पत्रिका

संपादक

डॉ॰ व्रज कुमार पाण्डेय

डॉ॰ दीपक कुमार राय

अलका पब्लिकेशन्स

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I

दिल्ली-110091

वर्ष : 9 **अंक** : 3 ❑ जुलाई–सितम्बर, 2016

सैद्धान्तिकी

सैद्धान्तिकी भारत में समाचार पत्रों के निबंधक (आर.एन.आई.) द्वारा अनुमोदित है।

संरक्षकः
डॉ० नवल किशोर
डॉ० पी. एन. सिंह
डॉ० एस. त्रिपाठी

परामर्शः
डॉ० गिरीश मिश्र
डॉ० आर. एन. कुमार
डॉ० जी. पी. ओझा

संपादक मंडलः
डॉ० शशिकांत राय
डॉ० कृष्ण कुमार सिंह
डॉ० अनिल कुमार सिंह
डॉ० अमर कान्त सिंह

प्रबंध संपादकः
डॉ० साद बिन हामिद

साज-सज्जा :
पंकज कुमार झा

संपादकीय सम्पर्कः

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-1,
दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 47541851
e-mail : editorialindia@gmail.com

मूल्य : ₹ 1500.00

मुद्रक एवं प्रकाशक शैलेन्द्र सेंगर द्वारा 448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091 से प्रकाशित तथा शिव शक्ति प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा दिल्ली-32 से मुद्रित

नोट :

पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

Editorial

The key to harnessing India's demographic dividend is education. Indian higher education currently the third largest in the world, is likely to surpass the US in the next five years and China in the next 15 years to be the largest system of higher education in the world. Indian higher education has a complex structure riddled with many contradictions, still has great possibilities. By 2030, India will be amongst the youngest nations in the world. With nearly 140 million people in the college-going age group, one in every four graduates in the world will be a product of the Indian education system. Higher education in India has recorded impressive growth since Independence. University Grants Commission (UGC), by designing programmes and implementing various schemes through academic, administrative and financial support, has contributed in the growth and development of Indian higher education. In the changing landscape, entrance of private universities is a game changer. Many new institutions of medicine, science, technology and others have been introduced. We have gross enrollment ratio of about 17.9% now, while an ambitious target of 25.2% has been envisaged by the end of 12th Plan. A major concern for India is creation of employable workforce to harness our demographic dividend. According to Industry reports supported by NASSCOM, only 25% of technical graduates and about 15% of other graduates are considered employable by IT/ITES industry. Another survey conducted on 800 MBA students across different cities in India revealed that only 23% of them were considered employable. Hence, there is an immediate need for a holistic and symbiotic association between industry and academia to make employable graduates. There is also an immediate need for moving from 'generic model' of education to a 'learner-centred' model of education. The students should be mentored to make their careers in the areas of their strength and abilities.

Currently, there are lots of issues regarding governance and autonomy of such educational institutions, which create major road blocks in performance and require urgent attention. There are several legal and regulatory hurdles to create quality institutions in India. For example, ISB Hyderabad is the only B-School from India which features in Top-20 in Financial Times list, but it cannot grant a recognized MBA degree due to legal and regulatory constraints. There is an immediate need for transforming governance and leadership in higher education Institutions. Last but not the least, to achieve GER as envisaged in our 12th Plan and harness our demographic dividend, it is important to allow not-for profit institutes to bring large-scale investments from Indian promoters and global educational institutes as has been done in the Healthcare sector. This step can truly transform the Education sector and India can become the knowledge capital of the world.

—Editor

इस अंक में

गृह विज्ञान

बाल अपराध के कारकों एवं उनके उपचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन–*डॉ० अलका* 7

पंचायती राज में महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका–*डॉ० रश्मि कुमारी* 15

भारत सरकार की स्वास्थ्य के सन्दर्भ में नीति एवं कार्यक्रम–*श्वेता कांता* 25

पत्रकारिता

आपातकाल की भूमिगत पत्रकारिता–*डॉ० अरूण कुमार भगत* 47

भारत में समाचार पत्रों की वर्तमान प्रवृतियां–*अश्विनी कुमार* 57

इतिहास

हड़प्पाई धर्म–*प्रीतम सिंह सारसर* 69

असहयोग आन्दोलनोपरांत 1930 तक चम्पारण में गांधी प्रभाव की निरंतरता–*कुमारी नीतू* 73

मुंडा जनजाति और समावेशी विकास: मुंडा महिलाओं के विशेष संदर्भ में–*श्रीमन नारायण पाठक* 78

और गाँधीजी बोल उठे - 'चम्पारण की लड़ाई फतह हो गई!'–*विनीता कुमारी* 84

भारत-बर्मा संबंध (1900-1923)–*इन्द्रकान्त* 89

डॉ० लोहिया का आर्थिक दर्शन: एक दृष्टि में–*मनोरंजन कुमार 'मयंक'* 93

हिन्दी

मनीषी कथाकार व्यक्तित्त्व: आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री–*डॉ० नीलम कुमारी* 96

राजनीति विज्ञान

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005: एक समीक्षा–*सुनील कुमार* 99

ब्रिटिश भारत में छापखाना (प्रेस) एवं इसका प्रभाव–*कुमारी रीना* 105

वैश्वीकरण की राजनीति और भारत–*अंजनी कुमार घोष* 108

संस्कृत

महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व–*डॉ० प्रसून दत्त सिंह* 114

हमारे संस्कृति में संस्कार–*मनीष कुमार भारती* 118

काशी का धार्मिक जीवन–*राधिका कुमारी* 120

द्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप–*आशुतोश कुमार* 122
श्रीहरिनामामृत व्याकरण में वर्णित संज्ञाओं का वैशिष्ट्य–*चित्रा भारद्वाज* 129
वैदिकसाहित्ये विवाहसंस्कारस्य वैशिश्ट्यम्–*डॉ महेन्द्र पाण्डेय* 134

मैथिली

आलोचना आ साहित्यवृद्धि: विश्लेषणात्मक अध्ययन–*सरोज कुमार* 138

दर्शनशास्त्र

राजा राममोहन राय के सामाजिक-पुनर्जागरण की दार्शनिकता–*सुमन कुमारी* 141

शिक्षाशास्त्र / मनोविज्ञान

उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन–*अलका कुमारी; डॉ० अनीता शर्मा* 144

पी.एच.डी.

प्रेसमड (मैली) से बनी जैविक खाद का जनपद मुजफ्फरनगर के कृषि क्षेत्र में योगदान–*डॉ० रश्मि तायल* 150

गांधी विचार

खादी से आर्थिक स्वावलम्बन: गांधी जी के विचारों के संदर्भ में–*अक्षय कुमार* 159

COMMERCE

Management of Microfinance for Rural Development in India: A Review—*Dr. Dilip Kumar Sahu* 163
Reforms in Indian Capital Markets—*Dr. Lakshman Singh* 168
Impact of T.V Advertisements on Buying Pattern of Adolescent Girls—*Bhawya Sachdeva Mukhi* 173

ECONOMICS

FDI in the Field of Promoting Information Technology and Communication—*Dr. Antara Kumari* 179

EDUCATION

The Girl Child Education: Policies and Problems—*Shazia Fatma* 182

ENGLISH

Wordsworth and Coleridge: A Comparative Study—*Dr. Arun Kumar* 187
Feminism and Shashi Deshpande's Feminism—*Dr. Ranjit Kumar* 192
Wordsworth and His Predecessors—*Mayank Ranjan* 197

LAW

Company Act, 2013 is a New Wine in a Small Bottle:
A Study—*Anjay Kumar* 204

GEOGRAPHY

Impact of Agriculture Development on Water Resources
—*Om Prakash and Dr. Shiv Raj Singh Tomar* 213

PSYCHOLOGY

Educational Achievement and Family Environment
—*Dr. Lakshmeshwar Thakur; Smt. Rashmi* 220

ARABIC

Development of Arabic Fiction during Twenty Century—*Farida Parbin* 224

HOME SCIENCE

Impact of Mal Nutrition on the Health of Child Labour:
An Analysis—*Sushma Kumari* 231

HISTORY

Themes in Early Medieval India: An Analysis of The Whole Era
—*Manisha Malik* 239

JOURNALISM

Future of Print Journalism in the Time of Mobile and Internet
—*Tej Narayan Ram* 249

बाल अपराध के कारकों एवं उनके उपचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० अलका

एसोसिएट प्रोफेसर, (गृह विज्ञान),
वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर

प्रस्तावना

प्रत्येक देश तथा समाज की अपनी नीतियां, रीतियां तथा परम्परायें होती हैं। इनका पालन समाज के सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य होता है चाहे सदस्य के रूप में प्रौढ़ व्यक्ति हो या बालक। बालकों में अनुभवों तथा परिवक्तता की कमी होने के कारण शरारती होना एक सामान्य लक्षण है। किन्तु ये शरारतें एवं नटखवन जब ऐसी सीमाओं का उल्लंघन करने लगता है जिससे सामाजिक मार्यादाओं तथा कानूनों का उल्लंघन होने लगता है तब इस स्थिति को बाल-अपराध की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान समय में बच्चों का स्वभाव सृजनात्मक कम विध्वंसात्मक अधिक हो गया है। अधिकांश बच्चे अपराधिक प्रवृत्ति के हो गए हैं चाहे बालिग हो या नाबागि हो पूर्णरूप से व्यवसायिक आवरण से ढंका हुआ है जिसका परिणाम नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन के रूप में देखने को मिल रहा है। बच्चों की मानसिकता ने विकृत रूप ले लिया है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि कोई भी राष्ट्र महान नहीं बन सकता जब तक उसमें निवास करने वाले लोगों की विचारधारा एवं कार्य संकुचित होंगे। आज बच्चों की मानसिकता बहुत संकुचित हो गई है वह बहुजन हिताय के स्थान पर स्वहिताय की बात करते हैं। आज बच्चों में स्वार्थ घृणा हिंसा नफरत एवं पालायन प्रवृत्ति का बोलबाला है। भारत में कुछ वर्षों में बाल-अपराधों में तेजी से वृद्धि हो रहे हैं जो आँकड़े हमारे समक्ष आ रहे हैं वो चौंका देने वाले हैं। सन् 1951 में केवल 12000 बच्चों ने अपराध किए थे वही आज बच्चों के द्वारा किए जाने वाले अपराधों की संख्या बढ़कर 1.27 लाख से अधिक हो गई है। भारत के गृह मंत्रालय से प्रकाशित एक रिपोर्ट से स्पष्ट होता है कि पिछले 10 वर्षों में जहाँ लड़कों के द्वारा बाल अपराध में 10.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, वही लड़कियों में बाल अपराध 21.6 प्रतिशत बढ़ गए हैं। बाल अधिनियम 1960 के अनुसार 7 से 16 वर्ष के लड़कों तथा 7 से 18 वर्ष की आयु लड़कियों के द्वारा किए जाने वाले कानून विरोधी व्यवहार बाल अपराध के अन्तर्गत आते हैं। सीरिल वर्ट ने कहा है किसी बच्चे द्वारा किए जाने वाले समाज विरोधी व्यवहार जब इतना बंभीर हो जाता है कि राज्य द्वारा उसे दंड देना आवश्यक हो जाए केवल तभी उस व्यवहार को हम बाल अपराध कहते हैं तथा उसके अनुसार यह बालक 5 से 18 की आयु के होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि एक निश्चित आयु से कम बच्चों द्वारा जुआ खेलना, जेब काटना, चोरी करना तस्करी में सहायता करना, यौनिक दुराचरण करना अव्यवस्थाएं फैलना, तोड़फोड़ करना, किसी पर साधारण आघात

करना इत्यादि बाल अपराध की श्रेणी में आते हैं। 1897 में भारत में बने Refmatory School के अनुसार 15 वर्ष तक के बालकों के समाज विरोधी कार्य को बाल अपराध माना जाता है।

1990 में बाल अपराधियों पर किये गये अध्ययन से यह पता चला कि बाल अपराधियों द्वारा किए गए अपराधों में 321 हत्यों 185 अपहरण 96 डकैतियों 174 लूटमाटर तथा 9.155 चोरी से संबंधित अपराध थे। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि ऐसे अपराध करने वाले की उम्र 7 से 21 वर्ष से थी।

भारत में बाल अपराध की समस्या एक गंभीर समस्या है। इस संबंध में जे.सी. दत्त ने कहा है भारत में बाल-अपराध बड़ी तीव्र गति के साथ एक गंभीर संकट होता जा रहा है और देश के विभिन्न भागों के जो आज से कुछ वर्ष पूर्व अनिवार्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के ही एक अंग थे प्रगतिशील औद्योगिक के साथ-साथ यह समस्या अनेक पश्चात्य देशों में उपलब्ध स्थान को शीघ्र ही ग्रहण कर लेगी।

एक अध्ययन से पता चलता है कि बाल अपराध की समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में भी गंभीर है। सर्वेक्षण से यह भी प्रकट हुआ है कि शहरों में 17 प्रतिशत की तुलना में गांवों में 7 से 21 वर्ष के वय: समूह वाली कुल किशोर जनसंख्या के 11 प्रतिशत बालकों द्वारा अपराधी कार्य किये गये थे।

बाल अपराध की परिभाषा

न्यूमेयर के अनुसार- बाल अपराध को परिभाषित करते हुए Juvenile Delinquency In Modern Society में लिखा है। अत: बाल अपराध का अर्थ समाज विरोधी व्यवहार का कोई प्रकार है। वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक विघटन का समावेश करता है। इसमें एक निर्धारित आयु से कम आयु का वह व्यक्त होता है जो समाज विरोधी कार्य करता है तथा कानून की दृष्टि से अपराधी होता है।

सिटिल वर्ट- बालक के उस समय के कार्यों को बाल अपराध के रूप में परिभाषित करते हैं। जब अथवा किया जाना अनिवार्य हो जाए।

बाल अपराध के कारक

1. आनुवंशिक कारक- बाल अपराध के अनेक कारकों में आनुवांशिक कारक प्रमुख है। अनेक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तियों में अपराधिक प्रवृत्ति जन्म से ही पाई जाती है। इनके अनुसार अपराधियों के कुछ विशेष शारीरिक तथा मानसिक लक्षण होते हैं। इटैलियन सम्प्रदाय के प्रमुख Cesare Lombrasso एवं उनके शिष्य Ferri के अतिरिक्त Maundlsey Dugdate आदि ने अपराध का कारण वंशानुक्रम माना है। इस संदर्भ में Valentine का यह मत उद्धरित करना यहाँ अनुपयुक्त होगा अपराधिक प्रवृत्तियों में आनुवंशिक लक्षणों द्वारा ही प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

2. शारीरिक कारक- बालकों में शारीरिक दोष एवं अस्वस्थ शरीर के चलते यह समस्या देखी जाती है। यह तभी होता है जबिक बच्चों को पौष्टिक भोजन प्रर्याप्त नहीं प्राप्त होता है। जिसे शारीरिक दुर्बलता आ जाती है। वह अपने हम उम्र बालकों की तुलना में स्वयं को कमजोर एवं पिछड़ा मानता है। फलत: हीनता वश असामान्य व्यवहार करने लगता है साथ ही सामाजिक अपमान का सामना भी करना पड़ता है जिससे उसका व्यवहार आसमान्य हो जाता है जिसमें वह अपराधिक कार्यों को करने लगता है।

3. परिवारिक कारक- बाल अपराध के संदर्भ में किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है।

1. Johnson ने अमेरिका बोस्टन एवं शिकागों नगरों के 4000 अपराधी बालकों का अध्ययन किया और 2000 अपराधी बालकों को भग्न परिवार से संबंध पाया।
2. Healy and Broner ने अमेरिका बोस्टन एवं शिकागों नगरों के 4000 अपराधी बालकों का अध्ययन किया और 2000 अपराधी बालकों को भग्न परिवार से संबंध पाया।
3. Eliot ने अपने अध्ययन में अनैतिक परिवारों की 67 प्रतिशत लड़कियों में तथा Burt ने 54 प्रतिशत लड़कों में आपराधिक प्रवृत्तियों को प्राप्त किया।
4. Glueck ने अपने अध्ययन में यह परिणाम प्राप्त किया 66 अपराधी बालक ऐसे परिवारों के थे जिसकी दैनिक आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती थी। इसी प्रकार 252 अपराधी बालकों को ऐसे परिवारों से प्राप्त किया जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में अत्यधिक कठिनाई का अनुभव करते थे। Valentine ने अत्याधिक निर्धन परिवारों से बाल अपराध को प्राप्त किए।
5. बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार से भी यह प्रवृत्ति जन्म लेती है।
6. **संस्कृति कारकः**- साधारण व्यक्ति अपने बोलचाल में समूह के शिवसो मूल्यों आदर्शों खानपान, वेशभूषा और रहन-सहन के साधनों को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति में उचित और अनुचित की एक धारण होती है। संस्कृति व्यक्ति को बताती है कि क्या उचित और क्या अनुचित है। मागरेट मीड ने Neuginea के तीन जनजातीय समूहों का अध्ययन किया जो भौगोलिक रूप से काफी निकट रहते हुए भी अलग-अलग रहते थे। पहाड़ों में रहने वाले जरायुपेश सहयोगपूर्ण स्नेहपूर्ण तथा शक्तिप्रिय थे। उनमें द्वन्द्व और आक्रमक व्यवहार का सर्वथा अभाव था। नदी तट पर रहने मुण्डुगूमर जनजाति के लोग अत्यंत आक्रमक थे। पुरूष तथा महिलाएं सभी झगड़ालू और प्रभुत्व आंकाक्षी थे। वही निकट ही झील के पास बसे शम्बुली जनजाति वाले लोगों से महिलाओं अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय निभाने के कारण पुरूषों पर वर्चस्व बनाये हुए हैं। ये संस्कृति उनके बालक-बलिकाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई।
8. **नगरीकरण**- नगरीकरण औद्योगिकरण को बढ़ावा देता है। औद्योगिकरण मशीनीकरण को बढ़ावा देता है। मशीनीकरण ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया है। लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन हुआ है। ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन होने लगता है। नगरीकरण के कारण गंदी बस्तियों का फैलाव व्यवसायों एवं उद्योगों उद्योग धंधों में विभिन्नता कृत्रिमता व्यक्तिवादिता खर्चीला जीवन पारिवारिक अस्थिरता एकाकी परिवार प्रतिस्पर्धा बालश्रम माताओं का काम पर जाना मादक पदार्थों का सेवन संबंधों की अस्थिरिता कारण बाल अपराध को जन्म दे रहे हैं।

बाल अपराध का उपचार

बाल अपराध वर्तमान समय में देश में कैन्सर जैसी गंभीर बीमीर के समान फैल रहा है जिसका समय रहते उपचार जरूरी है। अतः अध्ययनों द्वारा यह उपचार प्राप्त हुये।

1. मनोवैज्ञानिक विधियों।
2. वैधानिक विधियों।
3. परिवार विद्यालय समाज द्वारा निवारण।

4. मनौवैज्ञानिक विधियां-

(अ) मनोविश्लेषण - इस विधि का प्रयोग करने में मनोविश्लेषक अपराधी बालक के अचेतन मन का अध्ययन करता है। वह इन इच्छाओं तथा संवेगों का पता लगाता है जिनका का दमन कर दिया गया था। उनके आधार पर यह जानने का प्रयास करता है कि बालक के अपराधी बनने का क्या कारण हो सकता है। यदि बालक मनोविश्लेषक को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें तो अपराधी बालक उपचार करने के लिए यह एक सफल विधि प्रमाणित हो सकती है।

(ब) खेल चिकित्सा- जब बालकों को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का अवसर नहीं प्राप्त होता है तो उनमें असमाजिक अवैधानिक एवं अनैतिक कार्यों को करने के लिए उत्तेजना प्राप्त होती है। जब उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का दमन कर दिया जाता है तो उनकी अभिव्यक्ति विध्वंसात्मक कार्यों के रूप में होती हैं। अत: इस बात का प्रयास करना चाहिए कि उनको रचनात्मक प्रवृतियों की अभिव्यक्ति का सुवअसरन प्राप्त हो।

खेल चिकित्सा में बच्चों को घर बनाने या किला बनाने जैसे कार्यों को करने के लिए दिया जाता है। ऐसे कार्यों को करने से उसे संतुष्टि प्राप्त होती है ओर मन विकारों के प्रभावों से दूर रहता है। इस चिकित्सा से बच्चों में समाजिकता, सहयोग भ्रतृत्व के गुणों का विकास किए जाने वे बाल अपराधों को समाप्त किया जा सकता है। (1/4 Medinnus And Johnson)

(स) मनोअभिनय : इस विधि का सर्वप्रथम उपयोग J.L. Moreno ने 1946 में किया। इनके अनुसार इस अभिनय विधि में बालक को एक काल्पनिक भूमिका का अभिनय करने के लिए कहा जाता है। जिससे वह अपने संवेगों को प्रकट कर सकें। अभिनय करते समय बालकों के संवेगों, विचारों तथा तनावों की स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्ति होती है। मनोअभिनय के पश्चात् बालक शांति एवं संतुष्टि अनुभव करता है। परिणाम स्वरूप उसके व्यवहार में संतुलन पाया जाता है ऐसे अभिनय में बालक में तन्यमयता पाई जाती है और वह अपने संवगों की अभिव्यक्ति बिना किसी संकोच के करता है मनोअभिनय से उसकी दमित इच्छाओं संवेगों की अभिव्यक्ति सरलता से होती है। इस अभिनय में अनेक तरह की भूमिकाओं में से किसी एक मनचाही भूमिका का चयन करके बालक से अभिनय करेन को कहा जाता है।

(द) अंगुली चित्रण- मनौवैज्ञानिक अंगुली चित्रण द्वारा भी मनोवैज्ञानिक उपचार करते हैं। इसमें बालक लाल, पीले, हरे, नीले रंगों का प्रयोग करके अंगुलियों के द्वारा एक कोरे कागज पर पेन्टिंग करता है। बालक दिए गए रंगों में से मनचाहे रंगों का प्रयोग करके मन चाहा चित्र बनाता है। ऐसा करने में सवेंगात्मक तनावों की अभिव्यक्ति होती है।

(II). वैधानिक विधियां-अधिनियम

बाल अपराध एक गंम्भीर समस्या है इसलिए इनको सुधारने की दिशा में प्राय: सभी राष्ट्र प्रयत्नशीला है। इसके लिए सन् 1920 में मद्रास में बाल अधिनियम पारित किय सन् 1922 में बंगाल में 1924 में मुम्बई ने सन् 1952 में उत्तर प्रदेश में तथा 1970 में राजस्थान में बाल उपराध अधिनियम

बनाये गए। बच्चों के सुधार तथा इनको समाज के लिए उपयोगी बनाने हेतु नवम्बर 1986 में बाल अवचारी न्याय विधेयक लोक सभा में पारित किया गया। जिसे 1987 में कानून का रूप दे दिया गया। इस कानून को 1 जुलाई 1987 से सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू कर दिया गया। इस कानून के अनुसार सभी बाल अपराधियों के जेल दंड को करके बाल ग्रहों में उनके सुधार की व्यवस्था की गई सुधार गृह में बच्चों को व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। तथा उन्हें एक अच्छा समाज उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

बाल न्यायालय की स्थापना:

सर्वप्रथम अमेरिका ने 1899 में बाल न्यायालय की स्थापना की गई इनमें 13 वर्ष के अपराधियों का न्याय देना था। बाद में यह 21 वर्ष तक कर दी गई। भारत में सन् 1960 में बाल अधिनियम के अंतर्गत बाल न्याय की स्थापना देश के सभी राज्यों में कर दी गई। इस न्यायालय के उद्देश्य बालकों द्वारा किए गए अपराधों के कारणों को ज्ञात कर सुधारात्मक उपाए सेझाना था। सामान्य या छोटे-मोटे अपराधियों में संलग्न बच्चों को समझा-बुझा कर चेतावनी देकर या बालक से बॉण्ड भरवाकर छोड़ा दिया जाता है।

किन्तु गंभीर अपराधों के दोषी बालकों को सुधार संस्था रिमांड होम या परिवीक्षा होस्टल में रखा जाता है। जहां मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों मनोविश्लेषकों या समाज शास्त्रियों द्वारा इनका मनोवैज्ञानिक रूप से सुधरने एवं एक अच्छा नागरिक बनाने का प्रयास किया जाता है।

रिमांड होम तथा सम्प्रेषणों की स्थापना:

बाल अपराध को कम करने के लिए रिमांड होम तथा सम्प्रेषण गृहों की स्थापना की गई ताकि बाल अपराध एवं वयस्क अपराधी एक साथ न रहे। यहां बालक को तब तक रखा जाता है। तब तक की न्यायालय की कार्यवाही पूर्ण नहीं हो जाती। रिमांड होम तथा सम्प्रेषण गृहों का वातावरण एवं परिवार जैसा होता है तथा इस परिवार में प्रोबंशन अधिकारी परिवार के मुखिया की भूमिका निभाता है। रिमांड होम में बच्चों की शिक्षा मनोरंजन एंव खेलकूद का प्रबंध रहता है।

बोस्टक स्कूल:

इस स्कूल की स्थापना सन् 1902 में सार एलिविन रेगिल्स ब्राइस द्वारा अमेरिका के केन्टन नामक प्रांत में की गई थी। इस नवीन प्रयोग की अच्छाईयों से प्रभावित होकर भारत में 1962 में तमिनालडु में बोस्टल स्कूल की स्थापना से अच्छे परिणाम प्राप्त होने के कारण अन्य राज्यों बंगला महाराष्ट्र कनार्टक तथा मध्यप्रदेश में इनकी स्थापना की गई। वर्तमान में देश में 9 राज्यों में ये स्कूल सफलता पूर्वक संचालित है। इन स्कूलों में बच्चों को मुक्त वातावरण में रखकर आत्मनियंत्रण एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाता है। इसके लिए उन्हें उद्योग धंधों का प्रशिक्षण एवं शिक्षा दी जाती है।

किशोर बंदी गृहों की स्थापना:

वयस्क अपराधियों के सत्संग एवं संपर्क से बचाने के लिए किशोर बंदी गृह की स्थापना की गई। यहां शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था रहती है। शिक्षा के क्षेत्र में अधिक रूचि रखने वालों को अध्ययन हेतु बाहर भी भेजा जाता है।

सुधार गृह एवं सुधार विद्यालय की स्थापनाः

किशोर सुधार गृह एवं वयस्क सुधार गृह यह गृह एक्ट सन् 1897 में भारत बना था जिनका नाम Reformetory School था। जिनके आधार पर यह गृह बना था बच्चों को किशोर सुधार गृह में रखा जाता है। इन गृहों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उद्योगों से संबधित प्रशिक्षण दिया जाता है। इसे औद्योगिक स्कूल भी कहा जाता है। भारत में मान्यता प्राप्त सुधार गृह है। डेविड मेरानल औद्योगिक स्कूल, विलिगेटन बॉयल, वहराम जी नायक होम, नर्वदा औद्योगिक स्कूल, उमरावादी जूनियर स्कूल यह सभी बम्बई में है। लखनऊ सुधार गृह उत्तर प्रदेश, दिल्ली सुधार गृह दिल्ली में जबलपुर सुधार गृह म० प्र० में तथा हिसार सुधार गृह पंजाब में है।

प्रशिक्षण/प्रोबेशनः

उत्तर प्रदेश फस्ट आफेन्डर्स प्रोबेशन एक्ट पास हुआ इसके अनुसार 18 वर्ष से कम आयु के अपराधी को न्यायालय न भेजकर प्रोबेशन अधिकारी के पास भेजा जाता है। जो बालक की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह बल अपराधियों की मानसिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करके उनकी समस्याओं का समाधान करता है। वह अपराधियों का जीवन इतिहास तैयार करता है। न्यायालयों में उनके बारे में सूचना प्राप्त करता है। वह अपराधियों का जीवन इतिहास तैयार करता है। न्यायालयों में उनके बारे में सूचना प्राप्त करता है तथा उन्हें सुधारकर एक अच्छा नागरिक तैयार करता है। प्रवीक्षण के संबंध में Crkoben का मत है कि - प्रवीक्षण अपराध के विरुद्ध रक्षा की प्रथम पंक्ति है।

पोषण गृहः

पोषण गृहों में दस वर्ष से कम आयु के बाल अपराधियों को रखा जाता है। जिन्हें प्रमाणित स्कूल में नही रखा जा सकता। भारत में इस समय 36 पोषण गृह कार्य कर रहे हैं। माता पिता के परित्याग तलाक कैद या मृत्यु के कारण कम आयु के आवारा बच्चों के पोषण गृह में रखकर सुधार किया जाता है। साधारतयाः ऐसा सुधार गृहों का संचालन स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

प्रमाणित स्कूलः

बाल अधिनियम के अनुसार मुम्बई, आंध्र प्रदेश, केरल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली एवं पश्चिम बंगाल में प्रमाणित स्कूलों की स्थापना की गई है। इस स्कूलों में साधारण शिक्षा के साथ-साथ औद्योगिक प्रशिक्षण (जैसे बढ़ईगिरी, दरी बुनना, कढ़ाई, बुनाई, कपड़े धोना, जिल्दशाजी, मधुपालन, संगीत, राजगिरी एवं कृषि संबंधी प्रशिक्षण) की व्यवस्था होती है। प्रत्येक 12 बच्चों पर एक मोनीटर होता है। इन बच्चों में जो आचरण से रहता है। उसको जेब खर्च तथा 14 दिन का अवकाश भी दिया जाता है। यह स्कूल दो प्रकार के होते हैं। पहला जूनियर सटिफाईड स्कूल तथा दूसरा सीनियर सर्टिफाईड स्कूल इन दोनों में भिन्न-भिन्न आयु के बच्चे दिए जाते हैं जैसे की पहले प्रकार केर स्कूलों की व्यवसथा राज्य सरकार के हाथ में होती है। किन्तु कुछ स्कूलों की व्यवस्था सार्वजनिक समितियाँ भी करती हैं।

उत्तर रक्षा संस्थाए:

जब किसी सुधार संस्था में बाल अपराधी कम से कम 6 माह के लिए रह लेता है एवं सुधार संस्था के प्रमुख को यह विश्वास हो जाता है कि वह भविष्य में कभी भी अपराध नहीं करेगा तो उसे दंड की बची हुई अवधि के लिये उत्तर रक्षा संस्थाओं में भेज दिया जाता है जहां पर उन्हें कताई, बुनाई, कपड़ा सिलाई, टोकरी बनाना, लकड़ी का काम कालीन बनाना इत्यादि प्रशिक्षण दिया जाता है।

परिवार विद्यालय एवं समाज द्वारा निवारण:

अध्ययन के दौरान यह जानकारी प्राप्त हुई है कि शासन द्वारा किया गया प्रयास तो द्वितीयक कार्य है किन्तु परिवार विद्यालय एवं समाज को इसे सुधारने में अग्रणीय भूमिका होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि परिवार में बच्चों के प्रति सहयोग, पूर्ण स्वस्थ पूर्ण वातावरण होना चाहिए। माता-पिता की बालकों के प्रति साकारात्मक अभिवृत्ति से उपयुक्त निर्देशन जटिल समस्याओं का समाधान से बालकों की गतिविधियों पर निगरानी रखकर एवं उनकी शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं को समझकर इस समस्या का निवारण किया जा सकता है।

इसके साथ विद्यालय में शिक्षक बाल-मनोविज्ञान की उचित जानकारी रखकर बालकों की कई हद तक समस्याओं एवं आवश्यकताओं को समझकर उनका समाधान कर सकते हैं रूचिपूर्ण कक्षा नवीन अध्यापन तकनीक का उपयोग कर पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था कर बालाकें के प्रति स्नेहपूर्ण सहयोगपूर्ण व्यवहार रखकर बालकों की अपराधिक कार्यो की सूचना माता-पिता को अनुशासन पूर्ण विद्यालय का वातावरण स्थापित कर इस समस्या का निवारण किया जा सकता है।

इसके साथ समाज में समाजसेवी इस क्षेत्र में आगे आकर निवारण का प्रयास करते हैं वे निर्धन बालकों की सहायता कर, फुटपाथी बालकों की सहायता कर ऐसे बालकों की शिक्षा व्यवस्था कर इन्हें सुधार गृह में भिजवाकर समाज पर गंदे चलचित्रों पर प्रतिबंध लगातार अनैतिक कृत्य स्थानों को बंद करने का प्रयास कर इस समस्या का निवारण करते हैं।

निष्कर्ष:-

बाल अपराध की अवधारणा कारकों एवं उपचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि यह एक गम्भीर समस्या है जिसका निवारण समय रहते आवश्यक है।

क्योंकि इसकी जड़ें समाज रूपी जमीन में जम गई तो सम्पूर्ण समाज राष्ट्र विकराल रूप धारण कर देगा। इसमें सरकार का प्रयास जारी है। जैसे की सभी सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए होता है। पर फिर भी इस प्रकार अपराधियों की संख्या समापत नहीं हुई है। 1981 में भारत में बाल अपराधों का प्रतिशत 4.4 था जो 1987 में घट कर 3.7 प्रतिशत हो गया। 1988 में 1.7 प्रतिशत तथा 1991 में 0.8 प्रतिशत पाया गया। 1991 में सबसे अधिक बाल अपराध महाराष्ट्र में हुए थे। शहरों में बम्बई बाल अपराधियों की मात्रा 1991 में सबसे आगे अधिक आगे हैं। लिंग के आधार पर देखा जाए ताक लड़कियों की सहभागित अपराधों में बढ़ती जा रही है। साक्षर बालकों की तुलना में निरक्षर बालकों में यह प्रतिशत अधिक है। साथ ही यह निष्कर्ष निकला कि बाल अपराध के अनुवांशिक शारीरिक पारिवारिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक सम्प्रेषण संबंधी सांस्कृतिक नगरीकरण ऐसे कारक है

जो इस समस्या को जन्म देते हैं एवं सरकारी प्रयास से इसकी उपचार मनोवैज्ञानिक वैधानिक विधियों के विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है। इस प्रकार इसका समाधान केवल शासन के प्रयासों द्वारा संभव सम्भव नहीं होगा इसके लिए परिवार समाज के वृद्ध तथा युवावर्ग समाज सेवी संस्थाओं तक शासकीय प्रयासों का मिलाजुला योगदान आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ० उदयवीर सक्सेना (1989) - बाल मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा।
2. पंडित श्री राम शर्मा 1998 राष्ट्र समर्थ अखंड ज्योति आचार्य वाडमय सशक्त कैसे बने संस्थान मथुरा।
3. श्रीमती आर.के. शर्मा (2001) - शैक्षणिक मनोविज्ञान राधा प्रकाशन मंदिर आगरा।
4. डॉ० रामजी श्रीवास्तव (2002) - आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान मोती बाबा बनारसी दास।
5. डॉ० गणेश पाण्डेय (2003)-भारतीय सामाजिक समस्यायें राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली ISBN. 81.7487.253.1
6. डॉ० धर्मवीर महाजन डॉ० कामलेश महाजन (2007)-भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं विवेक प्रकाशन दिल्ली।
7. डॉ० शशि प्रभा 2008 मानव विकास परिचय शिवा प्रकाशन।
8. अहा! जिंदगी विशेषांक-2011
9. रिसर्च जनरल ऑफ सोसल एण्ड लाईफसाइन्स (ISSN. 0973.3914) June 2012)
10. युवा देश आई.बी.बी.सी.एन.एस.यू.आई ऑनलाईन पत्रिका में मनोज झुनझुनवाला का लेख 02.08.2012

पंचायती राज में महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका

डॉ० रश्मि कुमारी

प्राध्यापक, गृह विज्ञान, बी.डी.एस.एम.एम. कॉलेज, छपरा

ग्रामीण विकास संबंधी विभिन्न तरह की सरकारी योजनाओं, जिन्हें गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन, कृषि और कृषि संबद्ध उद्योगों के विकास आदि के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों के समिल्लित वित्त अंशदान या केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित की गई योजनाओं के रूप में चलाया जा रहा है, उनके अलावा स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में चलाई जाने वाली योजनाओं आदि के ग्रामीण स्तर पर कार्यान्वयन के लिए पंचायती राज्य संस्थाओं की भूमिकाएं काफी बढ़ा दी गई हैं। 2009-10 तक 176 विकास प्रखण्डों, 1519 पंचायतों और 4819 गांवों (सिर्फ 27 जिलों में)[1] स्वयं सहायता समूहों की 16367 इकाईयां कार्यरत थी जो महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में देखी जा रही है। स्वरोजगार कार्यक्रम में महिलाओं को प्राथमिकता, मनरेगा योजना में महिला श्रमिकों को प्रसूति लाभा, के साथ-साथ दी गई अन्य सुविधाएं, इंदिरा आवास के मकानों के आवंटन में महिलाओं को दी जा रही वरीयता के साथ-साथ स्वास्थ्य के क्षेत्र में समेकित बाल विकास योजना संस्थागत डिलेवरी को प्रोत्साहन दिया जाना, राजीव गांधी नवयुवती सशक्तिकरण योजना, प्रसव काल में दी जानेवाली मौद्रिक सहायता आदि के अलावा बहुत से अन्य कार्यक्रम भी हैं जो राज्य सरकार के द्वारा प्रायोजित हैं और उनमें महिलाओं तथा बालिकाओं के लिए विभिन्न तरह की सहायताएं दी जाती है : जैसे लक्ष्मीबाई सामाजिक सुरक्षा पेंशन स्कीम, नारीशक्ति योजना, मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना, कन्या सुरक्षा योजना, मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना, मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना आदि। इन सारे कार्यक्रमों को धरातल पर कार्यान्वित करने में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिकाएं काफी बढ़ गई हैं।

बिहार में पंचायती राज अधिनियम में महिलाओं को 50 प्रतिशत सीटों पर आरक्षण का प्रावधान हो जाने के बाद पंचायती राज संस्थाओं, जिनकी संख्या बिहार में : जिला परिशदें-38, पंचायत समिति 531, ग्राम पंचायत 8463, ग्राम कचहरियां 8463, ग्राम पंचायत सदस्य 115876, ग्राम पंचायत 8463, पंचायत समिति सदस्य 11566, जिला परिशद सदस्य 1162, ग्राम कचहरी सदस्य 115876, ग्राम पंचायत सरपंच 8463, ग्राम पंचायत सचिव 8463, न्याय मित्र 8463, ग्राम कचहरी सचिव 8463, जिला पंचायत राज अधिकारी 38 और पंचायत राज अधिकारी 516 हैं।[2] इनमें से चुनी जाने वाली निकायों की पुरी सदस्यता का आधा महिलाएं हैं।

सारण जिला में विभिन्न कार्यक्रमों में महिला प्रतिनिधियों का योगदानः

बिहार में पंचायती राज अधिनियम में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान के बाद ग्रामीण विकास संबंधी उन सारी योजनाओं में, जिनकी लक्ष्य गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन, स्वास्थ्य लाभ, शिक्षा का विकास आदि से है, महिला प्रतिनिधियों की भूमिकाओं का आंकलन पंचायतों के स्तर तक महत्वपूर्ण बन गया है। आंकड़े दर्शातें है कि इन क्षेत्रों में महिला प्रतिनिधयों की सक्रियता- खासकर महिला उत्थान कार्यक्रमों के संदर्भ में- काफी बढ़ गया है।

शिक्षा क्षेत्रः

सर्वशिक्षा अभियान और ग्रामीण इलाकों में शिक्षा के प्रचार तथा निरक्षरता निवारण के लिए उठाए गए कदमों में शिक्षण संस्थाओं- खासकर प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के प्रबंधन में पंचायतों को अधिकार संपन्न बनाए जाने के बाद विद्यालयों में शिक्षा के लिए जरूरी बाह्य अधिरचनाओं की उपलब्धता की गारंटी कराना पंचायती राज पदाधिकारियों की एक विशेश जिम्मेदारी बनती है। महिला प्रतिनिधियों के प्रसंग में कहा जा सकता है कि विद्यालयों में छात्राओं के लिए जरूरी अधिरचनाओं की उपलब्धता की गारंटी कराना उनका एक खास दायित्व बन जाता है। सारण जिला में विद्यालयों की स्थिति यह है कि कुल विद्यालयों की संख्या जिला में 2088 है और इन विद्यालयों में से 388 ऐसे विद्यालय है जिनके पास ब्लैक बोर्ड जैसी अति सामान्य सुविधा तक उपलब्ध नहीं है। इनमें से मात्र 724 स्कूल ही है जिनके पास स्थानीय श्यामपट है, बाकी के पास नहीं है। 2088 विद्यालयों में से मात्र 835 विद्यालयों के पास ही आम शौचालय है जिनका उपयोग छात्र और छात्रा दोनों करते हैं बाकी 1253 के पास शौचालय है ही नहीं। इन संपूर्ण विद्यालयों में से मात्र 226 ऐसे विद्यालय है जिनके पास लड़कियों के लिए अलग से शौचालय है। सबसे बुरी स्थिति बिजली की है, क्योंकि मात्र 45 विद्यालय ही हैं जिनके पास बिजली का कनेक्शन है, बाकी के पास नहीं है। 446 विद्यालयों के पास किताब बैंक, 544 के पास खेल का मैदान और 271 के पास रैंप की सुविधा है।[3] ऊपर वर्णित आंकड़ें सारण जिला के शहरी और देहाती दोनों केन्द्रों में स्थापित स्कूलों के लिए है और बिजली, छात्राओं के लिए अलग शौचालय, किताब बैंक आदि जैसी सुविधाएं जिल स्कूलों में है वे स्कूल या तो शहरी क्षेत्रों या कस्बाई बाजारों में स्थिति स्कूल है, ग्रामीण स्कूलों में इन सुविधाओं की पूर्णतः अभाव है।

सरकारी वादों में स्वास्थ्य सुविधा के लिए वादे किए जाने के बहुत प्रचार इलेक्ट्रोनिक और प्रिंट मीडिया के द्वारा किया जाता है जिससे स्कूलों में छात्र-छात्राओं के स्वास्थ्य जांच के लंबे-चौड़े वादे रहते हैं और शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार और बढ़ाव का आंकड़ प्रस्तुत किया जाता रहता है। 2007-08 तक इन विद्यालयों में से मात्र 251 स्कूलों में ही चिकित्सीय जांच का काम किया जा सका है और छात्र-छात्राओं में किसी रोग की मौजूदगी में उसके निवारण के उपायों का कोई विवरण/आंकड़ा बिहार सरकार के पास नहीं है। तकनीकी शिक्षा पर आज की शिक्षा प्रणाली का सारा जोर है - खास कर कम्प्यूटर शिक्षा पर क्योंकि रोजगार केन्द्रों में कम्प्यूटर का उपयोग एक आवश्यक शर्त के रूप में ला दिया गया है। विडम्बना है कि सारण जिला के 2088 स्कूलों में से मात्र 106 स्कूल ही ऐसे है जिनके पास कम्प्यूटर सुविधा है, उसकी पढ़ाई की गारंटी भी इन 106 स्कूलों में क्या है यह पता नहीं चलता। शिक्षण संस्थानों यानि इन स्कूलों में मात्र 200 स्कूल ऐसे है जिनके पास सभी तरह के फर्नीचर है और 564 स्कूलों के पास थोड़े से फर्नीचर है, यानि अतिशय अपर्याप्त संख्या में। स्थिति तो यह है कि सिर्फ शिक्षकों के लिए ही जरूरी फर्नीचर की चर्चा की जाय तब मात्र 1273 स्कूल ऐसे है जिनमें शिक्षकों के लिए सभी जरूरी फर्नीचर उपलब्ध है और 62.5 स्कूलों में शिक्षकों के

लिए भी जो फर्नीचर है वे अपर्याप्त है यानि कुछ ही फर्नीचर है। मध्याह्न भोजन को उपलब्ध कराने का जो दावा किया जाता है उसकी स्थिति यह है कि पहली से 8 वीं कक्षा तक के बच्चों को मध्याह्न भोजन दिया जाता है मगर भोजन बनाने के लिए अलग से किचेन शेड की उपलब्धि मात्र 91 विद्यालयों में ही है। जल सुविधा 1935 स्कूलों और 2036 स्कूलों के पास भवन है, 152 स्कूलों के पास छात्रों के लिए जल सुविधा नहीं है और 32 ऐसे स्कूल हैं जिनके पास भवन तक नहीं है।

स्कूलों के प्रबंधन में पंचायतों को अधिकार दिए जाने के बाद चुने हुए प्रतिनिधियों के उपर यह दायित्व आ गया है कि विद्यालयों में इस तरह की अधिरचना में मौजूद कमी को पूरा करने की दिशा में कार्यरत हो। खासकर महिला प्रतिनिधियों की यह जिम्मेवारी बनती है कि स्कूलों में छात्राओं के लिए जरूरी अधिरचना जैसे अलग शौचालय, तकनीकी शिक्षा, उनके बैठने के लिए पर्याप्त फर्नीचर आदि की गारंटी कराने की दिशा में पहल करे।

छपरा सदर प्रखण्ड में शहरी क्षेत्रों को अगर छोड़ दिया जाय, जो नगर पंचायत के क्षेत्र हैं, प्राइमरी और अपर प्राइमरी स्कूलों में शिक्षा के लिए जरूरी उपर वर्णित अधिरचनाओं की नितांत कमी है। सदर प्रखंड के 21 पंचायतों में से 10 पंचायतों की मुखिया महिला है (जिनका विवरण पीछे के अध्याय में किया गया है)। मगर शिक्षा के क्षेत्र में इनकी पेशकदमी अन्य विकास कार्यों की तुलना में कम दिखती है। इंदिरा आवास, विभिन्न तरह की रोजगार योजनाओं, आदि में जहां लाभार्थी सीधे प्रभावित होता है, उन्हीं क्षेत्रों में महिला जन प्रतिनिधि भी ज्यादा उन्मुख दिखती है क्योंकि चुनाव की वर्तमान प्रणाली में जनप्रतिनिधि अपने कार्यों का वहीं क्षेत्र चुनता है जहां से उसे आगे के चुनाव के लिए वोट की ज्यादा गारंटी हो सके। विकास कार्यों और चुनाव पद्धति के बीच ऐसा अंतरर्विरोध खड़ा हो गया है जिसके कारण विकास योजनाओं का जन प्रतिनिधियों के लिए मकसद विकास को बढ़ाना न रहकर वोट बैंक की गारंटी कराने का हो गया है। चुनाव का खर्चीला होना तरह-तरह की अनियमितताओं को समाने ला रहा है।

छपरा सदर प्रखण्ड की 10 महिला मुखियाओं से प्राप्त सर्वेक्षण और साक्षात्कार के प्राप्त आंकड़े चौकाने वाले हैं। इन महिला मुखियाओं में एक भारी प्रतिशत करीब-करीब 80 प्रतिशत ऐसी महिला मुखियाओं का है जिन्हें पंचायती राज अधिनियम की जानकारी है ही नहीं। पंचायती राज संस्था के प्रति इनकी प्रशासनिक और राजनीतिक चेतना के निम्न होने का आलम यह है कि सदर प्रखण्ड के उप प्रमुख श्रीमती बेबी सिन्हा भी बातचीत के क्रम कम ऐसा अभास देती हैं जिससे पता चलता है कि प्रखण्ड विकास पदाधिकारी को वे प्रखण्ड प्रमुख, उप-प्रमुख आदि जन प्रतिनिधियों से उच्च और उपर के पदाधिकारी के रूप में स्वीकारती हो।

विकास कार्यों या शिक्षा संबंधी निर्णयों में महिला मुखियाओं की स्थिति यही है कि इनमें से ज्यादातर स्वयं निर्णन लेने, ग्राम सभा में समस्याओं को रखने और निर्णय कराने की दक्षता की कमी का शिकार हैं। ज्यादातर या तो अपने पतियों या परिवार के किसी अन्य सदस्य की राय या उसके निर्देशन में ही काम करती हैं। अनुभव और सर्वेक्षण दोनों ही का निष्कर्ष है कि जिन सीटों पर अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों को चुने जाने और जिन सीटों पर इन्हीं समूहों के महिला सदस्यों को चुने जाने के आरक्षण प्रावधान किए हैं वहां स्थिति की भयावहता और ज्यादा है। ऐसे प्रतिनिधियों और महिला प्रतिनिधियों का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर के काफी नीचा होने और ग्रामीण क्षेत्र में भूमि सुधार के कार्यक्रमों को नहीं लागू किए जाने के कारण वर्तमान सामंती अवशेशों का प्रभाव इन प्रतिनिधियों पर इतना बुरा पड़ता है कि गांव और पंचायत के कुछ संपन्न लोग इनको निर्देशित करने लगते हैं और ये प्रतिनिधि उन्हीं निर्देशों के अनुसार काम करने लगते हैं। इन दोनों ही हालातों में -पति या परिवार के किसी सदस्य के द्वारा निर्देशित होकर या क्षेत्र के प्रभावी सामंती तत्वों

के दबाव में आकर किया जाने वाला प्रतिनिधियों का काम एक गैर-संवैधानिक सत्ता केन्द्र को जन्म दे देता है जो जनवादी प्रक्रिया के लिए घातक है। पंचायती राज संस्थाओं को इस स्थिति से निकालना होगा।

स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजनाः

इस योजना का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार का सृजन करना है- और खास कर महिलाओं के लिए स्वरोजगार का सृजन इसका एक प्रमुख कार्य है। 2007 में इस योजना में उपलब्ध राशि 461. 139 लाख सारण जिला के लिए थी। इस राशि में 280.31 लाख का ही उपयोग हो सका। उपलब्ध राशि का उपयोग की गई राशि 60.70 प्रतिशत थी। इस प्रकार करीब-करीब 40 प्रतिशत से थोड़ी कम राशि का उपयोग ही नहीं हो सका। सदर प्रखण्ड में भी इस राशि की उपलब्धता तथा उपलब्ध राशि के उपयोग का प्रतिशत इसी अनुपात में पाया गया करीब-करीब 60 प्रतिशत। योजना के कार्यान्वयन में व्याप्त इस तरह का फर्क यानि उपलब्ध राशि का उपयोग नहीं किया जाना, प्रशासनिक और राजनैतिक दोनों ही स्तरों पर निर्णय किए जाने में विलम्ब, जनप्रतिनिधियों और प्रशासनिक पदाधिकारियों के बीच ताल-मेल का अभाव और कभी-कभी समय पर राशि की उपलब्धता में आया अड़चन आदि का प्रमाण है।

इस योजना के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह के गठन और उसके द्वारा स्वरोजगार का कार्यक्रम चलाए जाने को काफी महत्व दिया जा रहा है। संपूर्ण सारण जिला के 21 ग्राम पंचायतों में कुल 21 स्वयं सहायता समूह ही कार्यरत है यानि प्रति पंचायत औसतन एक स्वयं सहायता समूह इन 21 स्वयं सहायता समूहों में कुल महिला ही है। इन 21 स्वयं सहायता समूहों में 1150 सदस्य है जिनमें से 598 सदस्यों को स्वरोजगार प्राप्त हुआ था। सदस्यों में स्वरोजगार प्राप्त करने वाले सदस्यों का प्रतिशत 52 का था यानि कुल सदस्यता का 52 प्रतिशत को स्वयं सहायता समूह के द्वारा स्वरोजगार प्राप्ति हुआ था।

छपरा सदर प्रखण्ड में करीब दो स्वयं सहायता समूह का अस्तित्व देखा जा सकता है जिनमें करीब 100 सदस्य है और सभी सदस्य महिलाएं ही है। इन गरीब महिलाओं की स्वयं सहायता समूह में स्थिति का आंकलन एक भिन्न परिदृश्य को प्रस्तुत करता है जो इस योजना के द्वारा प्रचारित लक्ष्यों को झूठलाता है। कहा जाता है कि इस योजना के द्वारा ग्रामीण महाजनों से जो कर्ज की रकम पर भारी दर से सूद की वसूली करते हैं, गरीबों को बचाना है। मगर सदर प्रखण्ड के स्वयं सहायता समूह के कुछ सदस्यों की स्थिति का आंकलन जब किया गया तब पता चला कि स्वयं सहायता समूह में उनके द्वारा लिए गए ऋण पर ब्याज दर अगर संपूर्णता में देखा और जांचा गया तब- इतना ज्यादा है कि उतना किसी भी खानगी संस्थान या ग्रामीण महाजन से लिया गया कर्ज का सूद दर नहीं पहुंच पाता। इस संबंध में पिछे के अध्याय में आंकलन करके संभावित सूद दर का प्रतिशत का हिसाब लगाया गया है। जांच पड़ताल करने पर पता चला कि स्वयं सहायता समूह को 12 प्रतिशत की ब्याज दर पर संबद्ध बैंक ऋण उपलब्ध कराता है इस ऋण की राशि को सदस्यों में वितरित करते समय स्वयं सहायता समूह अपना खर्च और पूंजी निर्माण के लिए मुनाफा का आंकलन करके 12 प्रतिशत सलाना ब्याज की दस से अमूमन तीन से चार प्रतिशत ज्यादा सूद पर कर्ज देता है। इस तरह सदस्यों को लिए गए कर्ज पर 15 से 16 प्रतिशत का ब्याज तो देना ही पड़ता है इसके साथ उनको एक घाटा यह भी होता है कि वे अपनी बचत को जब जमा कराते है तब उनकी जमा राशि पर कोई ब्याज नहीं मिलता। महाजनों से कर्ज लेने या बैंकों से सीधे कर्ज लेने पर उन्हें किसी तरह की राशि जमा नहीं करानी पड़ती। अगर महाजन उनसे कुछ चल या अचल संपति जमा भी कराता है जैसे गहना

आदि तो वे वैसी वस्तुएं होती है जिनसे कर्ज लेने वाले को उनके अपने पास रखे रहने पर भी उससे किसी तरह की आमदनी नहीं होती। अगर उनकी कुछ जमीन यार मकान को गिरवी रखवाता है तो वह वस्तु कर्जदार के ही उपयोग में रहती है सिर्फ कागज पर स्वामित्व का स्थानांन्तरण ही होता है यहां भी किसी तरह की प्रत्यक्ष हानि का प्रश्न नहीं उठता।

मगर स्वयं सहायता समूह में जमा उसकी रकम पर कोई ब्याज नहीं मिलने पर उसे सीधा घाटा लगता है, क्योंकि अगर उसकी वह रकम बैंक में जमा रहती तो उस पर उसे ब्याज मिलता। इन सारे घाटों को सम्मिलित रूप से जोड़ देने पर स्वयं सहायता समूह से प्राप्त राशि पर कर्जदार गरीब को 25 प्रतिशत तक सलाना सूद की अदायगी करनी पड़ती है। सदर प्रखण्ड के बहुत सारे स्वयं सहायता समूह के कर्जदारों की स्थिति कर्ज लेने के बाद पहले से खराब हो गई है वे कर्ज की इस भूल-भूलैया वाले सूद दर के कारण कर्ज अदा करने में सक्षम नहीं हो पाते।

स्वयं सहायता समूह की यही विडम्बना है कि यह एक ऐसी राजनीति के रूप में इस्तेमाल हो रहा है जिससे गरीब आबादी बैंकिग प्रणाली से सीधा जुड़ने की प्रक्रिया से अलग की जा रही है। सारण जिला में स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों में यानि 1150 में से 1147 को प्रशिक्षण दिया जा चुका है, बैंक कर्ज के लिए 225 आवेदन किए गए और 117 आवेदनों को स्वीकृत किया गया। वहां भी उपलब्धि 52 प्रतिशत की है।

इन सारी प्रक्रियाओं के बाद, जिसे पुरा किया जाने का दावा सरकारी स्तर पर किया जा रहा है वह कितना सही है इसक अंदाजा छपरा सदर प्रखण्ड का सर्वे स्पष्ट कर देता है। अन्य बातों को, जिनका जिक्र किया जा चुका है, उनको छोड़ भी दिया जाय तब सर्वे के दौरान एक भी परिवार या सदस्य ऐसा नहीं मिला जिसकों स्वयं सहायता समूह के क्रियाकलापों के कारण गरीबी रेखा से उपर उठा दिया गया हो। हां कर्ज के जाल, कर्ज की अदायगी न किए जाने के कारण जुल्माना लगाने आदि की शिकायतों को करने वाल जरूर मिले।

चुने गए प्रतिनिधियों खास कर महिला प्रतिनिधियों का यह दायित्व बनता है कि स्वयं सहायता समूह में बैंकों द्वारा 12 प्रतिशत की सूद दर पर दी जाने वाली ऋण प्रणाली की समाप्ति और 4 प्रतिशत की वार्षिक ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करवाने संबंधी जरूरी कदमों को उठाये। चूंकि इस समूह में गरीब परिवार की महिलाएं ही ज्यादा है इस कारण नारी मुक्ति आंदोलनों और महिला सशक्तिकरण के आंदलनों के साथ इसे जोड़ने की जरूरते हैं जो निर्वाचित महिला प्रतिनिधि बखूबी कर सकती है।

इस प्रकार पंचायतों के द्वारा मनरेगा योजना के तहत गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों के एक आदमी को प्रतिवर्ष कम-से-कम 100 दिन कार्य प्रदान किए जाने की योजना में कार्यों के चयन, जॉब कार्ड बनाने और काम उपलब्ध कराने में पंचायतों के तथा ग्राम पंचायती राज के अन्य निकायों के प्रतिनिधियों की भूमिका कफी महत्वपूर्ण हो जाती है। खासकर इस योजना में एक खास प्रतिशत तक महिलाओं को रोजगार देने की शर्त ऐसी है जिससे महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को काफी बल मिलता है। इस योजना में रोजगार गारंटी, 2005 के एक्ट में योजना मॉनिटरिंग संबंधी ऐसे प्रावधान है जो योजना के जनवादी चरित्र को बाधित करते हैं और नौकरशाही के प्रभुत्व को बल प्रदान करते है। इस कारण इस योजना को लागू करने में चुने गए प्रतिनिधियों की चौकसी का महत्व काफी बढ़ जाता है -खासकर महिलाओं के लिए इस कानून में विद्यमान प्रावधानों जैसे बच्चों वाली महिलाओं के बच्चों को औरत के काम करने के घंटों के बीच विशेष रख-रखाव की सुविधा, आवास और कार्यस्थल के बीच की दुरी संबंधी कानून आदि ऐसे प्रावधान है जिनके अनुपालन के लिए

यथोचित संरचनाओं का कार्यस्थल पर यथोचित प्रबंध नहीं दिखता। ऐसे प्रावधानों को सही तरीके से लागू कराने में महिला प्रतिनिधियों की पेशकदमी खास स्थिति बना सकती है।

सारण जिला का रिकार्ड बताता है कि 2009–10 और 2010–11 में कुल परिवारों को जिन्हें जॉब कार्ड दिया गया उसकी संख्या क्रमशः 3.30 लाख और 3.40 लाख थी और उससे अनुसूचित जाति के परिवारों का प्रतिशत क्रमशः 49.7 और 48.6 प्रतिशत था। जिन्हें जॉब कार्ड मिला उन परिवारों में से 2009–10 और 2010–11 में जितने परिवारों ने रोजगार की मांग की उनका प्रतिशत क्रमशः 18.4 और 14.4 प्रतिशत रहा और सबों को काम मिला। मगर काम पाने वाले परिवारों के सदस्यों, जिन्हें पुरे 100 दिन काम मिला उनका प्रतिशत काम पाने वालों में 2009–10 और 2010–11 में क्रमशः 3.8 और 3.8 प्रतिशत ही रहा था। इन दो वर्षों में कुल कार्य दिवसों का सृजन क्रमशः 21. 13 और 32.01 लाख दिवस का हुआ और इनमें महिलाओं की हिस्सेदारी क्रमशः 14.9 और 9.5 प्रतिशत की रही थी। 2009–10 और 2010–11 में सारण जिला में इस योजना के लिए उपलब्ध राशि क्रमशः 6803.42 और 7578.55 लाख रूपए की थी मगर इस राशि में से उपयोग की गई राशि क्रमशः 3385.59 और 6424.45 लाख रही जो उपलब्ध राशि का क्रमशः 49.8 और 84.8 प्रतिशत की थी।

उपर का विवरण बताता है कि 2009–10 में उपलब्ध राशि का उपयोग करने में जिला काफी पीछे रह गया था। हलांकि 2010–11 में इसमें सुधार हुआ मगर पुरी राशि का उपयोग नहीं किया जा सका। ऐसी कमजोरियों के निवारण में चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा ली गई पेशकदमी कफी उपयोगी हो सकती है। जिस वर्ष यानि 2009–10 में योजना के लिए उपलब्ध राशि का करीब–करीब आधी रकम का ही उपयोग किया गया था उस साल काम पाने वालों में महिलाओं का प्रतिशत कानून में प्रदत्त 15 प्रतिशत की शर्त को छू रहा था मगर जिस वर्ष यानि 2010–11 में जब उपलब्ध राशि का 80 प्रतिशत से ज्यादा का उपयोग किया[4] गया तब तक काम पाने वालों में महिलाओं का प्रतिशत घटकर 10 प्रतिशत से भी कम पर आ गया। खासकर अनुसूचित जाति के परिवारों का काम पाने वालों में अतिशय कम प्रतिशत रहा जबकि गरीबी इन परिवारों में सबसे ज्यादा है।

उपर इंगित इन त्रुटियों को निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा दुर किया जा सकता है। ऐसी त्रुटियों योजना के प्रति गरीब आवाम में जागरूकता की कमी और अजानकारी को दर्शाता है। निर्वाचित निकायों के प्रतिनिधि अपने क्षेत्र में मनरेगा संबंधी जानकारी को गरीबों तक पहुंचाने के लिए विभिन्न तरह के कार्यक्रमों को आयोजित कर इस संबंध में लोगों के प्रशिक्षण का काम कर सकते हैं। मगर विडम्बना है कि बहुत से निर्वाचित प्रतिनिधि भी कानून के पुरे प्रावधानों से वाकिफ नहीं है।

सदर प्रखण्ड का सर्वे यह भी स्पष्ट करता है कि इस योजना रोजगार पाने के लिए बनाई गई प्रक्रिया भी गरीबों और अनपढ़ों के लिए कठिनाई पैदा करने वाली है। खासकर कई बार आवेदनों को देना और काम चाहने के लिए विभिन्न स्तरों का दौरा करना तथा योजना के मॉनिटरिंग के लिए की गई व्यवस्था में नौकरशाही का वर्चस्व उसे कई मायने में लाभा प्राप्ति से वंचित कर देता है। इस सबके उपर विभिन्न तरह की अनियमितता का कुप्रभाव अलग है। इन कठिनाइयों को दुर करने में जन प्रतिनिधियों और महिला जन प्रतिनिधियों की भूमिका कफी हो सकती है। खासकर महिलाओं को रोजगार दिलाने के प्रसंग में महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र और महिला प्रतिनिधियों की भूमिका :

स्वास्थ्य अधिरचना के मामले में सारण जिला में जिले की आबादी के अनुपात में स्वास्थ्य अधिरचनाओं की उपलब्धि नहीं है। जिला में कुल स्वास्थ्य अधिरचनाओं में एक जिला अस्पताल,

रेफरल अस्पताल 3, सबडिविजनल अस्पताल पहले 2 था अब मात्र 1 है। यानि 1 की कमी आ गई है। प्राईमरी हेल्थ सेन्टर 20, सब-हेल्थ सेंटर 413 और अतिरिक्त ग्रामीण हेल्थ सेंटर 45 है। सबों के आधार पर प्रति सेंटर 8160 आबादी है इन्ही स्वास्थ्य केन्द्रों के द्वारा सारण जिला में जन स्वास्थ्य का प्रबंधन किया जाता है।

इन स्वास्थ्य केन्द्रों में प्राय: नियोजन पर बहाल डाक्टर और स्वास्थ्य कर्मचारी है जिन्हें अतिशय अल्प रकम मेहनताना या तनख्वाह के रूप में दी जाती है। सरकार की इस प्रबंधन व्यवस्था के कारण अल्प वेतन के कारण प्राय: सभी नियोजित डाक्टर और स्वास्थ्य कर्मचारी कहीं-न-कहीं और किसी-न-किसी रूप में अन्यथा ढंग से भी काम करके अपना खर्च निकालने में लगे है। इस कारण काम या ड्यूटी के प्रति उनकी दोहरी भक्ति है जिसमें सरकारी कामों के प्रति भक्ति का स्थान द्वितीयक हो जाता है, क्योंकि नौकरी की गारंटी, वार्षिक वेतन बढ़ोतरी समेत किसी भी सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों का लाभ उन्हें नहीं मिलना है।

स्वास्थ्य केन्द्रों में आवश्यक संसाधनों का बुरी तरह अभाव और कमी है, सामान्य जांच की सुविधा भी नहीं है। इस तरह के खस्ता हाल स्वास्थ्य सेवा के द्वारा लोगों के स्वास्थ्य की सुरक्षा का दावा एक कल्पना है।

बिहार की ही तरह सारण जिला में भी महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याएं पुरूषों की तुलना में ज्यादा है - कुपोषण, रक्तहीनता, प्रसवकालीन मौते, महिला संबंधी बीमारियों आदि के साथ-साथ उनकी अस्वस्थता तथा उनमें संक्रामक बीमारियों के कारण ऐसी महिलाओं द्वारा उत्पन्न बच्चा भी रोग ग्रसित ही पैदा होता है। कुपोषण का मूल कारण गरीबी है और महिला कुपोषण को दुर करने के स्कीमों में कुल चंद महिलाओं को गर्भावस्था में कुछ वित्तीय मदद, प्रसव के बाद कुछ को थोड़ा मौद्रिक सहायता देकर ही सरकार अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती है।

महिलाओं में प्रसवकालीन मृत्यु दर के बढ़े होने का एक प्रमुख कारण है सुरक्षित प्रसव का नहीं होना। असुरक्षित प्रसव के कारणों में गरीबी, स्वास्थ्य की ऐसी सेवाओं का बढ़ा हुआ खर्च, सरकारी अस्पतालों और स्वास्थ्य केन्द्रों में सुविधाओं का अतिशय अभाव, महिलाओं की अज्ञानता और रूढ़िवादी वैचारिकता का उनपर प्रभाव आदि। सरकारी आंकड़े बताते है कि 2008-09 से 2010-11 तक सारण जिला में संस्थागत डिलेवरी 0216 क्रमश: 44160, 39940 और 54257 हुई। संस्थागत डिलेवरी का यह प्रतिशत 2008-09 में 3.9 प्रतिशत, 2009-10 में 3.2 प्रतिशत और 2010-11 में 3.9 प्रतिशत का था। सारण जिला में जननी बाल सुरक्षा योजना में लाभार्थियों की संख्या 2008-09 में 42150, 2009-10 में 49040 और 2010-11 में 47931 लाभार्थी रहे। इसी कारण जलापूर्त्ति और स्वच्छता अभियान के तहत सारण जिला में जहां 2007-08 में मात्र 26 मकानों को यह सुविधा दी गई वहीं 2008-09 में यह सुविधा 1015 मकानों, 2009-10 में 878 मकानों को और 2010-11 में 434 मकानों में उपलब्ध कराई गई। इस योजना मे चापाकलों के लगाने का काम 2007-08 में 969, 2008-09 में 54, 2009-10 में 1970 और 2010-11 में 3528 चापाकल लगे।

उपर के आंकड़े सारण जिला के सभी प्रखण्डों के है। सदर प्रखण्ड में इस योजना को लागू करने के आंकड़े अन्य प्रखण्डों से ज्यादा के है मगर स्वास्थ्य संबंधी आंकड़े जैसे संस्थागत डिलेवरी, जननी बाल सुरक्षा योजना, पेयजल और स्वच्छता संबंधी सदर प्रखण्ड का सर्वे जिन सहस्यों को उद्घाटित कराता है वह चौकाने वाला है। पटना सदर प्रखण्ड में संस्थागत डिलेवरी का प्रतिशत पुरे जिला के लिए विभिन्न वर्षों में दिए गए आंकड़ें से थोड़ा ज्यादा प्रतिशत का है। मगर संस्थागत डिलेवरी के आंकड़ों में गरीबी रेखा के नीचे परिवारों की संख्या यानी बी.पी.एल. श्रेणी की महिलाओं का संस्थागत डिलेवरी में हिस्सेदारी ना के बराबर है। इस श्रेणी में यानि संस्थागत डिलेवरी में शामि

महिलाएं इन बी.पी.एल. परिवारों से अलग किस्म के परिवारों से अलग किस्म के परिवारों की है जो दवा आदि के खर्चों को वहन करने की आर्थिक स्थिति में है। जननी बाल सुरक्षा योजना के तहत वैसी ही महिलाएं लाभान्वित हो सकी है जिनका आर्थिक और सामाजिक स्तर दलितों एवं महादलितों से अच्छा है। इस योजना के संबंध में भी गरीब आवाम कीएक बड़ी संख्या को जानकारी का अभाव है। महिलाओं से संबंधित इन योजनाओं और इसी तरह कीअन्य योजनाओं के संबंध में लाभों के लिए उपर्युक्त परिवारों में व्यापक जानकारी को देने का दायित्व महिला प्रतिनिधि कर सकती है। सदर प्रखण्ड अन्य प्रखण्डों की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा चेतनशील आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे प्रखण्ड में योजनाओं और कार्यक्रमों के संबंध में जानकारी का स्तर गरीबों में जब इतना निम्न स्तरीय है तब अन्य प्रखण्डों की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

शिक्षा का क्षेत्रः

सारण जिला में प्राइमारी, मिडिल, सेकेन्ड्री और हाय सेकेन्ड्री स्कूलों का जो प्रतिमान सरकारी आंकड़ों में दिया गया है उनकी स्थिति यही है कि प्रति 10,000 आबादी पर 4 प्राइमरी स्कूलों का अस्तित्व बताया गया है इसी मानदण्ड के आधार पर सदर प्रखण्ड के प्राइमरी स्कूल है। मिडिल स्कूलों की संख्या प्राइमरी स्कूलों की तुलना में प्रति 10,000 आबादी पर आधा यानि 2 है। इन स्कूलों के प्रबंधन में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका को बढ़ावा तो दिया गया है मगर संसाधनों की कमी स्कूलों में पढ़ाई-लिखाई को बाधित कर रही है।

सदर प्रखण्ड का सर्वे बताता है कि करीब एक चौथाई प्राइमरी विद्यालयों में श्यामपट तक नहीं है, स्कूलों में बिजली कनेक्सन नहीं है, जरूरी फर्निचर का अभाव तो इतना है कि छात्र-छात्राओं के लिए फर्निचर की बाते तो दुर रही शिक्षकों के लिए भी र्निचर पर्याप्त नहीं है। 10 प्रतिशत भी स्कूल नहीं है जिनमें शौचालय हो और छात्राओं के लिए अलग से शौचालय तो है ही नहीं।

उसी प्रकार पेयजल सुविधा संबंधी सदर प्रखण्ड का सर्वेक्षण भी कुछ विस्मयकारी तथ्यों को सामने लाता है, इनमें सबसे महत्वपूर्ण है चप्पा कल लगाने के स्थान के चयन का सवाल। चप्पाकल लगाने में किसी खास व्यक्ति के दरवाजे या उसकी जमीन पर चप्पा कल लगाने की सरकारी पदाधिकारियों को ही कठिनाइयां है, क्योंकि यह विवाद पैदा करता है और बाद में अन्य लोगों को जन उपलब्धता में कठिनाई की संभावना है। सरकारी पदाधिकारियों की ऐसी कठिनाइयों का वस्तुगत आधार है जो सदर प्रखण्ड का सर्वे सही बताता है। इस कारण लगाए जाने वाले चप्पाकल के लिए किसी सार्वजनिक स्वामित्व वाली जगह की प्रायः तलाश की जाती है जो या तो सड़क के किनारे या बस्ती के आस-पास ऐसी जगह होती है जो असुरक्षित होती हे। ऐसी जगहों पर लगाए चप्पाकलों की निगरानी, मरम्मती आदि की जिम्मेदारी और आने वाले मरम्मति पर खर्चो का कोई प्रबंध नहीं रहने के कारण चप्पाकल प्रायः बेकार हो जाते हैं और उनसे पानी मिलना बंद हो जाता है तब उसमें लोग जानवरों को बांधना शुरू कर देते हैं। अब फिर बैताल डाल पर चला जाता है, समस्या अनिराकृत ही रह जाती है। सदर प्रखण्ड में लगाए गए चप्पाकलों की संख्या का आधा से ज्यादा बंद है, उसकी मरम्मती नहीं होने के कारण वे बेकार पड़े हैं। बहुतों में तो स्वीकृत मानदण्ड का पालन नहीं किए जाने के कारण वे बेकार हो गए हैं। पंचायतों के स्तर पर इनके रख-रखाव का प्रबंध किया जाना जरूरी है।

घरेलू काम में इस्तेमाल होने वाली आवश्यक वस्तुओं जिनमें पेयजल एक प्रमुख है, गरीब परिवारों की औरतों के ही द्वारा प्रबंध किया जाता है। पेयजल के अभाव का सबसे ज्यादा बुरा असर महिलाओं पर पड़ता है। इस कारण महिला प्रतिनिधियों को इन समस्याओं के समाधान की विशेष जवाबदेही उठाने की जरूरत दीखती है।

स्कूलों में मध्याह्न भोजनः

प्रखण्ड में प्राइमरी, अपर प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के संचालन की निगरानी और जनसहयोग के लिए गठित कमिटियों में महिला प्रतिनिधियों को शामिल किए जाने का प्रावधान किया गया है। स्कूलों में मध्याह्न भोजन बनाने के लिए बहाल कर्मचारियों में 80 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएं है। मगर इस योजना की नियति यह है कि सदर प्रखण्ड में सैम्पुल स्कूलों का जब सर्वे किया गया तब एक भी स्कूल ऐसा नहीं मिला जिसमें मध्याह्न भोजन बनाने के लिए अलग से किसी प्रकार का शेड का प्रबंध हो। इस कारण भोजन बनाने का काम या तो खुले मैदान या स्कूल के बरामदें में, अगर बरामदा है तब, या किसी कक्ष में किया जाता है। स्कूल की कमिटी के पास कोई ऐसा फण्ड नहीं है जिससे भोजन के लिए शेड का निर्माण किया जा सके। महिला प्रतिनिधियों और कमिटी के महिला सदस्यों की जिम्मेदारी बनती है कि इन समस्याओं का हल ढूढ़ें।

सदर प्रखण्ड के स्कूलों का सर्वे इस संबंध में कई तथ्यों का उद्घाटन करता है जो यह दर्शाते हैं कि स्कूलों में नामांकन की संख्या और मध्याह्न भोजन में छात्रों की कम उपस्थिति का कारण क्या है। सर्वे से पता चलता है कि मध्याह्न भोजन के समय गांव के गरीब बच्चे कटोरा लेकर स्कूल में भोजन प्राप्त करने के लिए आ जाते हैं। स्कूलों में इनका नामांकन नहीं है मगर इन्हें भोजन नहीं देने पर यह विवाद का कारण बनता है। इस कारण शिक्षक उन सभी बच्चों का नामांकन रजिस्टर पर कर लेते हैं जिससे नामांकित छात्रों की संख्या बढ़ जाती और यह भोजन सामग्री प्राप्त करने की स्कूल की क्षमता को बढ़ा देता है। इस तरह के नामांकन से बच्चों की संख्या में निरंतरता रखना संभव नहीं होता, सिर्फ भोजन प्राप्ति के लिए आने वाले बच्चों के कारण भोजन के समय उपलब्ध बच्चों की संख्या प्रायः अनियमित रहती है, इसमें बराबर कमी-बेसी होती रहती है और माह में और साल में उनकी उपस्थिति का औसत हमेशा नामांकन की संख्या से काफी कम रहती है। भोजन वितरण के समय का जो दृश्य रहता है वह पौष्टिक आहार प्रदान कर बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार लाने के कार्यक्रम से भिन्न एक तरह के हैरात बंटवारे का दृश्य उपस्थित करता है।

इस तरह की अनियमितता के निवारण में जनप्रतिनिधियों की भूमिका की अहमियत काफी है, मगर बाजारवादी शिक्षा के माहौल ने शिक्षण-प्रणाली को काफी हद तक कुप्रभावित कर दिया है। स्कूलों के प्रबंधन में शिक्षकों की नियोजन प्रक्रिया से बहाली का प्रभाव इस तरह के शिक्षकों में शैक्षणिक भाव को जागने नहीं देता। भले सरकारी शिक्षा व्यय में कमी आ जाय मगर शिक्षा का व्याधिकारण यही से शुरू हो जाता है।

इस प्रकार शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि के प्रति सरकारी नीति में आए विचलन ने स्थिति की गंभीरता को और बढ़ा दिया है, मनोवादी ढ़ंग से एकत्रित आंकड़ों के सहारे विकास का मात्र दावा किया जा सकता है, विकास नहीं। ग्रामीण गरीबी उन्मूलन, महिला सशक्तिकरण, गरीबों को कर्ज जाल से निकालने का दावा पेश करते स्वयं सहायता समूह, संस्थागत डिलेवरी में बढ़ोतरी का दावा आदि का जादुई तिलस्म व्यावहारिक जीवन में कहीं भी नहीं दिखता। गरीबी में इजाफा, बेरोजगारी में इजाफा, महिला उत्पीड़न के बढ़ते मामले, बढ़ती कीमतों के कारण गिरता जीवन मान आदि का नतीजा है। देहाती आबादी का पलायन और शहरों में काम की तलाश में लोगों को आने की प्रक्रिया का चित्रण ऐसे किया जाता है कि विकास के कारण शहरीकरण में इजाफा हो रहा है। राहत योजनाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार जगह-जगह इसके खिलाफ स्वतः जन आंदोलन में दिख रहा है।

महिलाओं का पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत के आरक्षण को महिला सशक्तिकरण की एक बड़ी उपलब्धि के रूप में पेश किया जा रहा है मगर वर्तमान व्यवस्था में किस तरह निर्वाचित

महिलाओं के अधिकारों का उपयोग उनके पतियों, या परिवार के किसी सदस्य द्वारा किए जाने के कारण एक गैर-सवैधानिक सत्ता केन्द्र का निर्माण होता जा रहा है, यही हकीकत है। इस प्रक्रिया को ठीक करने के लिए जिस तरह के आर्थिक-राजनीतिक सुधारों की जरूरत है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मौजूद सामंतवादी अवशेष समाप्त हो और गांवों के जनवादीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़े, यह उपाय किसी स्तर पर नहीं दिखता। इस तरह की प्रक्रिया में नौकरशाही मजबूत होती है, भ्रष्टाचार बढ़ता है और जनवाद कुंद होता है - यही आज हो रहा है।

संदर्भ

1. इकोनोमिक सर्वे 2010-11, बिहार सरकार, पृ. 252.
2. उपरोद्धृत, पृ. 253.
3. मानव संसाधान विभाग, बिहार सरकार.
4. ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार

भारत सरकार की स्वास्थ्य के सन्दर्भ में नीति एवं कार्यक्रम

श्वेता कांता

शोधार्थी, गृह विज्ञान, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत की वर्तमान जनसंख्या 1.21 अरब है जो 1.8 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रहा हैजिसकी जनसंख्या 2030 तक चीन से भी आगे निकल जाने की संभावना है और तब यह देश विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा।[1] हमारे देश के लगभग तीन चौथाई गाँवों में रहने वाले लोग जिसमें अनुमानित 37 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे (तेंदुलकर समिति रिपोर्ट) रहती है। इनको एक कार्यकुशल स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की भारी आवश्यकता हैं, जो उत्तम सेवा कम खर्च पर उपलब्ध करा सके। साथ ही गरीबों और अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या को निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराने की भी अति आवश्यकता है क्योंकि वे व्यय-साध्य चिकित्सा सेवा का भार नहीं वहन करने के कारण उपरोक्त लाभ से वंचित रह जाएँगे।

भारत एक लोककल्याणकारी देश है और इसका संविधान भी प्रभुता संपन्न एवं लोक कल्याणकारी है जो नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा करती है और उनके मौलिक अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्वहन करती है। इन्हीं प्रदत्त मौलिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के निर्वहन में भारतीय संविधान स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न अधिकारों का बोध कराती है। केन्द्रीय सरकार समय-समय पर नागरिकों के स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु विधेयक लाती है और कानून बनाकर सख्ती से कार्यान्वित करती है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

''मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 3 में सभी व्यक्तियों के लिए जीवन के अधिकार की बात की गई हैं जिसमें गरिमापूर्ण जीवन समाहित है। अगर कोई चिकित्सा व्यवसायी मरीज के जीवन के साथ खिलवाड़ करता है तो वह मरीज के प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का हनन है। इसी प्रकार सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 6 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार है जो मरीज को भी प्राप्त है। इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में जीवन के अधिकार का प्रावधान है जो प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है, इसमें मरीज भी शामिल है। मरीज को भी प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है। अगर चिकित्सकीय लापरवाही के द्वारा मरीज को क्षति पहुँचती है तो यह उसके जीवन के अधिकार का उल्लंघन है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य विधेयक, 2009 की धारा 8 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को गरिमापूर्ण शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार है जिसे चिकित्सकीय उपेक्षा द्वारा छीना नहीं जा सकता।''[2]

''मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है जो स्वंय उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए उपयुक्त हो। इसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी देखरेख की उचित सुविधा तथा आवश्यक सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था का अधिकार शामिल है।

इसी प्रकार आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 12 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर पर उपभोग करने का अधिकार है। राज्य का यह दायित्व है कि वे निम्न उपाय करें:-

- प्रसवदर और शिशु मृत्युदर में कमी लाने और बच्चों के स्वास्थ्य विकास की व्यवस्था करें।
- महामारी, स्थानीय, व्यावसायिक तथा अन्य रोगों की रोकथाम, इलाज और नियंत्रण करें।
- बीमार होने पर सभी के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक उपायों का समावेश करें।

महिलाओं के स्वास्थ्य के अधिकार के संदर्भ में महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति के लिए अनुच्छेद 12 के अनुसार प्रत्येक महिला को बिना लिंगभेद के समान स्वास्थ्य का अधिकार प्राप्त होगा। खासकर गर्भवती महिलाओं एवं दूध पिलाने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण का समुचित उपाय किया जाएगा तथा उनके लिए राज्य द्वारा नि:शुल्क जांच एवं परिक्षण तथा उपचार की व्यवस्था होगी।[3]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 एवं सातवीं अनुसूची की सूची - 2 राज्य सूची की प्रविष्टि संख्या 6 में हैं जोकि राज्य का विषय है और इस पर राज्य कानून बना सकते हैं।''[4]

The World Health Organisation has strongly argued for a human rights-based approach to health to overcome the persistence of discrimination and rights abuses.[5]

भारत सरकार तथा राज्यों में स्वास्थ्य सेवाओं के लिए चलाये जा रहे कुछ कार्यक्रम इस प्रकार हैं जिस पर एक नजर डालना आवश्यक प्रतीत होता है:-

1. ***जनसंख्या नीति सम्बन्धी कार्यक्रम:*** जनसंख्या वृद्धि का कारण राज्य की विशेष भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। यहाँ का दो तिहाई भाग बाढ़ प्रभावित इलाके से घिरा है। महिला साक्षरता यहाँ 33.12 प्रतिशत है। महिलाएँ आज भी संस्थागत प्रसव की अपेक्षा दाई द्वारा प्रसव करने पर ही अधिक महत्व देती हैं। ग्रामीण इलाके में कुछ स्थानों पर तो चिकित्सालयों की व्यवस्था भी नहीं है, लेकिन जिन स्थानों पर व्यवस्था है वहाँ भी संस्थागत प्रसव एक चुनौती है। इसके पीछे मूल कारण लोगों में जागरूकता का अभाव है। ग्रामीण इलाके पूरी तरह असुरक्षित हैं। यही वजह है कि बिहार में पैदा होने वाले बच्चों के स्वास्थ्य एवं जीवित रहने की पूरी गारंटी नहीं है। कम आयु में विवाह तथा लड़का पैदा करने की चाह के कारण भी बिहार में जन्मदर तथा शिशु मृत्यु दर अधिक रहा है। परिवार कल्याण की आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध करवाकर परिवार सीमित करने के लिए संरक्षित किया जा रहा है। टीकाकरण एवं विशेष टीकाकरण अभियान भी चल रहे हैं। बिहार में कुछ ऐसे भी अभियान चल रहे हैं, जो अन्य प्रदेशों से एकदम अलग हैं। इन अभियानों के जरिए आम लोगों तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुँच रही है।

2. ***चिकित्सा सुविधा:*** जब हम चिकित्सा सुविधा की ओर दृष्टिपात करते हैं तो देश में प्रखण्ड स्तर पर ही प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था है। एक प्रखण्ड में दो से ढ़ाई सौ तक गाँव हैं। ऐसे में लोगों को प्राइवेट चिकित्सालयों का भी सहारा लेना पड़ता है। जहाँ वर्ष 1991 में जन्मदर 36.

8 प्रतिशत और मृत्युदर 11.8 प्रतिशत थी, वर्ष 1997 में जन्मदर 34.6 प्रतिशत तक पहुँच गई। अगर देखा जाए तो बिहार में चिकित्सा सुविधा की स्थिति मिलाजुलाकर ठीक नजर आती है परन्तु यहाँ जागरूकता व जानकारी का अभाव है। सभी जिलों में अर्थात सभी 38 जिलों में जिला मुख्यालय पर जिला अस्पताल या सदर अस्पताल की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त 534 प्रखण्डों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की व्यवस्था है। जिस प्रखण्ड की जनसंख्या बहुत अधिक है उस प्रखण्ड में अतिरिक्त प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र की स्थापना की गई है। सभी सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर, नर्स, कम्पाउण्डर तथा दवायें व रहने के लिए कमरों का निर्माण कराया गया है। बिहार में अब ये सभी सुविधायें राज्य स्वास्थ्य समिति संचालित कर रही है फलत: जिला स्तर पर जिला स्वास्थ्य समिति का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त बिहार में 7 मेडिकल कॉलेज हैं जहाँ ओपीडी की व्यवस्था व अनेक तरह की सुविधाएं मरीजों के लिए उपलब्ध कराई गयी है। सरकार के द्वारा इसी वर्ष फरवरी माह में लिए गए निर्णय के अनुसार ''प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के साथ-साथ न्यू हेल्थ सब सेंटर और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र भी स्थापित होंगे, पाँच हजार की आबादी वाली क्षेत्रों में एक न्यू हेल्थ सब सेंटर बनेगा। इस प्रकार राज्य में 18 हजार न्यू सब सेंटर बनेंगे।

तीस हजार की आबादी में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बनेगा। इसलिए दो हजार पीएचसी की स्थापना का लक्ष्य है, एक लाख की आबादी पर एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना होगी, जिलों में चल रहे अस्पतालों को 500 बेड और 67 अनुमण्डलों में चल रहे अनुमंडल अस्पतालों को 100 बेड रखने का लक्ष्य रखा गया है।''[6]

3. *राजीव गाँधी ग्रामीण मेडिकल मोबाइल यूनिट:* यह सरकार की एक महत्वपूर्ण योजना है। इसका संचालन राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत किया जा रहा है। इस योजना के तहत राज्य के सभी जिलों में इसकी इकाइयों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न दुर्गम क्षेत्रों के लिए दो इकाई और अन्य जिलों के लिए एक मोबाईल यूनिट के तहत दो वाहन निर्धारित किए गए हैं जिनमें से एक चिकित्सा दल के भ्रमण, जबकि दूसरा वाहन चिकित्सकीय परीक्षण के लिए प्रयोग में लाया जाता हैजिसमें इसीजी, एक्सरे तथा अल्ट्रासाउण्ड जैसे स्वास्थ्य परीक्षण उपकरणों की व्यवस्था होती है साथ ही दवाएँ भी मौजूद रहती है। दोनों वाहनों के लिए गाँवों को निर्धारित किया जाता है, जहाँ शिविर का आयोजन होता है। मासिक आधार पर ये वाहन संबंधित गाँव में पहुँचते हैं और ग्रामीणों को स्वास्थ्य सेवा प्रदान करते हैं। सभी सेवाएँ राज्य सरकार की ओर से नि:शुल्क हैं। इसके तहत प्रमुख रूप से प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य, प्राथमिक उपचार, संक्रामक रोगों की रोकथाम, परिवार कल्याण, लैंगिक स्वास्थ्य के अलावा आपातकालीन सेवाएँ प्रदान की जाती है। हर यूनिट के चिकित्सा दल में चिकित्सक, नर्स, लैब टेक्निशियन, कम्पाउंडर, वाहन चालक एवं एक सहायक को शामिल किया गया है। इस योजना की निगरानी की जिम्मेदारी जिला स्वास्थ्य समिति को दी गई है साथ ही कुछ गैर-सरकारी संगठनों से भी सहायता ली जा रही है। इस योजना को लेकर ग्रामीणों में जबरदस्त उत्साह हैं। ग्रामीणों का कहना है कि मोबाइल मेडिकल यूनिट का संचालन होने से उन्हें काफी राहत मिली है। पहले इलाज के लिए दूरदराज़ के कस्बों में स्थित चिकित्सालयों तक जाना पड़ता था, लेकिन अब सभी स्वास्थ्य सुविधाएं खुद गाँव तक पहुँच जाती हैं। ग्रामीण जन समुदाय में एक उम्मीद रहती है कि जैसे ही उनके गाँव का नबंर आएगा, पूरी टीम यहाँ मौजूद मिलेगी। यह बिहार के खासतौर से मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, दरभंगा, पूर्णिया तथा कटिहार तथा सीमावर्ती जिलों एवं बाढ़ प्रभावित इलाकों को इससे कफी लाभ मिला है।

4. *भ्रमणशील शल्य चिकित्सा इकाई:* राजीव गाँधी ग्रामीण मेडिकल मोबाइल यूनिट की तरह ही राज्य में भ्रमणशील शल्य चिकित्सा इकाई का भी संचालन हो रहा है। इसकी स्थापना 1956 में

ही कर दी गई थी। यह इकाई बिहार के ग्रामीण इलाके में निशुल्क चिकित्सा शिविर आयोजित करती है। इकाई की ओर से आमतौर पर हर वर्ष सितम्बर से मई तक शिविर लगाए जाते हैं। इसमें त्वचा की गाँठे, ट्यूमर, हार्निया, एपेंडिक्स, गुर्दे की पथरी, प्रोस्टेट, बांझपन, नाक, कान तथा आँखों की बीमारियों जैसे समस्याओं के ऑपरेशन आदि की सुविधा उपलब्ध है।

5. *मुख्यमंत्री सहायता कोषः* राज्य सरकार द्वारा चौबीस हजार रूपये तक की वार्षिक आय अर्जित कर रहे परिवारों, जो बीपीएल की चयनित सूची में नहीं है, उन्हें गंभीर रोगों के निदान/उपचार पर होने वाला व्यय मुख्यमंत्री सहायता कोष से दिया जाता है। इस वर्ग के परिवारों को उपचार की शत-प्रतिशत राशि का लगभग 40 प्रतिशत स्वीकृत करने का प्रावधान किया है। माननीय मुख्यमंत्री के आदेशानुसार अधिक राशि भी स्वीकृत की जा सकती है। चौबीस हजार रूपये तक वार्षिक आय अर्जित करने वाले परिवारों को, जो बीपीएल की चयनित सूची में नहीं हैं, उन्हें निदान/उपचार पर व्यय राशि शत-प्रतिशत नहीं देकर उनकी सहायता निम्न मापदंडों के अनुसार दी जाती है -

क. हृदय के एक वाल्व परिवर्तन हेतु अधिकतम तीस हजार रूपये।

ख. बाईपास सर्जरी या दो वाल्व परिवर्तन पर अधिकतम पचास हजार रूपये।

ग. किडनी ट्रांसप्लांट के लिए अधिकतम पचास हजार रूपये।

घ. कैंसर के इलाज के लिए अधिकतम पचास हजार रूपये।

6. *धनवंतरी एम्बुलेंस योजना* -देश की जनता को आपात्कालीन चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के लिए धनवन्तरी एम्बुलेंस सेवा चलाई जा रही है। यह राज्य सरकार व ईएमआरआई, के सहयोग से चलाया जा रही है। इसके अर्न्तगत जनता की ओर से डायल 102 की सेवा की व्यवस्था की गई, जिसमें 8345 एम्बुलेंस कार्यरत हैं। कॉल के 25 मिनट के अंदर संबंधित स्थान पर एम्बुलेंस पहुँच जाती है। वर्ष 2008-09 में कुल 150 एम्बुलेंस प्रदेश की जनता की सेवा में लगाई गई।

केन्द्र सरकार की ओर से ग्रामीण इलाके के लोगों की स्वास्थ्य सुविधाएँ बढ़ाने के लिए लगातार अभियान चलाया जा रहा है। अभी तक तमाम चिकित्सक एमबीबीएस की डिग्री लेने के बाद शहर छोड़ देते थे। वे ग्रामीण इलाके के बजाए शहरी इलाके में ही प्रैक्टिस करना पसंद करते थे। इसके लिए वे किसी न किसी तरह अपना ट्रांसफर शहरी क्षेत्र में करा लेते थे। अब ग्रामीण इलाके की सेवा देने वाले डॉक्टरों को स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रवेश पर 25 फीसदी आरक्षण देने की तैयारी है। भारतीय चिकित्सा परिषद् (एमसीआई) ने केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय को यह प्रस्ताव भेजा है। इतना ही नहीं, परिषद की ओर से ग्रामीण क्षेत्र में चिकित्सा सेवा बेहतर बनाने और डॉक्टरों की कमी दूर करने के लिए कुछ अन्य प्रस्तावों पर भी विचार चल रहा है।[7]

7. *राष्ट्रीय घेघा रोग नियंत्रण कार्यक्रमः* "National Goitre Control Programme" भारत में आयोडीन की कमी से उत्पन्न होने वाले घेघा तथा अन्य बढ़ते विकारों के साथ आयोडीन की कमी संपूर्ण विश्व में है। आज 130 देशों और लगभग 740 मिलियन लोग या इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि पूरी आबादी का एक तिहाई भाग आयोडीन अल्पता के प्रभाव में है। आयोडिन अल्पता के कारण भारत में 6.1 करोड़ व्यक्ति इन्डेमिक तथा 88 लाख लोग मानसिक ह्रास से प्रभावित है। भारत के 25 राज्यों एवं पाँच संघीय प्रदेशों के 282 जिलों के 10% से भी अधिक आयोडीन संबंधी समस्याएँ पायी गई है। आयोडीन अल्पता के कारण मनुष्यों में घेघा रोग के अतिरिक्त मानसिक अवसाद तथा नेत्र, श्रवण और दोषपूर्ण आवाज उत्पन्न होती है। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा घाटी में आयोडीनकृत नमक के सफल प्रयास के बाद 1962 में भारत सरकार के द्वारा राष्ट्रीय घेघा रोग नियंत्रण कार्यक्रम "National Goitre Control Programme" की स्थापना की गई। इस

कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य आयोडीन रहित नमक वितरण को बंद करना तथा नमक का आयोडीनीकरण करना था, लेकिन लगभग 30 वर्षो के बाद 1994 में भारत सरकार ने ''राष्ट्रीय घेंघा रोग नियंत्रण कार्यक्रम के स्थान पर' राष्ट्रीय आयोडीन अल्पता विकार नियंत्रण कार्यक्रम (एन०आई०डी०सी०पी०) को स्थापित किया है जिसका मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है।[8]

1. साधारण नमक के स्थान पर आयोडीनीकृत नमक उपलब्ध कराना।
2. आयोडीन की कमी से होने वाले रोगों के विस्तार का पता लगाने का सर्वेक्षण करना ।
3. आयोडीन युक्त नमक की गुणवता की मॉनेटेरिंग करना तथा मूत्रीय आयोडीन उत्सर्जन पैटर्न का आकल्न करना।
4. आयोडीनयुक्त नमक के प्रभावों के आकलन करने के लिए प्रत्येक पाँच वर्षो के अंतराल पर पुनः सर्वेक्षण करना।
5. शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रचार करना।

उपरोक्त सभी रोकथाम और प्रयासों के बावजूद भारत में अबतक मात्र 36% लोगों को ही शुद्ध आयोडीनयुक्त नमक उपलब्ध हो रहा है शेष अभी भी 64% लोग आयोडीनयुक्त नमक की उपलब्धता और शुद्धता से दूर हैं। वैसे आज भी 17 राज्य तथा पाँच संघीय प्रदेशों (Union-Territories) में साधारण नमक पूर्णतः प्रतिबंधित है।

सन् 1992 ई0 में घेंघा रोग नियत्रण कार्यक्रम को राष्ट्रीय आयोडीन अल्पता डिजआर्डस नियंत्रण के कार्यक्रम (National Iodine deficiency Control programme, NID DCP) के रूप में पुनः नामकरण किया गया। 1984 में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् के अनुसंशा को 1992 में केन्द्र सरकार ने यूनिवर्सल आयोडाइजेशन ऑफ साल्ट (Universal Iodization of salt) की पूर्ति के उद्देश्य से निर्णय लिया तथा केन्द्रीय उद्योग विभाग में नमक विभाग को स्थापित किया गया । इसके अतिरिक्त रा०आ०अ०डी०नि० कार्यक्रम को प्रधान मंत्री के 20 सूत्री कार्यक्रम में संलग्न किया गया तथा अआयोडीनीकृत नमक (Non Iodated Salt) को 29 राज्यों तथा संघीय प्रदेशों में बिक्री हेतु प्रतिबंधित किया गया।

8. सूक्ष्मपोषक तत्व कुपोषण पायलट परियोजना "Micronutrient malnutrition pilot project": लोहे, आयोडीन, जिंक तथा फ्लोरीन (Flourine) जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुपोषणता के निवारण हेतु 1995 में असम के साथ-साथ बिहार, बंगाल, गुजरात तथा उड़ीसा में सूक्ष्म पोषक तत्व कुपोषण पायलट परियोजना (Micronutrient malnutrition Pilot Project) को प्रारम्भ किया गया है जो एन० आई० डी० डी० सी० पी० (NIDDCP) के साथ संलग्न है।

उद्देश्य (Objectives): सूक्ष्मपोषक तत्व कुपोषण पायलट परियोजना का उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. निर्धारित परियोजना के अंतर्गत फ्लोरोसिस "Flourosis" तथा दंत-क्षरण "Dental Carries" के साथ आयरन तथा विटामिन ए अल्पता का निर्धारण।
2. स्कूल जाने वाले बच्चे, किशोरों, लड़के, लड़कियों, सामान्य महिला "Non-pregnant woman", वयस्क पुरूषों तथा बड़े समुदाय हेतु आयरन तथा विटामिन ए का निर्धारण तथा विकसित करना।
3. जन-समुदाय के आहारीय स्वभाव को विकसित करने हेतु संचार माध्यम "Mass Media" के द्वारा सूचनाओं तथा शिक्षा संचारण।

4. विभिन्न भोज्य उत्पादों "Food Products" तथा मिट्टी मे जिंक स्तर का अध्ययन ।
5. देश में समान रूप से क्रियाशील योजनाओं के साथ सामंजस्य रखना ।

विचार "Comments":-

1. रेलवे तथा सड़क के द्वारा आयोडीनीकृत नमक के यातायात को सबल बनाने की आवश्यकता है।
2. भारत सरकार तथा अंतराष्ट्रीय संगठनों के द्वारा आयोडीन अल्पता डिजआर्डस "Iodine deficiency disorders" के निर्धारण के मार्गदर्शन में अंतर पाया गया।

9. नेशनल डायबीटिज नियंत्रण प्रोग्राम "National Diabetes Control Programmes": मधुमेह दीर्धअवधि का चयापचयी रोग है जो अल्प इन्सुलिन स्त्राव, दोषपूर्ण अग्नाशय तथा रक्त में ग्लूकोज (ळसनबवेम) सान्द्रता सामान्य से अधिक होने पर उत्पन्न होता है । 1995 के एक अध्ययन के अनुसार विश्व स्तर मधुमेह रोग 4% है लेकिन शोधकर्त्ताओं के अनुसार मधुमेह रोगियों की स्थिति आनेवाला 2025 तक 5.4% होने की संभावना है। ऐसे ही एक अन्य अध्ययन के अनुसार विकासशील देशों में इसको 10-20% तक पहुँचने की स्थिति है। इस रोग से पीड़ित प्रत्येक व्यक्ति का 4510 - 7200 रूपये प्रतिवर्ष खर्च होता है। इस प्रकार इस रोग को दीर्धकालिक होने के कारण परिवार पर आर्थिक बोझ पड़ता है। इसके अतिरिक्त डायबीटिज के कारण 21.4% हृदय रोग, 17.5% न्यूरोपैथी (Neuropathy), 6.3-30% पेरिफेरीयल वाहिनी रोग, 19.0% रेटिनापैथी (Retinopathy) तथा 6.3 माइक्रोएल्बुमीना जैसा रोग हो जाता है उपरोक्त जैसे कारणों के आधार पर भारत सरकार ने 1987 में साँतवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय डायबिटीज नियंत्रण प्रोग्राम (National Diabetes Control Programmes) की शुरूआत किया। इस योजना के शुरूआती दौर में जम्मू-काश्मीर, कर्नाटक और तमिलनाडु के कुछ जिलों तक ही सीमित रखा गया था जो धन राशि के अभाव में कुछ वर्षों तक संचालित होने के बाद बीच के वर्षों में स्थगित रहा लेकिन 1997-1998 में इस परियोजना के लिए एक करोड़ रूपये स्वीकृत किया गया था।[9]

उद्देश्य (Objectives):-राष्ट्रीय मधुमेह नियंत्रण प्रोग्राम के निम्नलिखित उद्देश्य हैं।

1. मधुमेह से उत्पन्न रोगों की पहचान कर मधुमेह की रोकथाम और स्वास्थ्य शिक्षा हेतु प्रारम्भिक प्रवेश।
2. रोग की प्रारम्भिक पहचान तथा इससे उत्पन्न रोगों से मरने वालों की उचित चिकित्सा।
3. दीर्घकालिक चयापचय, हृदय रोग, गुर्दे रोग तथा नेत्र में उत्पन्न जटिलताओं की रोकथाम।
4. समान अवसर प्रदान करने के लिए शारीरिक स्वास्थ्यता और विद्यालयों में होने वाले क्रिया कलापों में भाग लेना।
5. मधुमेही विकलांग व्यक्ति को पुनःवासित करना।

10. राष्ट्रीय न्यूट्रीसनल एनिमिया प्रोफाइलेसिस कार्यक्रम (National Nutritional Anaemia Prophylaxis Programme):- राष्ट्रीय न्यूट्रीसनल एनिमिया प्रोफाइलेसिस कार्यक्रम का निम्नलिखित उदेश्य है।[10]

1. 6-60 माह तक के बच्चे को 20 मि0ग्रा0 एलीमेंटल आयरन देना तथा प्रत्येक बच्चे को प्रतिदिन 100 मि0ग्रा0 फोलिक अम्ल को सुरक्षित तथा प्रभावकारी माना गया है।
2. राष्ट्रीय आई0 एम0 एस0 सी0 आई0 के मार्गदर्शन को अनुसरण करना।
3. 6-60 माह के बच्चों के लिए 20 मि0ग्रा0 एलिमेंटल आयरन तथा 100 mcg.-फोलिक अम्ल/मी0 ली0 धारण करनेवाले द्रव को ग्रहण कराना।

4. एनिमिया की समस्याओं को पता करने हेतु नीति तथा बहुसंख्य चैनलों की आवश्यकता महसूस की गई ।
5. गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए भी इसे जारी रखने के लिए अनुसंशीत की गई ।
6. 6-10 वर्ष आयु वाले स्कूली बच्चों तथा 11-18 वर्ष आयु वाले नवयुवकों /नवयुवतियों को इस कार्यक्रम के अंतर्गत रखा गया।
7. एक वर्ष में 100 दिन 6-10 वर्ष आयु वाले बच्चे को 30 मि0ग्रा0 एलिमेन्टल आयरन तथा 250 मि0ग्रा0 फोलिक अम्ल प्रति बच्चा दिया जाये ।
8. 11-18 वर्ष के किशोरों (Adolescents) के समान अवधि तक खुराक देना। किशोरियों (Adolescents) को भी प्राथमिकता में रखा गया है।

राष्ट्रीय न्यूट्रीसनल एनिमिया कार्यक्रम के द्वारा जिस कमी को दूर करने का प्रयास किया गया था। वह संयोग से दोषपूर्ण वितरण प्रणाली, लाभार्थियों के द्वारा अनियमित अंतग्रर्हण और समाज/समुदाय के द्वारा एनिमिया के हुए परिणामों के प्रति जागरूकता और आशाओं के पूर्त्तिके आभाव के कारण पूरा नहीं हेा सका। अत: आवश्यकता है कि इस कार्यक्रम की ऋटियों को दूर करके पुन: प्रारम्भ किया जाए।

11. राष्ट्रीय राजयक्ष्मा नियंत्रण कार्यक्रम (National Tuberculosis Control Programme):- राजयक्ष्मा रोग की शीघ्र पहचान तथा उसकी चिकित्सा हेतु भारत सरकार ने 1962 में राष्ट्रीय राजयक्ष्मा नियंत्रण कार्यक्रम (National Tuberculosis Control Programme) को स्थापित किया। इस कार्यक्रम को जिला राजयक्ष्मा केन्द्र तथा प्राइमरी स्वास्थ्य संस्थाओं के द्वारा संचालित किया जाता है। जिला राजयक्ष्मा कार्यक्रम का पर्यवेक्षण तथा सम्नवयता को राजकीय यक्ष्मा संगठन सहयोग एवं समर्थन देता है। ऐसा कार्यक्रम भारत के अधिक से अधिक जिलों में क्रियान्वित है लेकिन अब धीरे-धीरे इस कार्यक्रम को DOT के द्वारा स्थानान्तरित किया जा रहा है।[11]

योजना (STRATGY) रू. राष्ट्रीय राजयक्ष्मा नियंत्रण कार्यक्रम (National Tuberculosis Control Programme) का निम्नलिखित उद्देश्य है-

1. सर्व प्रथम रोग की पहचान तथा चिकित्सा एवं संक्रमणीय राजयक्ष्मा को असंक्रमणीय स्थिति में परिवर्तित करना तथा चिकित्सा तथा नियंत्रण के द्वारा असंक्रमणीय को संक्रमित होने से रोकना ।
2. थूक (Sputum) निरीक्षण तथा रेडियोलोजी (Radiology) के द्वारा रोग पहचान
3. प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा मुफ्त चिकित्सा ।
4. प्रत्येक जिला में जिला राजयक्ष्मा केन्द्र स्थापित करना।
5. संक्षिप्त कीमोथेरापी पाठ्यक्रम को विस्तारीकरण।

12. एड्स नियंत्रण कार्यक्रम (Aids Control Programme):

1. सन् 1986 में भारत वर्ष में पहली बार एड्स संक्रमित व्यक्ति की पहचान की गई । इसी वर्ष आई०सी०एम०आर०, हैदराबाद के तत्वाधान में एड्स टास्क फोर्स (Aids Task-force) गठित की गई और सचिव, स्वास्थ एवं परिवार, कल्याण की अध्यक्षता में नेशनल एड्स कमिटि (National Aids Committe, NAC) को स्थापित किया गया।
2. प्रोग्राम फॉर प्रीभेनसन ऑफ मदर टू चाइल्ड ट्रांसमीसन (Programme for prevention of mother to child transmission): इस कार्यक्रम का उद्देशय HIV संक्रमित गर्भवती

महिलाओं के बच्चों में एच०आई०भी० संचरण को रोकना । इसलिए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं में एच०आई०भी० संक्रमण की जाँच की जाती है और एच0 आई0 वी0 पोजेटिव (HIV Positive) महिला को दवा और उचित परामर्श दिया जाता है। इस कार्यक्रम को बाद के समय में भोलूनटरी कॉनसेलिंग एन्ड टेसटिंग सेंटर (Voluntary Counselling and testing centre) के साथ संलग्न करके इन्टीग्रेटेड कॉन्सेलिंग एन्ड टेस्टिंग सेंटर (Intergrated Counselling and testing centre) का निर्माण किया गया। जिसकी शाखाओं की संख्या 2006 तक 3,395 थी । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 100% गर्भवती महिलाओं की देखरेख की जाती है।

3. एन्टी रिट्रोवायरल थेरॉपी प्रोग्राम (Antiretroviral therapy programme): इस कार्यक्रम की शुरूआत अधिकतम एच०आई०भी० संक्रमित राज्यों में अप्रैल 2004 में की गई और दिसम्बर 2006 में 107 एन्टी रिट्रोवायरल थेरॉपी केन्द्रों के माध्यम से 56,000 रोगियों को प्रथम स्तरीय रिट्रोवायरल प्रतिरोधी (Anti Retroviral) दवा प्रदान की गई।
4. प्रीभेन्सन ऑफ पैरेन्ट चाइल्ड ट्रासंमिसन (Prevention of parents to child transmission):- इस कार्यक्रम की शुरूआत देश के उन पाँच राज्यों के ग्यारह अस्पतालों में प्रारम्भ किया गया जिन राज्यों में अधिकतम एच०आई०भी० संक्रमण है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत एच०आई०भी० पोजेटिव (HIV Positive) माताओं को नेभीरापाइन (Nevirapine) रिट्रोवायरल प्रतिरोधक की एक खुराक दवा प्रसव पूर्व तथा शिशु जन्मोपरांत अविलम्ब दिया जात है ताकि इन माताओं के द्वारा उनके होने वाले बच्चों में एच०आई०भी० का संक्रमण नहीं हो सके।
5. संक्रमित गर्भवती महिला की चिकित्सा (Treatment for pregnant women):- गर्भवती महिला की चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य भविष्य में आने वाले बच्चों को एच०आई०भी० के संक्रमण से बचाना होता है। इस स्थिति में गर्भधारण के 34 वें सप्ताह से गर्भवती स्त्री को दवा ग्रहण कराना प्रारम्भ कर दिया जाता है। इस प्रकार की औषधी को मुँख के द्वारा भी ग्रहण किया जाता है। सामान्य रूप से माताओं के द्वारा शिशुओं में रिट्रोवायरस (Retrovirus) के संचरण को रोकने के लिए नेभरापाइन (Neverapine) तथा जिडोभूडाइन (Zidovudine) दवा दी जाती है लेकिन यह मिश्रित दवा मात्रा 2% ही संचारण को रोक पाता है। प्रसव के बाद शिशु के वजन के अनुसार नेभरापाइन (Neverapine) तथा 6 सप्ताह की आयु तक के बच्चो को AZT देना चाहिए। ऐसे नेभरापाइन (Neverapine) की एक खुराक ही इस अवस्था में कफी कारगार होता है।
6. राष्ट्रीय एड्स कंट्रोल प्रोग्राम (National Aids Control Programme):- एड्स रोग की संक्रमण, संचरण, नियंत्रण तथा रोकथाम के लिए भारत सरकार अनेकों अंतराष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से तीन विभिन्न अवधि वाले राष्ट्रीय स्तर पर तीन चरणों (Phase) को कार्यान्वित किया। जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।[12]

   (i) प्रथम चरण, राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम (First-phase, National Aids control programme) रू. इस चरण का अवधि 1992-1999 था जिसका उद्देश्य भ्प्ट संचारण को रोकना, एच०आई०भी० संक्रमण से उत्पन्न अस्वस्थता (Morbidity) तथा मृत्यु (Mortality) को कम करना तथा सामाजिक आर्थिक कारक के द्वारा एच०आई०भी० के प्रभावों को कम करना रखा गया । इस कार्यक्रर्म को पूरा करने के लिए निम्नलिखित राशि प्राप्त की गई।

सहयोग	*राशि (Amounts)*	*(Contribution)*	*मिलियन*
1. भारत सरकार	27.5		
2. डब्लू०एच०ओ०	2.2		
3. आई०डी०ए०	84.2		

(ii) द्वितीय चरण, राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम(Second phase, National Aids control programme): प्रथम चरण एड्स नियंत्रण कार्यक्रम की समाप्ति के बाद नवम्बर 1999 में राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम का दूसरा चरण प्रारम्भ किया गया जिसकी अवधि पाँच वर्षो 1999-2007 रखा गया। इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय ऐजेन्सियों से लगभग 200 करोड़ धन राशि प्राप्त की गई। जिसकी अनुदान की सूची नीचे दर्शाय जा रहा है।

दाता (Donar)	*राशि (करोड़ में)*
1. जी०ओ०आई० (GOI)	196
2. विश्व बैंक (World Bank)	959
3. ग्लोबल फंड (Global Fund)	122.74
4. सी.आई.डी.ए. (CIDA)	37.81
5. यू.एस.ए.डी.पी. (USAID)	230.58
6. यू.एन.डी.पी. (UNDP)	6.47
7. डी.एफ.आई.डी. (DFID)	487.4
8. एयू.एस.ए.आई.डी. (AUSAID)	24.65

द्वितीय राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम में एड्स रोग की जागरूकता, इससे होनेवाली हानियाँ और रोकथाम के संबंध में 25 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के लिए इलेक्ट्रोनिक मिडिया, प्रिंट मिडिया तथा लोक कला (Folk - Art) के कार्यक्रमों को आयोजित करना समावेशित किया गया था। इसके अतिरिक्त स्कूल, महाविद्यालय और युवा केन्द्रों पर एड्स संबंधित कार्यक्रम को स्थापित करना । इस चरण के अंत में 82 रक्त कम्पोनेन्ट सेपरेशन केन्द्र (Blood component separation centre) तथा 1230 रक्त कोष (Blood- Bank) को स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया। रक्त में एच०आई०भी० संक्रमण की परीक्षण के साथ-साथ दान (Donated) किए गए रक्त में हीपेटाइटिस सी० (Hepatitis C) की जाँच की भी व्यवस्था तथा रक्त संचरण के माध्यम से एच० आई० भी० संक्रमण को 2% कम करने संकल्प लिया गया था।

(iii) तृतीय चरण, राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम (Third phase, National Aids control programme): इस कार्यक्रम की अवधि 2007-2012 रखा गया तथा इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लगातार देखभाल, सहयोग (Support)ए चिकित्सा तथा नियंत्रण के माध्यम से इस पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष 40% प्रभावी समूह तथा 60% उच्च संक्रमित व्यक्तियों की संख्या में कमी लाना निश्चित किया गया। इस चरण में विभिन्न श्रोतों से प्राप्त राशि का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

आवंटित तथा संग्रहित राशि

स्त्रोत	*राशि कोड*	*(Source)*	*(Amount)*
1. केन्द्रीय वजट	2861		
2. विश्व बैंक	1328		
3. डी.एफ.आई.डी.	808		
4. जी एफ ए टी एम	1797		
5. यू एस ए आई टी	225		
6. ई. ए. सी.	4148		

7. तृतीय चरण, राष्ट्रीय नियंत्रण कार्यक्रम का उदेश्य :-तृतीय चरण, राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के निम्नलिखित उदेश्य हैं।

1. कंडोम (Condom) :- इस चरण के पाँच वर्षो के अवधि में प्रतिवर्ष 3.5 बिलियन(Billian) कंडोम को STIèRTI क्लिनिकों, मार्केटिंग, डाक-घरों तथा ग्रामीण बैंकों के माध्यम से वितरण करने का उद्देश्य रखा गया । देश के उन आठ राज्यों में जहाँ एच०आई०भी० संक्रमण अधिक है वहाँ महिला कंडोम की उपलब्धता तथा स्वीकारोप्ति के मूल्यांकन की बात सोची गई ।

2. सुरक्षित रक्त (Safe-blood):-इस कार्यक्रम का उद्देश्य रक्त को सुरक्षित रखना तथा उनमें आने वाले संक्रमण को कम करके 0.5% लाना एवं सुरक्षित और गुणवता पूर्ण रक्त को आवश्यकता के अनुरूप एक घंटे के भीतर उपलब्ध करना । इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिवर्ष रक्त की आर्पूति 4.4 मिलियन इकाई(Millian Units) तथा माँग 8.5 मिलियन इकाई (Millian Units) के बीच एक कड़ी का कार्य करना तथा रक्त की गुणवता को बढ़ाना।

3. परामर्श तथा जाँच (Counselling and Testing): परामर्श(Counselling) तथा जाँच प्रक्रिया एच०आई०भी० संक्रमण के नियंत्रण की आवश्यक पहलू है। इसलिए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 2012 तक 22 मिलियन लोगों को परामर्श तथा जाँच करने का लक्ष्य रखा गया था।

4. प्रोफाइलेटिक चिकित्सा (Prophylatic-treatment): इस कार्यक्रम के रोगियों के बीच कार्य करने वाले स्वास्थ्य कर्मियों को रोग निरोधक औषधियों को देना तथा एच०आई०भी० संक्रमण तथा एच०आई०भी० पोजेटिव (HIV Positive) गर्भवती महिलाओं को प्रोफाइलेटिक औषधि देना साथ ही सामुदायिक स्वास्थ केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ केन्द्र तथा निजि क्षेत्रों को सहयोग देने का प्रस्तावदिया गया तथा शिशुओं में 50 प्रतिषत संक्रमण को 2010 तक कम करने का लक्ष्य रखा गया।

5. देखभाल, सहारा तथा चिकित्सा (Care, Support and treatment): इस कार्यक्रम के अंदर एड्स रोगों के दौरान होने वाले फंगल(Fungal) तथा टयूबरक्लोसिस (Tuboerculosis)

जैसे अवसरवादी रोगों एवं चिकित्सीय परिधि में आने वाले बच्चों तथा व्यस्कों को प्राथमिक चिकित्सा के रूप में प्रतिरोधी रिट्रोवारल चिकित्सा करना एवं साथ ही साथ कम से कम 2011 तक 3 लाख लोगों को ए0आर0टी0(ART) की चिकित्सा देने की लक्ष्य रखा गया । इस कार्यक्रम के अंतर्गत सभी एच०आई०भी०/एड्स केन्द्रों को जोड़ने तथा उप-जिला एवं सामुदायिक स्तर पर श्रेणिबद्ध करने का योजना बनाया गया। जिसके अन्तर्गत भारत के 611 जिलों को चार कोटि में विभाजित किया गया। संक्रमता प्रभावित आधार पर कंडोम, एच०आई०भी० संक्रमण हेतु विचार एवं जांच, पी.पी.टी.सी.सी.टी. (PPTCCT) सुविधाएँ, STD चिकित्सा तथा अवसरवादी संक्रमण की चिकित्सा को विभिन्न प्राथमिक तथा सामुदायिक स्वास्थ केन्द्रों पर विकसित करने का उद्देश्य रख गया। इसके अतिरिक्त 2007 में उपलब्ध एन्टी रिट्रोवायरल थेरापी (AntiRetroviral Therapy) 127 केन्द्रों को 2012 तक 250 करने की योजना बनायी गई। इसके अतिरिक्त एच०आई०भी० संक्रमित बच्चे की शुरूआती रोग पहचान तथा चिकित्सा, उनके देखरेख के लिए मार्ग-दर्शन विकसित करना तथा इन बच्चों को सामाजिक सहारा हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को जोड़ना इत्यादि।

13. राष्ट्रीय आरोग्य निधि: इस कार्यक्रम का गठन 1997 में किया गया है जिसके द्वारा गरीबी रेखा के नीचे गुजर रहे लोगों को चिकित्सीय आर्थिक सहायता दी जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अत्याधिक गंभीर बीमारियों से ग्रस्त गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले वैसे व्यक्ति को आर्थिक सहायता दिया जाता है जो सरकारी चिकित्सालयों में अपना चिकित्सा करा रहे होते हैं। यह व्यवस्था स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के द्वारा संचालित होती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को राज्य बीमारी सहायता निधियों को गठित करने के लिए वित्तीय सहायता चक्रण निधि को अन्तर्गत भुगतान किया जाता है। वर्तमान में सरकार श्रीमती सुचेता कृपाली हॉस्पीटल, ऑल इंडिया इंस्टीटयूट ऑफ मेडिकल सांइसेज, नई दिल्ली, पीजीआईएमआर, चंडीगढ़, जेआईपीएमईआर, पांडिचेरी, एमआईएनएचएएनएस, बंगलौर, सीएनसीआई, कोलकाता, संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंरटीटयूट ऑफ मेडिकल साईसेंज, लखनऊ, आरआईएमएस, इम्फाल, एनईआईजीआरआइएचएमएस, शिलांग और सीआईपी, राँची के चिकित्सा अधीक्षकों को ऐसे रोगियों के लिए राशि मुहैया करायी है जिसे भविष्य में विस्तारित होने की संभावना है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत डेढ़ लाख रूपये तक की स्वीकृत एवं अग्रेतर कारवाई हेतु "राज्य बीमारी सहायता निधि" द्वारा दिया जाता है लेकिन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय देष के उन राज्यों जहाँ ऐसी व्यवस्था अबतक नहीं की गई है वहाँ वित्तीय स्वीकृत "राष्ट्रीय आरोग्य निधि" के द्वारा होनी होती है। इस योजना के अन्तर्गत वैसे रोगी जो कफी ही गंभीर रोगों से ग्रस्त है और उनको उपरोक्त स्वीकृत राशि के अतिरिक्त चिकित्सा हेतु अधिक राशि की आवश्यकता होती है उस उपरोक्त राशि के प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय आयोग्य निधि के द्वारा लेना होता है। इसमें आवंटित होने वाली राशि को सरकार प्रतिवर्ष बढ़ोत्तरी करते जा रही है।[13]

14. केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री का विवेकाधीन अनुदान: यह केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री का विवेकाधीन व्यवस्था है। जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री अस्पताल में चिकित्सा एवं भर्ती हुए गरीबी रेखा के नीचे आने वाले वैसे लोगों की भुगतान करते हैं जो राष्ट्रीय आरोग्य निधि के अन्तर्गत नहीं है। इस राशि से रोगी के आए कुल खर्चों का कुछ भाग अदायगी हो जाती है।[14]

15. राष्ट्रीय दृष्टिदीनता नियंत्रण कार्यक्रम: यह केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम है जिसका शुरूअता 1976 ई० में की गई थी। इस कार्यछम के प्रारंभ में हीं यह संकल्प लिया गया था कि 1 प्रतिशत तत्कालिन राष्ट्रीहीनता को 2020 ई० में तक 0.3 प्रतिशत तक किया जाएगा। इसी लक्ष्य के वास्तिविक दृष्टिहीनता की दर की मूल्यांकन के लिए 2005-2006 सत्र में सर्वेक्षण किया गया जिसमें व्याप्त 1.1 प्रतिशत से कम होकर 1 प्रतिशत पाया गया। इस कार्यक्रम को और व्यापक बनाने

हेतु ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के आर्थिक मंत्रिमंडल समिति ने सहायतार्थ हेतु अनुमोदन प्रस्तावित किया है।[15]

इस कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

(क) दृष्टिहीनों का पता लगाकर तथा उनका उपचार करके दृष्टिहीनता के बैकलॉग को कम करना।

(ख) प्रत्येक जिले में व्यापक नेत्र देखभाल सुविधाओं का विकास करना ।

(ग) नेत्र देखभाल सेवाएँ प्रदान करने के लिए मानव संसाधनों का विकास करना।

(घ) सेवा परिदाय की गुणता में सुधार लाना।

(ड.) नेत्र देख-भाल में स्वैच्छिक संगठनों / निजी चित्सिकों की प्रतिभागिता प्राप्त करना ।

(च) नेत्र देखभाल के बारे में सामुदायिक जागरूकता बढ़ाना ।

16. राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम (एन.एल.ई.पी.): सन् 1955 में राष्ट्रीय कुष्ठ नियंत्रण कार्यक्रम प्रारंभ किया गया था और इसी परिपेक्ष्य में 1983 में राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम की शुरूआत की गई थी जिसका उद्देश्य कुष्ठ के सभी ज्ञात मामलों को नियंत्रित करने का था। 2005 से इस कार्यक्रम को अधिक मजबूती, दृढ़ता और व्यापक में क्रियाशील करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन और इन्टरनेशल फेडरेसन ऑफ एन्टी लेप्रोसी एसोसिएसन के तकनीकी सहयोग और भारत सरकार के सहयोग से चलाया जा रहा है। सत्र 2002-2003 से इस कार्यक्रम को जीएचसी प्रणाली के साथ एकीकरण के कारण इस रोग के निदान एवं उपचार संबंधी सेवाएँ देश के सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर उपलब्ध है।[16] इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्नलिखित है :-

1. सामान्य स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली के माध्यम से विकेन्द्रीकरण एकीकृत कृष्ठ रोग सेवाएं।
2. सभी सामान्य स्वास्थ्य सेवा कार्यकताओं का क्षमता निर्माण।
3. सघन सूचना, शिक्षा और सम्प्रेषण (आईईसी)।
4. अयोग्यता और चिकित्सा पुनर्वास की रोकथाम और
5. निगरानी एवं पर्यवेक्षण ।

17. परिवार कल्याण स्वास्थ्य बीमा योजना: यह सन् 1981 से क्रियान्वित केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत लोगों को परिवार नियोजन के स्थायी प्रक्रिया को अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बन्धयाकरण कराने वाले दिन के क्षतिपूर्ति के लिए राशि का भी भुगतान किया जाता है। इस योजना में नगद राशि के भुगतान के अतिरिक्त बंध्याकृत व्यक्ति को किसी भी प्रकार की उत्पन्न दोष, अक्षमता और मृत्युपरांत मुआवजा के स्वरूप स्थिति के अनुसार निम्नलिखित रूपों में भुगतान भी किया जाता है।[17]

1. मृत्युपरांत 50,000 रूपये ।
2. अक्षमता उत्पन्न होने की स्थिति में 30,000
3. शल्प-चिकित्सोपरांत गंभीर उत्पन्न जटिलताओं के निवारण हेतु 20,000

केन्द्र सरकार के उपरोक्त भुगतान के अलावे स्वयं सेवी संगठनों, एल०जी०ओ०, तथा राज्य/संघों के द्वारा वर्तमान संसाधनों के अन्तर्गत दिया जाता है।

इस योजना के संबंध में दायर परिवाद संख्या-209/2003 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार तथा राज्य एवं संघों को निम्नलिखित दिशा-निर्देश दिया है।

1. बंध्याकरण प्रक्रियाएं करने के लिए डॉक्टरों / स्वास्थ्य सुविधाओं का पैनल तैयार करना और बंध्याकरण प्रक्रियाएं करने के लिए डॉक्टरों का पैनल तैयार करने के लिए मापदंड निर्धारित करना।
2. चेकलिस्ट बनाना जिसका प्रत्येक डॉक्टर द्वारा बंध्याकरण प्रक्रिया करने से पूर्व अनुपालन किया जाए।
3. बंध्याकरण कराने वाले व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के लिए एक समान प्रपत्र तैयार करना।
4. बंध्याकरण प्रक्रियाओं के संबंध में ऑपेशन पूर्व और ऑपरेशन पश्चात दिशा-निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए गुणवता आश्वासन समिति का गठन करना।
5. बंध्याकरण कराने वालों के लिए सभी राज्यों में समरूप बीमा नीति को लागू करना।

18. राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना: यह भारत सरकार के श्रम मंत्रालय के द्वारा प्रायोजित योजना है जिसका शुरूआत एक अक्टूबर 2008 से इस योजना को चरणबद्ध प्रक्रिया के अन्तर्गत क्रियान्वित किया गया है तदुपरांत 2009-2010 सत्र में से इसे देश के सभी जिलों के लिए प्रभावी बनाया गया है।[18] इस योजना का विवरण क्रमवार नीचे दिया जा रहा है:-

1. इस योजना के अन्तर्गत लाभार्भियों को पंजीकरण तथा उसे पुन: नवीकरण कराने हेतु 30 रूपये प्रतिवर्ष देना अनिवार्य है।
2. इस योजना के अन्तर्गत लाभार्थियों के प्रति परिवार अंशदान के रूप में 725 रूपये भुगतान किया जाता है जिसमें केन्द्र तथा राज्य का अनुपात 75:25 होता है।
3. इस बीमा का मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा के नीचे असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों और उनके परिवारिक सदस्यों को रूग्नावस्था में उच्च गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा उपलब्ध कराया जाता है। ऐसे रोगियों की चिकित्सा और उपचार पूर्व निर्धारित चिकित्सालयों में की जाती है।
4. इस योजना द्वारा गरीबी रेखा के अन्तर्गत रहने वाले गर्भवती महिलाओं के प्रसव तथा उत्पन्न शिशुओं की चिकित्सा और अन्य विशेष शल्य चिकित्सा को अस्पतालों में कराने हेतु अधिकतम 30,000 रूपये तक खर्च करने का प्रावधान है।
5. इस योजना में चिकित्सा और शल्य शुल्क के देय राशि के अतिरिक्त चिकित्सा के प्रारंभ के दिनों से ही रोग परीक्षण के क्रम में आए परिवहन खर्च को भी भुगतान किया जाता है।
6. इलेक्ट्रॉनिक लेखा-जोखा के द्वारा प्राप्त आकड़ों के बाद राशि का भुगतान किया जाता है।
7. इस योजना में परिवार को इकाई मानकर पंजीकरण किया जाता है और एक परिवार इकाई में पाँच सदस्यों को ही स्वीकृत किया गया है जिसमें एक सदस्य परिवार का मुखिया, पति-पत्नी और परिवार से संबंधित तीन आश्रित इसके अन्तर्गत आते हैं। आश्रितों के संबंध में आगे स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि बी.पी.एल. के लाभार्थी बच्चे और मुखिया के माता-पिता आश्रित के श्रेणी में आ सकते हैं।
8. योजना को पुन: विस्तारित करते हुए यह प्रावधान भी किया गया है कि रोगी को अस्पताल में आने से लेकर पुन: अस्पताल से छुट्टी मिलने के अगले पाँच दिनों के भीतर अगर कोई स्वास्थ्य संबंधी परेशानी होती है तो उसका मुफ्त में चिकित्सा किया जाएगा।
9. इसके अन्तर्गत कम से कम कागजी प्रक्रिया, उपचार की प्रक्रिया और लागत निर्धारित करना तथा उपचार का प्रमाणीकरण और विभिन्न प्रकार के चिकित्सालय में उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना।

10. योजना को मूर्तरूप में क्रियान्वित करने के लिए जनता, बीमा-कंपनी, सरकारी एवं निजी अस्पतालों और राज्य एजेन्सियों के बीच सामंजन स्थापित करना।

देशी और विदेशी स्वास्थ्य बीमा के अतिरिक्त केन्द्र सरकार भी स्वास्थ्य बीमा योजनाओं की शुरूआत की है। जिसमें एक अध्ययन के अनुसार 12% लोग अभी तक बीमाकृत हो चुके हैं। वर्तमान में सरकार प्रत्येक परिवारों की स्वास्थ्य बीमा का प्रीमियम चुकाने हेतु 600 रू० प्रतिमाह देने की योजना बना रही है। जिस प्रीमियम राशि को एक वर्ष तक केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा पूर्ण रूप से भुगतान करना होगा। इस योजना के अन्तर्गत लाभार्थियों को उच्च गुणवत्ता पूर्ण अस्पतालों से भरपूर चिकित्सा की सुविधा मिलेगी और सर्जरी भी हो सकेगा।''

19. राष्ट्रीय वेक्टर जनित नियंत्रण कार्यक्रम (एन.वी.वी.डी.सी.पी.): यह कार्यक्रम केन्द्रीय स्थास्थ्य मंत्रालय का कार्यक्रम है लेकिन अब यह कार्यक्रम एन.आर.एच.एम. के अधीन क्रियाशील है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कालाजार, चिकनगुनिया, जापानी इन्सेफलारिस, मलेरिया और फाइलेरिया जैसे विषाणु जनित रोगों के नियंत्रण एवं रोकथाम के लिए चलाया जाने वाला कार्यक्रम है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।[19]

I. मलेरिया (Malaria): मलेरिया हजारों वर्ष पुरानी संक्रमणीय एवं घातक रोग है जो सामान्य रूप से उष्ण कटिबन्ध तथा सम-शीतोषण क्षेत्रों के लोगों में होता है। यह रोग मनुष्यों में एक प्रकार के परजीवी के संक्रमण के कारण होता है जिसे प्लाजमोडियम कहा जाता है। प्लाजमोडियम की चार विशेष प्रजातियों के द्वारा मनुष्य मलेरिया रोग से संक्रमित हो जाते हैं। इन प्रजातियों में मुख्यत: प्लाजमोडियम फॉलसीपरम, प्लाजमोडियम ओभाल, प्लाजमोडियम वाइभेक्स तथा प्लाजमोडियम मलेरेई है। प्लाजमोडियम फॉल्सीपरम के द्वारा मनुष्यों में होने वाला संक्रमण खतरनाक (Serious) तथा जीवन को खतरा पैदा करने वाला (Life - threating) होता है क्योंकि चिकित्सोपरांत भी इसके संक्रमण के कारण 15 - 20% लोगों की मृत्यु हो ही जाती है जबकि उपरोक्त शेष तीन प्रजातियों के द्वारा संक्रमण कम हानिकारक होता है। विकासशील देशों के 1 से 5 वर्ष की आयु वाले बच्चों की मृत्यु के कारणों में एक मुख्य कारण मलेलिया हीं होता है। प्लाजमोडियम मनुष्यों के यकृत (Liver) तथा लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles) और मादा एनोफ्लीज मच्छरों के आहार नाल (Gut) में वृद्धि करते हैं। मादा एनोफ्लीज मच्छर मलेरिया रोग के वाहक होते हैं। जब प्लाजमोडियम संक्रमित मादा एनोफ्लीज मच्छर किसी स्वस्थय मनुष्य को काटता है तो वैसी स्थिति में प्लाजमोडियम मनुष्यों के रक्त प्रवाह में पहुँचकर रक्त को संक्रमित कर देता है और अंत में मनुष्य को मलेरिया हो जाता है। यह रोग किसी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सीधे तौर पर नहीं होता है।

II. चिकुनगुनिया: यह दुर्बल करने वाली गैर घातक वायरल रोग है जो तीन दशकों के बाद देश में पुन: उभरा हैं। इस रोग के कारण मृत्यु की संभावना नहीं के बराबर होती है। भारत में यह वृहत महामारी के रूप में उपस्थित है, जो एड्स मच्छर द्वारा फैलता है लेकिन ए.ई. एजिप्ति तथा ए.ई. अल्बोपिक्ट्स, दोनों की इस रोग को फैला सकते हैं। मनुष्यों को चिकुगुनिया वायरस का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है क्योंकि सामान्यत: यह रोग संक्रमित व्यक्तियों को काटने के बाद अन्य व्यक्तियों को काटने से फैलाता हैं। इस रोग का लक्षण डेंगू ज्वर में लक्षणों से काफी मिलता है। इस रोग में लंबे समय तक जोड़ों में दर्द रहता है।

वर्ष 2006 के दौरान देश के नैदानिक रूप से संदिग्ध चिकुनगुनिया के कुल 1.39 मिलियन मामले पाया गया था, जबकि अपने देश के 35 राज्यों संघ राज्य क्षेत्रों में से 16 राज्य संघ राज्य क्षेत्र इस रोग से प्रभावित है।

III. डेंगू ज्वर/डेंगू हेमोरेंजिक ज्वर: डेंगू ज्वर एक संक्रामक रोग है, जो एक विशेष प्रकार के मच्छरों के कारण होता है। यह मानव निर्मित वैसे पात्रों में उत्पन्न होता है जहाँ पानी एक सप्ताह से अधिक समय तक सड़ता रहता है। तीव्र शहरीकरण, जीवन शैली में परिवर्तनों तथा त्रुटिपूर्ण जल प्रबंधन जैसे शहरी, अर्ध शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अनुपयुक्त जल भंडारण पद्धतियाँ भी इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक होता है। यह दिन में काटने वाला तथा घरों के अंदर मिलने वाले अंधेरे में आराम करना पसंद करता है जिसकी संक्रामकता मानसून के बाद यह चरम शिखर पर होती है। इस रोग में ज्वर, सिर दर्द, मांसपेशियों एवं जोड़ों में दर्द, त्वचा पर एलर्जी, मितली तथा उबकाई होती है। इस रोग के कारण 1996 में मृत्यु दर 3.3 प्रतिशत था लेकिन सरकार द्वारा बेहतर प्रबंधन के कारण वर्ष 2009 में घटकर 0.57 प्रतिशत रह गई है।

''राष्ट्रीय वेक्टर जनित रोग नियंत्रण निदेशालय ने प्रभावित राज्यों को डेंगू की रोकथाम तथा नियंत्रण के लिए विस्तृत मार्गनिर्देश दिए हैं। मुद्रित, इलेक्ट्रॉनिक तथा अंतर वैयक्तिक माध्म, बाह्य प्रचार के साथ-साथ सिविल समाज संगठन (एनजीओ/सीवीओ/स्व-सहायता समूह), पी.आर. आई तथा नगर निगम निकायों के साथ अंतर क्षेत्रक सहयोग के जरिए गहन स्वास्थ्य शिक्षा क्रियाकलापों पर जोर दिया गया है। कार्यक्रम द्वारा नियमित पर्यवेक्षण तथा अनुवीक्षण किया जाता है। भारत सरकार ने राज्यों के साथ परामर्श करके विशेष क्षेत्रों / राज्यों में नैदानिक सुविधाओं के वर्धन के लिए प्रयोगशाला सहायता वाले 137 सेंटीनल निगरानी अस्पतालों को अभिज्ञात किया है। इसके अतिरिक्त, तत्काल निदान तथा समर्थन सहायता के लिए, 13 एपेक्स संस्थाओं को अभिज्ञात किया गया है तथा उन्हें सेटीनल निगरानी अस्पतालों के साथ संबद्ध किया गया है। इसको क्रियात्मक बनाने के लिए राष्ट्रीय विषाणु-विज्ञान संस्थान, पुणे द्वारा परीक्षण किट प्रदान किए जाते हैं तथा इनकी लागत का वहन भारत सरकार द्वारा किया जाता है। प्रचालन लागत को पूरा करने के लिए आपतिक अनुदान भी दिया जाता है।''

IV. फाइलेरिया: यह एक जन स्वास्थ्य समस्या है जो जल निकासी एवं सफाई वाले क्षेत्रों, नालियों तथा गड्ढ़ों के प्रदूषित जल में उत्पन्न तथा विकसित होता है। भारत में इसका प्रसार 20 राज्यों तथा संघ क्षेत्रों के लगभग 250 जिलों में विद्यमान है। इसके द्वारा 600 मिलियन जनसंख्या को लिम्फेटिक फाइलेरियासिस होने का खतरा रहता है। यह रोग प्रभावित व्यक्तियों को व्यक्तिगत घात पहुंचाता है जिसके कारण इसे लोग सामाजिक कलंक के रूप में देखते हैं लेकिन यह घातक नहीं होता है। इस रोग के उन्मूलन का लक्ष्य वर्ष 2020 तक रखा गया है। भारत सरकार इसके उन्मूलन के लिए वर्ष 1997 में विश्व स्वास्थ्य एसेंबली संकल्प पर हस्ताक्षर किया था।

टण्कालाजार: यह प्रोटोजोआ परजीवी लीशमानिया डोनोवानी के कारण होता है जो सैंड फ्लाई के माध्यम से फैलता है तथा छायादार, अंधेरे, नम तथा गर्म स्थलों,नर्म मृदा के दरारों तथा टैंकों, ईंटों तथा पत्थरों के ढ़ेरों में उत्पन्न तथा विकसित होता है। इसके प्रजनन की रोकथाम के लिए उचित साफ सफाई तथा स्वच्छता काफी महत्त्वपूर्ण होता है। कालाजार नियंत्रण

कार्यक्रम वर्ष 1990-91 में शुरू किया गया था। भारत सरकार की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002) ने देश से कालाजार के उन्मूलन लिए 2010 का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। उन्मूलन के लक्ष्य प्राप्ति अनुसरण में मामला अभिज्ञान तथा उपचार अनुपालन को सुदृढ़ किया गया है तथा 39 तीव्र नैसर्गिक परीक्षण किट तथा मौखिक औषधि मिल्टेफेसिन की शुरूआत की गई है। इसके उन्मूलन के लिए विश्व बैंक बिहार, झारखंड तथा पश्चिम बंगाल के 46 जिलों में सहायता प्रदान कर रहा है।

इसका विशेष प्रकोप बिहार के 31, झारखंड 4, पश्चिम बंगाल 11 तथा उत्तर प्रदेश के 6 जिलो में है। 1992 में 77.079 लोग प्रभावित थे जो घटकर वर्ष 2007 में 44553 हो गया है एवं मृत्यु जहाँ भी 2007 में 1419 था वह घटकर 203 रह गए हैं।

VI. जापानी एन्सेफलाटिस: यह जुनोटिक रोग है जो क्यूलेन्स समूह से संबंधित रोगाणु मच्छर द्वारा होता है। प्रकृति में पारेषण चक्र का अनुरक्षण सूअरों जल पक्षियों जैसे जे.ई. वायरस के पशु भंडारों द्वारा किया जाता है। मनुष्य इसके लिए घातक होता है। यह उन क्षेत्रों में अधिक नैलता है जहाँ पशुओं / पक्षियों तथा मानवों के सन्निकट अंत: क्रिया होता है।

20. दक्षता निर्माण सहायता: यह केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय का कार्यक्रम है जिसे "दक्षता निर्माण हेतु सहायता" के नाम से जाना जाता है। 9वीं-10वीं पंचवर्षीय योजना से क्रियाशील इस योजना का मुख्य-उद्देश्य राष्ट्रीय राज्यमार्गों पर अवस्थित राज्य-सरकारों के अस्पतालों को आपात अभिघात सुविधाओं का विकास और सुदृढ़ करना ताकि अभिघात व्यक्तियों को अभिलम्ब चिकित्सीय सुविधा प्राप्त हो सके। इस योजना में राशि भुगतान के संबंध में यह प्रावधान किया गया है कि ऐसे मार्गों पर राज्यों के प्रत्येक अस्पतालों को 1.5 करोड़ रुपये या चिकित्सालयों के वास्तविक आवश्यक सुविधाओं के उन्नयन करने में लागत राशि में से जो कम हो, भुगतान किया जाएगा और भुगतान के इसी क्रम में 30 राज्यों के चयनित 112 अभिघात केन्द्रों को अब तक 154.43 करोड़ रुपयों का भुगतान किया गया है।[20]

इस योजना के मूल्यांकन के बाद ऐसे केन्द्रों पर अपेक्षित जन-शक्ति का अभाव और अपर्याप्त धन राशि के कमी के कारण इसे स्वर्णिम-चतुर्भुज योजना के साथ संलग्न कर वैज्ञानिक रूप से ऐसे अभिघात केन्द्रों के उन्नयन लिए 732.75 करोड़ रुपये की राशि का अनुमोदन किया गया, ताकि ऐसे मार्गों पर रूगन्ता और अभिघात के कारण मृत्यु दर को कम किया जा सके। इसके लिए किसी भी दुर्घटनाग्रस्त स्थल से 50 कि.मी. की दूरी पर पूरी तरह से तैयार आतुर-वहन, जीवन-सहायता उपकरण और परिलक्षित कर्मचारी उपलब्धता की बात है।

उपरोक्त योजना को अभिघात् परिचर्या केन्द्र के अन्तर्गत L-III, L-IIrFkk L-Irhu कोटियों में विभाजित किया गया है। L-IjkT; के अन्तर्गत होगा जो गंभीर रूप से घायल तथा चोट से जख्मी व्यक्ति के उच्चतम स्तर का निश्चित तथा व्यापक परिचर्या प्रदान करेगा, L-II अभिघात केन्द्र प्रत्येक 300 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित तथा L-III प्रत्येक 100-150 किलोमीटर पर अवस्थित रहेगा। प्रत्येक कोटियों में अभिघात परिचर्या केन्द्र के लिए निम्नलिखित रूप में राशि आवंटित की गई है।

कोटि	*राशि (करोड़)*
1. L-III	4.8
2. L-II	9.65
3. L-I	16

21. राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (National Urban Health-Mission): स्वास्थ्य की यह योजना इसी वर्ष के बजट सत्र में घोषित की गई। इस योजना के लिए अभी न तो कोई राशि स्वीकृत हुई और नहीं कोई विशेष राशि का विमुक्तीकरण की गई है, लेकिन इस स्वास्थ्य मिशन के क्रियान्वयन के बाद शहरों में रहने वाले 5-6 करोड़ निर्धन / गरीब लोगों को स्वास्थ्य की सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

22. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (National Rural Health Mission): इस कार्यक्रम की शुरूआत 12 अप्रैल 2005 को तत्कालीन प्रधानमंत्री के द्वारा की गई है। इस मिशन के कार्यान्वयन हेतु विस्तृत कार्य ढ़ाँचे का, अनुमोदन केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के द्वारा 2006 में किया गया है। जिसका उद्देश्य ग्रामीण समुदाय के विशेष रूप से गरीब एवं असुरक्षित वर्गों को सुलभ, वदनीय और गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं को प्रदान करना है। राश्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अर्न्तगत आठ अधिकार प्राप्त कार्यदल वाले राज्यों, पूर्वोत्तर राज्यों, जम्मू व कश्मीर और हिमाचल प्रदेश सहित 18 राज्य विशेष ध्यानाकर्शण के रूप में आते हैं। वर्तमान में मिशन दुर्गम और अगम्य क्षेत्रों तथा अध्य कार्य निश्पादन वाले जिलों की असमानता को दूर करने की दृष्टि से विशेष ध्यान देते हुए उपरोक्त सीमा क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया गया है। उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी को विस्तृत करने, स्वास्थ्य प्रबंधन में सूचना प्रणाली को सुधार करने, जन-स्वास्थ्य प्रबंधन में सूचना-प्रणाली को सुधार करने, जन-स्वास्थ्य के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए निजी संसाधनों को अत्याधिक प्रयुक्त करने तथा गरीबों की सामाजिक सुरक्षा में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका पर अत्यधिक जोर देने की आवश्यकता है। यह मिशन एक बहुप्रयोजन बाँडबैन्ड के रूप में क्रियाशील है क्योंकि इस योजना के अर्न्तगत प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम, विभिन्न रोग नियंत्रण कार्यक्रम और स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के द्वारा क्रियान्वित और क्रियाशील सभी शीर्शस्थ कार्यक्रमों को एकीकृत किया गया है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:-

* शिशु मृत्यु दर और मातृ मृत्यु अनुपात में कमी।
* महिलाओं का स्वास्थ्य, बाल स्वास्थ्य, पानी, सफाई एवं स्वच्छता, रोग प्रतिरक्षण और पोषण जैसी जन स्वास्थ्य सेवाओं तक व्यापक पहुँच।
* स्थानीय स्थानिक-मारी रोगों सहित संचारी एवं गैर-संचारी रोगों की रोकथाम एवं नियंत्रण।
* एकीकृत व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या तक पहुँच।
* जनसंख्या स्थिरीकरण, लिंग एवं जनांकिकीय संतुलन।
* स्थानीय स्वास्थ्य परम्पराओं को पुनर्ज्जीवित करना और आयुष को मुख्य धारा में लाना।
* स्वस्थ्य जीवनशैलियों को बढ़ावा देना।

23.इन्दिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना (Indira Gandhi Matritva Sahayog Yojanam IGMSY): यह योजना महिलाओं के सहायतर्था ''महिला और बाल-विकास'' मंत्रालय, भारत सरकार की व्यक्तिगत योजना है जिसका प्रारंभ 2010 से किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत 19 वर्ष की आयु वाली स्तनपान और गर्भवती एवं उस तरह की महिलाएँ जिनको दो ही बच्चे हैं उन्हें नगदी भुगतान के रूप आर्थिक लाभ दिया जाता है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गर्भावस्था एवं बच्चों के देख-रेख के समय हुए पारिश्रमिक क्षति की पूर्ति को पूरा करने एवं शिशुओं एवं बच्चों के पोषण विकसित करने एवं स्तनपान के परिपेक्ष्य में है।[21-22]

उद्देश्य(Objectives): इस कार्यक्रम का निम्नलिखित उद्देश्य है।

1. उचित प्रैक्टिस विकसित, देखभाल और गर्भावस्था, प्रसव और स्तनपान के साथ संस्यागत सेवाएँ प्राप्त करना।
2. महिलाओं को अधिकतम पोषण के अनुसरण हेतु उत्साहित करना एवं शिशु एवं बच्चों के लिए अविलम्ब प्रारंभ कर अगले 6 माह तक स्तनपान।
3. उपरोलिखित क्रियाओं के लिए उचित वातावरण तैयार करने में सहयोग, गर्भवती एवं स्तनपान वाली महिलाओं का स्वास्थ्य और पोषण विकसित करना।

क्र०सं०	शर्ते	सत्यापन
	प्रथम किस्त	**परिपत्र**
1.	चार माह के भीतर आँगनवाड़ी या स्वास्थ्य केन्द्रों उप-केन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, जिला चिकित्सालय और जननी सुरक्षा योजना के अन्तर्गत आने वाले चिकित्सक) में पंजीकृत	एम०सी०पी० कार्ड और आई०जी० एस०एम० वाई० पंजी
2.	गर्भकालिन अवस्था में न्यूनतम एक बार जांच	एम०सी०पी०कार्ड
3.	आई०एफ०ए० टेबलेट प्राप्ति	–
4.	कम से कम एक बार टिटनेस का टीका प्राप्ति	–
5.	कम से कम एक बार परामर्शन सत्र में सम्मिलित	आई०जी०एम०एस० पंजी
	दूसरा किस्त	**परिपत्र**
6.	बच्चे के जन्म का पंजीकरण	
7.	बच्चे को दिया गया पोलियों और बी०सी०जी० का टीका	एम०सी०पी०कार्ड
8.	बच्चे को दिया गया पोलियों और डी०पी०टी०-। का टीका	
9.	बच्चे को दिया गया पोलियों और डी०पी०टी०-।। का टीका	
10.	जन्म के बाद अधिकतम चार तथा न्यूनतम दो बार वजन कराना	एम०सी०पी०कार्ड और ग्रोथ मोनिटेरिंग पंजी
11.	आँगनवाड़ी केन्द्र/ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्र एवं पोषण दिवस पर माता के द्वारा न्यूनतम दो और अधिकतम तीन बार आई०वाई०, सी०एफ० के परामर्शन सत्र में सम्मिलित।	आइ०जी०एम०वाई०पंजी

	तृतीय किस्त	परिपत्र
12.	अतिरिक्त छः माह तक स्तनपान	स्वयं रिर्पोटिंग
13.	बच्चे के छः माह के आयु के बाद परिपूरक आहार का परिपत्र	
14.	बच्चे को दिए गए पोलियों और डी.पी.टी.-3 का टीका	एम.सी.पी. कार्ड
15.	बच्चे के 3-6 के आयु के अवधि में न्यूनतम दो-बार वजन करना	एम.सी.पी. कार्ड एवं ग्रोथ मोनटेरिंग पंजी
16.	माँ के द्वारा ए-डब्लू-सी/वी.एच.एन.डी./ होम पर आई वाई.सी.एफ. सत्र के अन्तर्गत 3-6 स्तनपान के बाद सम्मिलितिकरण।	आई.जी.एम.एस.वाई. पंजी

24. जननी सुरक्षा योजना: यह योजना भारत सरकार की स्वयं का 100 प्रतिशत अपनी योजना है जिसकी शुरूआत 12 अप्रैल 2005 में भारत-सरकार के प्रधानमंत्री ने की थी तथा शुरूआती काल में ही उन राज्यों में विशेष ध्यान देने के पहल से की गई है जहां संस्थागत प्रसवों में पर्याप्त कमी पायी गयी है। योजना की शुरूआती दौर सत्र 2006-2007 में 7.39 लाख लाभार्थियों की संख्या पायी गयी वहीं 2010-2011 सत्र में लाभार्थियों की संख्या 113.89 लाख पहुँच गई है। इस योजना का मौलिक उद्देश्य संस्थागत प्रसव को विकसित करके नवजात शिशुओं और माताओं की मृत्यु को कम करना है। इसमें प्रसवोत्तर परिचर्या के साथ नगद भुगतान किया जाता है। जिसके अन्तर्गत गरीब परिवार के महिलाओं को ऐसे अवसरों पर एक मुश्त राशि मुहैया करना। इस योजना को सफल बनाने में (संस्थागत प्रसव के लिए) उत्साहित आशाओं (ASHA) की क्रियाशीलता ही अहम् भूमिका का निर्वहन करता है जबकि इसकी सफलता संस्थागत प्रसव के उपलब्धि के आधार की जाती है।

योजना की बनावट: इस योजना को निवास करने वाले माताओं के आधार पर लो परफोरमिंग स्टेटस (Low-Performing Status) एवं हाई-परफौरमिंग स्ट्टस (High-Performing Status) दो भागों में विभाजित किया गया है जिसे एक तालिका के रूप में नीचे दिया जा रहा है।[23-24]

ग्रामीण क्षेत्र (Rural Arease):-

श्रेणी	*मातृ-पैकेज*	*आशा पैकेज*	*कुल पैकेज (रू.)*
एल.पी.एस.	1400	600	2000
एच.पी.एस.	700	-	700
शहरी-क्षेत्र(Urban Areas):-			
श्रेणी	मातृ-पैकेज	आशा पैकेज	कुल पैकेज द्धरू.ऋ
एल.पी.एस.	1000	200	1200
एच.पी.एस.	600	-	600

योजना की मोनेटेरिंग: इस योजना में कोई कमी और त्रुटि उत्पन्न नहीं हो इसके लिए प्रत्येक एन.एन.एम. के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आनेवाली आँगनवाड़ी केन्द्रों पर प्रत्येक माह में एक बार एक दिन एक मीटिंग की जाती है तथा मासिक एवं वार्षिक रिर्पोट तैयार के सरकार को समर्पित की जाती है जहाँ सरकार इसे अपने स्तर से समीक्षा करता है।

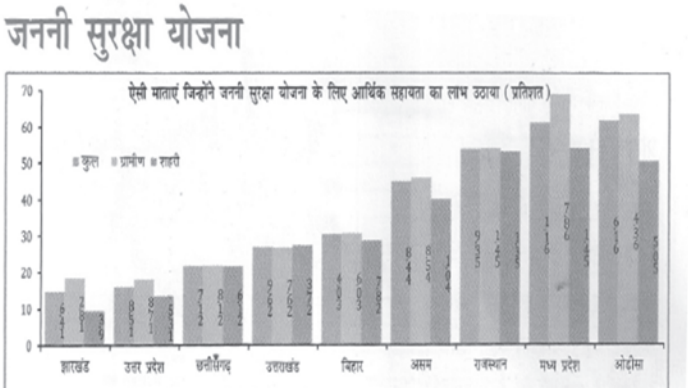

देश के विभिन्न राज्यों में लाभार्थियों की स्थिति[25]

इस प्रकार केन्द्र सरकार के द्वारा उपरोक्त प्रस्तुत सभी स्वास्थ्य योजनाएँ एवं कार्यक्रम जन-समुदाय के स्वास्थ्य को समान्य बनाए रखने के लिए कारगर एवं उपयोगी कदम है। भारत सरकार के द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह सराहनीय कदम और उच्च कोटि का प्रयास है जो धीरे-धीरे जन-समुदाय तक पहुँचता जा रहा है लेकिन जन-समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति उपरोक्त स्वास्थ्य कार्यक्रम से लाभान्वित हो सकें, इसके लिए इस कार्यक्रम को और व्यापक बनाने तथा इसमें तत्परता लाने की आवश्यकता है क्योंकि अभी भी समाज के कई लोग एवं वर्ग जानकारी एवं पहुँच के अभाव में इसके लाभ से वंचित एवं अछूता है। अत: ऐसी संभावना व्यक्त की जा सकती है कि सरकार भविष्य में निश्चित ही ऐसा प्रयास करेगी कि कोई व्यक्ति इस लाभ से नहीं छूटे एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय जन-समुदाय का स्वास्थ्य सर्वोच्च कोटि की मानी जाए तथा अपना देश स्वास्थ्य का मानक प्रस्तुत कर सकें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य रक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार हैं, जिसका संरक्षण किया जाना आवश्यक है। बढ़ते हुए चिकित्सकीय उपेक्षा के मामलों को देखते हुए चिकित्सा विधियों में आवश्यक सुधार प्रक्रिया के द्वारा मरीजों के अधिकार एवं चिकित्सा व्यवसायियों के दायित्वों का निर्धारण किया जाना चाहिए, ताकि चिकित्सा प्रणाली में कोई कमी न रहें।इस संदर्भ में निम्नांकित सुझाव कारगर सिद्ध हो सकते हैं:-

- प्रत्येक मरीज को धर्म, जाति, लिंग, आयु, वंश, राजनीतिक संबंध, आर्थिक स्तर के भेदभाव के बिना स्वास्थ्य संबंधी एवं चिकित्सकीय उपचार का अधिकार दिया जाना चाहिए।
- प्रत्येक मरीज को आपातकालीन चिकित्सा सुविधा का अधिकार होना चाहिए।
- चिकित्सकीय उपेक्षा व्यक्ति के मूल मानवाधिकार स्वास्थ्य के अधिकार का हनन करती हैं साथ ही यह व्यक्ति के गरिमामय जीवन के अधिकार को ठेस पहुंचाती है। अत: हमें अनुच्छेद 21 में संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 21 (ठ) जोड़कर चिकित्सा के अधिकार व स्वास्थ्य सुरक्षा के मानक को मूलभूत अधिकार बनाना होगा।

- चिकित्सकीय उपेक्षा पर अभी कोई स्पष्ट कानूनी प्रावधान नहीं है। इसके लिए हमें अपकृत्य विधि, भारतीय दंड संहिता, साक्ष्य विधि का सहारा लेना पड़ता है। अत: एक स्पष्ट कानूनी प्रावधान विधायिका द्वारा करना होगा ताकि चिकित्सकीय उपेक्षा के मामलों की असल सुनवाई हो सकें और पीड़ित व्यक्ति को गरिमापूर्ण न्याय प्राप्त हो सके।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 एवं सातवीं अनुसूची की सूची-।। राज्य सूची की प्रविष्टि संख्या 6 में हैं जोकि राज्य का विषय है और इस पर राज्य कानून बना सकते है। इस संदर्भ में असम का उदाहरण समीचीन होगा जो 12 मार्च, 2010 को लोगों के स्वास्थ्य के अधिकार को सुनिश्चित करने वाला कानून बनाने वाला भारत का पहला और एकमात्र राज्य बन गया। किंतु इतने विशाल गणराज्य में मात्र एक राज्य द्वारा की गई पहल अन्य राज्यों के निवासियों को उपलब्ध नहीं है। अत: भारतीय संविधान में उचित संशोधन के द्वारा लोक स्वास्थ्य, अस्पताल और डिस्पेंसरीज को समवर्ती सूची में लाया जाना चाहिए ताकि इस पर ऐसा कानून बनाया जा सके जो पूरे राष्ट्र पर लागू हों।
- चिकित्सकीय मामलों में उपेक्षा की मात्रा को निर्धारित करना कठिन हैं अत: विशेषज्ञों का एक पैनल हो जिसमें न सिर्फ चिकित्सक बल्कि अधिवक्ता, समाजशास्त्री और शिक्षाविद भी शामिल हो जो मामलें की जांच करें।
- चिकित्सा एक सम्मानित व्यवसाय हैं जिसमें उच्च गुणवता के चिकित्सकीय व्यवहार की आवश्यकता होती है। चिकित्सा व्यवसायिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इलाज के दौरान ईमानदार और प्रतिबद्ध रहें।
- राज्य का यह दायित्व हैं कि भारतीय चिकित्सा अधिनियम के तहत पंजीकृत चिकित्सक ही चिकित्सा व्यवसाय करें।
- व्यक्ति का जीवन अनमोल हैं, उसे बचाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए ताकि चिकित्सा जगत की प्रतिष्ठा के साथ उसका रिश्ता व विश्वास कायम रहें।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची:

1. नेशनल रूरल एण्ड हेल्थ मिशन, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2010
2. मरीजों के मानव अधिकार, योजना, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, अप्रैल, 2011
3. वही;
4. वही;
5. The Hindu (2009) :- Caste inequalities in health. www.thehindu.com/ opinion/lead/caste …….. articles 70-75
6. प्रभात खबर (6 फरवरी, 2014), खुशखबरी, मिशन मानव विकास की बैठक में स्वास्थ्य सुविधा बढ़ाने का फैसला, 18 हजार बनेगें न्यू हेल्थ सब सेंटर, दैनिक समाचार पत्र, पेज नं० - 2
7. भारतीय चिकित्सा परिषद्, नई दिल्ली
8. राष्ट्रीय घेघा नियंत्रण कार्यक्रम, भारत सरकार, 1962
9. राष्ट्रीय डायबिटीज नियंत्रण कार्यक्रम, भारत सरकार, नई दिल्ली
10. राष्ट्रीय न्युट्रिशन्ल एनीमिया प्रोफाइलेसिस कार्यक्रम, भारत सरकार
11. राष्ट्रीय राजयक्ष्मा नियंत्रण कार्यक्रम, भारत सरकार 1962

12. एड्स नियंत्रण कार्यक्रम, स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
13. भारत 2011, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
14. वही;
15. वही;
16. राष्ट्रीय कुष्ठ नियंत्रण कार्यक्रम, भारत सरकार, नई दिल्ली
17. भारत 2011, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
18. वही;
19. वही;
20. वही;
21. en.wikipedia.org/wiki/The_Indira_gandhi_Matritva_sahayog_ yojana(IGMSY)
22. Socialwelfare.kdsbin.gov.in/scheme……../scheme_pro/r.php.
23. Janani suraksha yojana (India)- wikipedia. Thefree encyclopedia. en. Wikipedia. org / wiki/ janani_suraksha_yojna_(India)
24. Family welfare statistics in India 2011. P.No. – 25
25. राष्ट्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय वार्षिक सर्वेक्षण-2012

आपातकाल की भूमिगत पत्रकारिता

डॉ० अरूण कुमार भगत

एसोसिएट प्रोफेसर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सरकार द्वारा 26 जून, 1975 को घोषित आपातकाल देश और समाज पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। आपातकाल की घोषणा के बाद भारतीय प्रेस पर प्रीसेंसरशिप लगा दिया गया था। कुल उन्नीस महीने के आपातकाल के दौरान भारतीय प्रेस ने जो त्रासदी भोगी-झोली, वह पत्रकारिता के इतिहास में काले अध्याय के रूप में रेखांकित हो गया है। पत्रकारिता-जगत के अधिकतर पत्रकारों-संपादकों ने माना है कि सन् 1974-75 के दौरान भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं कि देश पर आपातकाल थोपना एक मात्र विकल्प बचा हो। भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने भी अभी हाल में कहा है कि संभवतः आपातकाल को टाला जा सकता था।

विश्लेषकों का मानना है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा श्रीमती इंदिरा गाँधी के चुनाव को अवैध घोषित करने तथा उन्हें छः वर्षों तक चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित किए जाने की निराशा और हताशा से उपजी मानसिकता संभवतः आपातकाल की घोषणा का तात्कालिक कारण बना हो। इसके अतिरिक्त विपक्षी दलों द्वारा आंदोलन की घोषणा, कांग्रेस के विद्रोह की संभावना श्रीमती गाँधी की तानाशाही प्रवृत्ति, कांग्रेस के चापलूस नेताओं की चौकड़ी, सत्ता से चिपके रहने की मानसिकता तथा महँगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण की असमर्थता जैसे कुछ प्रमुख कारणों ने आपातकाल थोपने की पृष्ठभूमि निर्मित की थी। खैर जो कुछ भी हो आपातकाल ने जो तांडव मचाया उससे समाज-जीवन त्राहिमान कर उठा था।

आपातकाल की घोषणा के साथ ही वयोवृद्ध राजनेता और संपूर्ण क्रांति के प्रणेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण, अटल विहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी इत्यादि सहित हजारों लोगों को गिरफ्तार किया गया। इसने राजनेताओं और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के साथ-साथ लेखक, पत्रकार, प्राध्यापक, अधिवक्ता जैसे बुद्धिजीवी वर्गों के लोग भी बड़ी संख्या में शामिल थे। केवल दिलली विश्वविद्यालय के 300 से अधिक प्राध्यापक आपातकाल के दौरान गिरफ्तार किए गए थे। आपातकाल की त्रासदी और भयावह स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आपातकाल के 19 महीने के दौरान 1 लाख से भी अधिक लोगों को बंदी बनाया गया था जो 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से भी अधिक था।

आपातकाल के दौरान प्रेस की स्वतंत्रता को छीनने के लिए प्री-सेंसरशिप के साथ-साथ और भी कई कदम उठाए गए। राष्ट्रपति द्वारा 8 दिसंबर, 1975 को तीन अध्यादेश जारी किए गए जिससे प्रेस को स्वतंत्रता दमित और खंडित हुई। देश के प्रायः सभी समाचार-पत्रों के कार्यालयों पर पुलिस का पहरा डाल दिया गया। अनेक समाचार पत्रों की प्रेस की बिजली काट दी गई ताकि समाचार-पत्र को

छपने से रोका जा सके। जो समाचार पत्र छप गए थे, उन्हें वितरित नहीं होने दिया गया। कुल मिलाकर उसी रात इस बात की पूरी व्यवस्था कर ली गई कि देश में क्या कुछ हो रहा है, इसका पता जनता को नहीं चल सके। इसके बावजूद दैनिक जागरण और नई, दुनिया सहित अनेक समाचार-पत्रों में उस दिन विरोध-स्वरूप संपादकीय का स्थान खाली छोड़ दिया था और सरकार को खुली चुनौती दी थी। इतना ही नहीं देश के सैकड़ों पत्रकारों ने जन सामान्य को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए भूमिगत संचार-व्यवस्था शुरू कर दी तथा इसके तहत दर्जनों समाचार बुलेटिनों का प्रकाशन करने लगे।

कुला मिलाकर प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित तथा वितरित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं के सेंसरित होने के मद्देनजर भूमिगत संचार-व्यवस्था समानान्तर रूप से खड़ी हो गई थी। जनता के बीच सूचना संप्रेषण प्रक्रिया के छिन्न-भिनन हो जाने के बावजूद सरकार द्वारा एकतरफा संवाद संप्रेषित करने की मानसिकता पर कुठाराघात किया गया। पत्रकारों ने गुप्त रूप से निकलने वाले नियमित समाचार बुलेटिन के साथ-साथ पूरे देश में अलग-अलग स्थानों से विभिनन प्रकार के हैंडबिल, पर्चे, बुकलेट, फंलेट इत्यादि निकालकर पुलिसिया-दमन का कच्चा-चिट्ठा खोलते रहे। जनसंचार की इस वैकल्पिक व्यवस्था ने न केवल जन-जीवन को आपातकाल की सच्चाई से अवगत कराया अपितु भूमिगत आंदोलन को भी धारदार बनाया।

अखिल भारतीय लोक-संघर्ष-समिति द्वारा निम्नलिखित बुकलेट प्रकाशित किए गए, जो आपातकाल का कच्चा चिट्ठा खोलते हैं–1. ट्वंटी लाइस ऑफ मिसेस एंटी गाँधी, 2. एनाटॉमी ऑफ फॉसिज्म, हू इज कॉसिस्ट वी ऑर दे, 3. फैक्ट्स (नेल (Nail) इंदिराज लाइस), 4. ह्वेन डिसऑबिडिएंस ट् लॉ इज ए ड्यूटी, 5. चार्टर ऑफ सिविल लिबर्टीज, 6. संविधान को बदल डालने का प्रारूप, 7. इमरजेंसी एक्स-रेज, 8. फाजिसज्म, 9. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और राजनीति, 10. काली रात।[1]

आपातकाल के दौरान अनेक समाचार बुलेटिन भी प्रकाशित किए गए, जिनमें पटना से प्रकाशित निम्नलिखित बुलेटिन के नाम उपलब्ध हैं–1. लोकवाणी (लोक-संघर्ष-समिति और विद्यार्थी-परिषद्), 2. तरुण क्रांति (छात्र-संघर्ष-समिति), 3. हमारा संघर्ष (भारतीय लोकदल), 4. मुक्ति-संग्राम (लोहिया विचार मंच एवं छात्र-संघर्ष-समिति), 5. जनमुक्ति (मार्क्सवादी), 6. क्रांतिवाद (युवावाहिनी), 7. छात्र-शक्ति (विद्यार्थी-परिषद्), 8. भारतीय (अखिल भारतीय विद्यार्थी-परिषद्), 9. जनता समाचार, 10. लोक-संघर्ष, 11. संग्राम, 12. लोकपक्ष (युवावाहिनी एवं छात्र-संघर्ष-समिति), 13. युवा-संघर्ष।[2]

सेंसरशिप के कारण सरकार और समाज के बीच सूचनाओं के संप्रसारण में आने वाली परेशानियों का अनुभव सरकार को भी नहीं था। प्रशासन की तानाशाही की खबर किसी-न-किसी रूप में जनता तक तो पहुँच जाती थी, किंतु सरकार तक वह समाचार नहीं पहुँच पाता था। तानाशाही की तेज आँच में लोक-स्वातंत्र्य धू-धू कर जल रहा था और सरकार बेखबर थी। सरकार को यह गलतफहमी बनी हरी कि सभी समस्याओं की जड़ पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं। यही कारण है कि आपातकाल के दौरान उननीस महीनों तक सत्ता के दमन-चक्र के नीचे पत्रकारिता कराहती रही। सेंसर की कैंची ने उसका स्वरूप ही बिगाड़ दिया; जिसका खामियाजा उसे भुगतना पड़ा।

प्रचार के द्वारा सत्य को असतय और असत्य को सत्य में बदला जा सकता है–ऐसा हिटलर तथा स्टॉलिन दोनों करके दिखा गए थे। इंदिरा जी दक्षिणपंथी कम्युनिस्टों की मदद से उसी प्रकार का प्रचारात्मक आक्रमण कर रही थीं। जे.पी., आचार्य कृपलानी, मुहम्मइद करीम छागला, कुलदीप नैयर, दुर्गा, भागवत, फर्णाश्वरनाथ 'रेणु', डॉ. रघुवंश, गौर किशोर घोष इत्यादि अनेक सर्वमान्य नेताओं, पत्रकारों तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों की आवाज कुचल दी जाती थी।[3]

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वैचारिक पृष्ठभूमि से जुड़े हुए पत्रकारों, लेखकों और साहित्यकारों ने देश के प्राय: सभी राज्यों से भूमिगत पत्र-पत्रिकाएँ निकालने लगे थे। यह सब काम पुलिस-प्रशासन को चकमा देकर गुपचुप तरीके से किया जाता था। जाहिर है इन कामों में जोखि भी कम नहीं था किंतु इसका प्रभाव जन-मानस पर कफी पड़ रहा था। दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'जनवाणी', देहली न्यूज बुलेटिन, पब्लिक सर्वेंट और दिल्ली समाचार ने समानांतर प्रचार-व्यवस्था कायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तो हरियाणा का 'दर्पण' पुलिस-प्रशासन के लिए सिरदर्द बन गया। इन सभी पत्र-पत्रिकाओं ने भूमिगत संचार व्यवस्था में जान फूँक दी। इससे न केवल संगठनात्मक-आंदोलनात्मक सूत्र संचालित होने लगे, अपितु साकार के झूठे प्रचार का खंडन भी होने लगा।

इस अवधि में महिलाओं ने खतरे मोल लेकर भूमिगत साहित्य का वितरण किया; जेलों में बंद कार्यकर्त्ताओं के लिए अन्न-धन एकत्र किया, परिवारों को सांत्वना और सहायता दी तथा बिखरे कार्यकर्त्ताओं के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान किया। इसमें न केवल सामान्य कार्यकत्ता थीं, बल्कि ऐसे बड़े अफसरों की पत्नियाँ भी थीं, जो स्वयं खुलकर सामने नहीं आ सकते थे, पर सरकारी सूचनाएँ देकर अपनी पत्नियों के माध्यम से आंदोलनकारियों को उचित बचाव के संदेश भिजवा देते थे और सरकार द्वारा उठाए जाने वाले कदमों की पूर्ण जानकारी दे देते थे।[4]

विधान द्वारा प्रदत्त अभिवयक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने की यह घटना पत्रकारिता के इतिहास में कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। समाचार-पत्रों पर जब सेंसर लगा तो जनसंचार के अन्य विकल्प सामने आए। भूमिगत बुलेटिन ने कुछ हद तक इसकी क्षतिपूर्ति की। सत्ता के तानाशाही के खबरें ऐसी ही पत्र-पत्रिकाओं एवं मौखिक रूप में एक कान से दूसरे कान तक पहुँचती रहीं। मौखिक तौर पर खबरें पहुँचने के कारण कई बार यह विकृत भी होती रही। भूमिगत संचार व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि जेल में बंद नेताओं अथवा भूमिगत नेताओं का संवाद जनता और कार्यकर्ताओं के बीच सदैव बना रहे। सरकार द्वारा सेंसरशिप थोपकर तोड़ी गई संचार-व्यवस्था भूमिगत बुलेटिनों के माध्यमों से पुर्नस्थापित हो सकती थी।

भूमिगत संचार व्यवस्था में सूनाओं के चार प्रमुख वर्ग थे–(क) संगठनात्मक सूचनाएँ, (ख) सरकार के तानाशाही कदम, जैसे–गिरफ्तारियाँ, दमन, गोलाबारी, बाजारों आदि की तोड़-फोड़, आततायी सरकारी आदेश, नसबंदी के अमानुयिक अभियानों और साम्राज्ञी इंदिरा गाँधी और राजकुमार संजय गाँधी की हरकतों की जानकारियाँ, (ग) सरकारी घबराहट, कर्मचारियों और कर्मियों आदि के बारे में जानकारी एकत्र करना, (घ) सरकारी महकमों, प्रधानमंत्री सचिवालय, मंत्रिमंडल, गुप्तचर संगठनों आदि में दबी हुई या गुप्त जानकारियों को प्राप्त करना।[5]

जनमाध्यम के प्रमुख स्रोत समाचार-पत्र ही नहीं, आकाशवाणी और दूरदर्शन पर से भी जनता का विश्वास उठ चुका था। जनसंचार के लगभग सभी विकल्पों पर सत्ता की पहरेदारी हो गई थी। सेंसरशिप की कैंची से पत्रकारिता कराहने लगी थी। एक पक्षीय समाचार के कारण जनता ने अपना मुँह बी.बी.सी. और वॉयस आफॅ अमेरिका की तरफ कर लिया था। इसकी कमी एक हद तक भूमिगत पत्र-पत्रिकाएँ भी दूर कह रही थीं। आपातकाल के दौरान केवल सत्ता पक्ष की खबरें प्रसारित करना मानो रेडियो का कर्त्तव्य हो गया था। आकाशवाणी की प्रमाणिकता समाप्त हो जाने के कारण बी.बी.सी. की ओर टकटकी लगाए रहते थे। सन 77 के चुनाव के दौरान यद्यपि सेंसरशिप हट गया था फिर भी आकाशवाणी की खबरें सूचना प्रसारण मंत्रालय के सचिव और अतिरिक्त सचिव जैसे अधिकारियों से सेंसर होकर ही प्रसारित होती थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सुनिश्चित कर लिया जाता था कि जनमानस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने वाले कोई समाचार प्रसारित न किए जाए और समाचारों में विपक्ष को महत्त्व न दिया जाए।

आकाशवाणी तो आम लोगों की भाषा में 'इंदिरा वाणी' कही जा रही थी और इन सबकी विश्वसनीयता समाप्त हो चुकी थी। ग्रामीण-अनपढ़ लोग भी गाँव की चौपाल में बी.बी.सी. लंदन प्रतिदिन सुनते थे, जो भारत-संबंधी किसी भी समाचार को बड़े ही प्रमाणिक रूप से प्रसारित करता था।[6] आकाशवाणी द्वारा एकपक्षीय खबर देने का सिलसिला आपातकाल घोषित होने के पहले ही प्रारंभ हो गया था। 'अधिकांश घटनाओं में किसी-न-किसी रूप में आंदोलन की आग सुलगने लगी थी, किंतु उनके समाचार 'आकाशवाणी' में नहीं आते, वह मुख्य रूप से सरकारी दृष्टिकोण से ही समाचारों और विचारों को प्रसारित करती।[7]

आपातकाल के दौरान भूमिगत संघर्ष और भूमिगत पत्रकारिता जनमानस के सहयोग के बल पर ही चलता रहा। लोगों ने जान को जोखिम में डालकर भूमिगत संघर्ष को जीवंत बनाए रखा। जन-सहयोग के कारण ही हर मोर्चे पर पुलिस-प्रशासन और अधिकारी गच्चा खाते रहे। तब हाथ मलने के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं रह पाता था। भूमिगत पत्रिकाओं, पैम्फलेट एवं बुलेटिन को एक जगह से दूसरी जगह भेजने तथा, जनता तक वितरित करने के लिए एक से एक तरीके अपनाए गए। कभी बच्चों के हाथों तो कभी महिलाओं के हाथों सूचना संप्रेषण का कार्य चलता रहा। प्रचार-तंत्र की नई-नई तकनीक के सामने पुलिस दिन-दहाड़े उल्लू बनती रही।

महिलाओं ने घोर निराशा के इस घने अंधकारकाल में भी उसी विलक्षण धैर्य, साहस और बुद्धि के साथ काम करना शुरू किया। भूमिगत कार्यकर्त्ताओं को प्रश्रय देना, खबरें पहुँचाना, पर्चे और चिट्ठियाँ बाँटना, आंदोलन-साहित्य को घर-धर पहुँचाना जेल गए हुए सेनानियों से संपर्क करके उनका मनोबल बनाए रखना, विशेष उत्सवों में विशेष रूप से राखी, मिठाई, दीपों से उन्हें उत्साहि करते रहना, उन परिवार को सहायता पहुँचाना और गुप्त बैठकों के माध्यम से प्रदेश भर में एक भूमिगत संगठन का जाल बिछा देना महिलाओं के द्वारा ही बहुत अंशों से संभव हो सका।[8]

भूमिगत प्रचार-तंत्र की उपलब्धि के संबंध में अटल विहारी वाजपेयी ने लिखा है–सेंसर और प्रचार-तंत्र के एकाधिकार द्वारा श्रीमती गाँधी जनता को विपक्ष से पूरी तरह से काट देना चाहती थीं। लेकिन हुआ ठीक इसका उलटा। उनके प्रचार-तंत्र की विश्वसनीयता खत्म सी हो गई थी। भूमिगत साहित्य ने विपक्ष से जनता को जोड़े रखा। इसके विपरीत श्रीमती गाँधी जनता से बुरी तरह कट गई थी। जनता की इस मन:स्थिति से अनभिज्ञ रहने के कारण श्रीमती गाँधी चुनाव करने का फैसला कर बैठीं और जब उन्होंने जनमानस का बदला हुआ रूप देखा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। बहुत हद तक इसका श्रेय भूमिगत प्रचार-तंत्र का है।[9]

आपातकाल में भूमिगत पत्रकारिता के कारण जेलों की खबरें बाहर और बाहर की खबरें जेलों में जाने की व्यवस्था भी बन गई थी। ये खबरें विदेशों तक पहुँचती थी और विदेशों की खबरें इसी माध्यम से भारत जाती थी। एक प्रकार से एक नई अंतर्राष्ट्रीय समाचार-सेवा खड़ी हो गई थी। इस स्वयं-स्फूर्त किंतु गुप्त समाचार सेवा से प्रापत समाचारों को विभिनन नामों के छोटे-छोटे गुपत भूमिगत बुलेटिनों द्वारा जनता तक पहुँचाया जाता था। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो एकपक्षीय समाचार ही जन-जीवन को मिल पाता और सच्ची खबरें उन्हें नहीं मिल पातीं। संचार अवरोध का खामियाजा जनता पर नहीं पड़ सका; किंतु सत्ता और सरकार आपातकाल विरोधियों की मनोदशा को नहीं समझ पाए। यही कारण है कि वे (सरकार) सही विश्लेषण नहीं कर पाए और चुनाव कराने की घोषणा कर दी। संचार अवरोध का कितना बड़ा खामियाजा भुगतना पड़ सकता है यह सन् 77 के चुनाव परिणाम से सामने आया। भारत के भूमिगत संचार तंत्र को विदेशों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी कुछ प्रमुख नेताओं को सौंपी गई थी।

भूमिगत प्रचार-तंत्र का एक विस्तार विदेशों में था। इसी के कारण सरकार का तानाशाही चरित्र विदेशों में छिप नहीं सका। विदेशों में रहने वाले लाखों भारतीयों, बुद्धिजीवियों और सोशलिस्ट इंटरनेशनल के नेताओं, जिन्होंने तानाशाही के विरुद्ध हमारे संघर्ष का नैतिक समर्थन किया, हम उनके आभारी हैं। इस संघर्ष के विदेशों में हुए प्रचार-अभियान का विशेष रूप से सर्वश्री सुब्रह्मण्यम स्वामी, लैला फर्नांडीज, राम जेठमलानी, सी. आर. ईरानी, केदारनाथ साहानी, मकरंद देसाई इत्यादि का योगदान विशेष रूप से स्मरणी है।[10]

भूमिगत पत्रकारिता का आपातकाल में क्या महत्व था? इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सरकारी विज्ञप्तियों के आधार पर छपने वाली पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार-संख्या घटती जा रही थी और भूमिगत बुलेटिनों की प्रसार संख्या बढ़ रही थी, जिसके कारण एक समानान्तर प्रचार तंत्र खड़ा हो गया था। इसकी विश्वसनीयता प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित-प्रसारित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं तुलना में अधिक थी। रेडियो और टेलीविजन जैसे सरकारी माध्यम तो मानो सरकारी भोपूं बन गया था। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उसके लिए कोई अर्थ नहीं रह गया था। सरकार ने सेंसरशिप लगाकर यह बात सुनिश्चित करने की पूरी चेष्टा की कि जनता उनके ही चश्में से समाज-व्यवस्था मको देखें।

अंदर-ही-अंदर प्रवाहित हो रही यह समाचार एवं सूचना धारा प्रकट में प्रकाशित और प्रसारित हो रहे समाचार-पत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन इत्यादि की खबरों से अधिक प्रभावी बन गई। इस धारा ने श्रीमती गाँधी तथा उनकी सरकार द्वारा जनता और सत्य समाचारों के बीच में खड़े किए गए सारे अवरोधों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।[11] मजेदार बात यह थी कि आपातकाल के दौरान वैधानिक कहे जाने वाले अखबारों की प्रसार-संख्या तो निरंतर घट रही थी; पर इन बुलेटिनों का प्रसार बढ़ रहा था। इसका कारण यही था कि ये पत्रिकाएँ जनता के सत्य को जानने की जिज्ञासा को पूर्ण करती थी।[12]

आपातकाल की भूमिगत पत्रकारिता का प्रभाव–

आपातकाल के दौरान भूमिगत पत्रकारिता का काफी प्रभाव पड़ा। संपूर्ण क्रांति के समर्थक पत्रकारों ने भूमिगत पत्रकारिता को जीवंत बनाए रखा तथा उनकी भूमिका सराहनीय रही। पुलिस-प्रशासन की नजर से बचने के लिए ये लोग नाम बदलकर काम किया करते थे। इन लोगों का भूमिगत तंत्र इतना सफल था कि सरकारी खूफिया तंत्र को पता ही नहीं चल पाता था कि भूमिगत पत्रिकाएँ कहाँ से छपती हैं और किस तरह वितरित होती हैं। हरियाणा से प्रकाशित होने वाले 'दर्पण' के मुख्य पृष्ठ पर संपादक मूल्य और कार्यालय का विवरण भी निराले ढंग से दिया जाता था। उसका उल्लेख करना भी यहाँ प्रासंगिक होगा। संपादक: नारायण, मूल्य : पढ़ो-पढ़ाओ, कार्यालय : चलता-फिरता।

वरिष्ठ पत्रकार श्री राजनाथ सिंह 'सूर्य' के अनुसार, समाचार-पत्रों के मालिक और संपादक शासन के सामने पूरी तरह घुटने टेक चुके थे। इसलिए संवाददाताओं की कोई स्वतंत्र भूमिका अपने पत्र के संबंध में नहीं रह गई थी। हाँ, भूमिगत अभियान में सामंजस्य बैठाने में कुछ पत्रकारों की भूमिका बहुत अधिक थी। उत्तर-प्रदेश में हमारे साथ श्री अच्युतानंद मिश्र और पी.के. रॉय ने इस संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका व निर्वहण किया था। वस्तुत: भूमिगत अभियान के संपर्क-सूत्र अधिकतर पत्रकार ही थे। श्री 'सूर्य' बताते हैं कि आपातकाल के दौरान जन-जन में चेतना जगाने के लिए साइक्लोस्टाइल किए गए पत्रक विभिन्न भाषाओं में निकाले जाते थे। ये पत्रक देश के अनेक स्थानों से गुप्त रूप में निकाले जाते थे और विभिन्न गोपनीय तरीकों से उसका प्रसारण किया जाता था। उस समय निकलने वाले पत्रकों में जिसका जनजागरण में सर्वाधिक योगदान रहा, उसका संपादन श्री दत्तोपंत ठेंगरी जी करते थे।

इस बुलेटिन और गुप्त एजेंसी के वार्ताकार बड़े खोजी पत्रकार थे। वे निर्भय और पैनी नजर वाले थे। सरकार मंत्रिमंडल और कांग्रेस पार्टी की गुप्त बैठकों की चर्चाओं की जानकारी भी वे प्राप्त कर लेते थे। जब खबरें गुप्त बुलेटिनों में छपकर जनता तक पहुँचती थीं, तब सरकारी खेमे में तहलका मचता था कि 'खबर कैसे लीक हो गई?' विद्याचरण शुक्ल पर कैसे डाँट पड़ी, संजय और इंदिरा गाँधी में कैसी कहा-सुनी हुई, उत्तर-प्रदेश के मुख्यमंत्री ने संजय की चप्पलें कब, कैसे उठाई आदि समाचार की गुप्त पत्रकों में छा जाते थे। 'टाप सीक्रेट' पूरा 'ओपन सीक्रेट' बन जाता था।[13]

आपातकाल के दौरान दो-दो बार गिरफ्तारी के वारंट जारी होने के बावजूद पुलिस को चकमा देने में सफल रहे श्री वचनेश त्रिपाठी के अनुसार, आपातकाल के दौरान गुप्त रूप से निकाली जानेवाली पत्र-पत्रिकाओं का योगदान बौद्धिक जनजागरण में काफी रहा। प्री सेंसरशिप के बाद तो लोगों को सही सूचनाएँ नहीं मिल पा रही थीं। ऐसे गुप्त रूप से निकाली जानेवाली पत्र-पत्रिकाओं ने बहुत अहम भूमिका अदा की। दुस्साहसी और उत्साही पत्रकारों ने साइक्लोस्टाइल्ड पत्र एवं न्यूजलेटर वितरित किए। यहाँ तक कि जे.पी. का हस्तलिखित पत्र भी लोगों को वितरित कर आंदोलन को जारी रखने का आह्वान किया गया। यह सब जनसहयोग से ही संभव हो पाता था।

वरिष्ठ पत्रकार श्री दीनानाथ मिश्र दावा करते हैं कि भूमिगत आंदोलन को गति देने में गुप्त रूप से निकलनेवाली पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सेंसरशिप और गिरफ्तारी के कारण तोड़ी गई संचार-व्यवस्था को फिर से स्थापित करना चुनौती बन गई थी। देश-भर में विभिनन केंद्रों से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। एक आँकड़े के अनुसार, भूमिगत सापताहिक पत्रों की वितरण-संख्या पाँच लाख से भी अधिक थी। इंदिरा गाँधी की तमाम कोशिश के बावजूद भूमिगत संचार-व्यवस्था ठप न की जा सकी। आपातकाल के विरुद्ध भूमिगत आंदोलन में अगर कुछ सफलतापूर्वक किया जा सका तो यही कि जनता और विरोधी नेताओं के बीच संचार हर कीमत पर बनाए रखा गया। लोगों के पास सही खबर पहुँचती रही, यह सरकार की पराजय थी, जिसे व्यापक जनसहयोग के कारण हासिल किया जा सका। इसकी गति सरकारी प्रचार से कम थी, लेकिन विश्वसनीयता अधिक थी। श्रीमती गाँधी ने जो संचार-अवरोध पैदा किया, उसका शिकार वे स्वयं बनीं। समाचार-पत्र पर सेंसर लगे रहने के कारण वे जनता की मनोदशा को नहीं समझ पाईं और उन्हें हार का सामना करना पड़ा।

आपातकाल में सेंसरशिप और पुलिस-चौकसी के कारण पत्र और पत्रकार तबाह सबसे अधिक हुए। कहीं से कोई आंदोलन-समर्थक पर्चा भी पुलिस को प्राप्त हो जाता तो तुरंत मुद्रक या प्रकाशक की खोज में प्रशासन पिल पड़ता और यदि कोई 'शिकार' हाथ आता तो जब्ती-कुर्की, तोड़-फोड़, हजत-जेल और गोली-बंदूक से उनका समुचित भंजन किया जाता। फिर भी कुछेक साहसी पत्रकारों और मुद्रकों ने आपातकाल के अंधकार में भी प्रकाशनों के माध्यमों से लोकनायक के संदेशों, आंदोलन की गतिविधियों और गंभीर विश्लेषणों से सबको जागृत रखा।[14]

आपातकाल के दौरान सेंसरशिप की कैंची से पत्रकारिता पर प्रभाव के सवाल पर 'दिनमान' में उस समय सहायक संपादक रह चुके श्री जीतेंद्र कुमार गुपत गंभीर दिखते हैं। उनके अनुसार, सेंसरशिप की वजह से समाचार-पत्रों और अन्य सभी सूचना-माध्यमों के अलावा सरकार की विश्वसनीयता घट गई थी। समाचार-पत्रों में सरकारी विज्ञप्तियाँ अधिक छपती थीं। सत्ता के खिलाफ एक शब्द भी छापना कठिन था। समाचारों को दबाए जाने के कारण उन दिनों अफवाहों का बाजार गर्म रहता था। छिपुट गोपनीय परचे छपा करते थे। उन्हीं से कुछ घटनाओं की जानकारी मिलती थी।

'पंजाब केसरी' समूह के प्रबंधक और वयोवृद्ध पत्रकार श्री विजय चोपडा बताते हैं कि आपातकाल में अनेक गुप्त पत्र-पत्रिकाएँ और पंफ्लेट छपते थे। उस समय की वास्तविक पत्रकारिता

तो उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में हो रही थी, जिसका बौद्धिक जनजागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। मुझे जो भी इस तरह की पत्र-पत्रिकाएँ और साहितय प्राप्त होता था। उसे मैं जेल में बंद अपने पिताजी श्री लाला जगतनारायण जी के पास पहुँचा देता था। इस कार्य में जेल अधीक्षक और अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सहयोगात्मक भूमिका होती थी। जेल के भीतर इसे अन्य केदी भी पढ़ते थे और सरकार के विरुद्ध मानस तैयार होता था। एक बार तो पटियाला जेल में किसी अन्य जेल से स्थानांतरित होकर आए राजनेता चंद्रशेखर को भी लाला जी ने ये पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध कराई थीं। वे तब इससे काफी प्रसन्न और प्रभावित हुए थे। बाद में जब चंद्रशेखर जी लालाजी की हत्या के बाद एक स्मृति समारोह में आए तो उन्होंने कहा था कि जब जेल में मुझे कोई नहीं पूछता था तो लाला जी ने ही पूछा और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने के लिए दी। इस प्रसंग के बाद लाला जी के प्रति चंद्रशेखर जी का आत्मीय भाव सदैव बना रहा।

आपातकाल में नवभारत टाइम्स के वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंदकिशोर त्रिखा की वैधता समाप्त कर दी गई थी। उनके अनुसार गुप्त रूप से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में संकल्प और साहस बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपातकाल लंबा खींचने के कारण लोगों का मनोबल टूटता दिख रहा था। ऐसे में गुप्त पत्र-पत्रिकाओं, देश के सुप्रसिद्ध चिंतकों और विचारकों के ऑडियो कैसेट्स, उनकी अपील, हैंडबिल इत्यादि ने कार्यकर्त्ताओं में ऊर्जा का संचार किया। संघर्ष को जारी रखने की प्रेरणा जाग्रत की।

लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार अच्युतानंद मिश्र के अनुसार, आपातकाल के दौरान बौद्धिक जनजागरण में गोपनीय एंग से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। बिहार, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा सहित अनेक प्रांतों से पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही थीं। गुप्त रूप से निकलने वाली पत्रिकाओं को प्रचंड जन समर्थन मिल रहा था क्योंकि उन दिनों सत्य सूचनाओं के वही श्रोत थे। श्री मिश्र बताते हैं कि विपक्ष की प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाएँ बंद हो गई थीं लेकिन उनसे कई गुणा ज्यादा गुप्त रूप से नई पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी थीं जिनका उस दौर के लोक जागरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

'दिनमान' के वरिष्ठ संवाददाता रहे रामसेवक श्रीवास्तव ने बताया कि आपातकाल के दौरान पत्र-पत्रिकाओं का गुपचुप प्रकाशन खतरों से भरा था। उसके लिए बहुत ही साहस की आवश्यकता थी, क्योंकि मीसा, जिसे हम असुर कानून कहते थे, प्रभावी था। जिन लोगों ने इस तरह की पत्रिकाएँ निकालीं और किसी न किसी रूप में उसके प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका का निर्वहण किया; उनकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है, क्योंकि ऐसी पत्रिकाओं का प्रकाशन असहजता के उस आपातकालीन दौर में आम आदमी के अस्त-त्रस्त मनोबल को बनाए रखने में सहायक था।

दिनमान के सहायक संपादक रहे श्री जीतेंद्र कुमार गुप्त के अनुसार, गुप्त रूप से निकलनेवाली पत्रिकाओं से जनमानस में सरकार के प्रति आक्रोश पैदा होता था जिसका परिणाम चुनाव के रूप में इंदिरा गाँधी की पराजय से सामने आया। जनता और सरकारी कर्मचारी सरकार की नीतियों से परेशान हो चुके थे। परिवार-नियोजन के संबंध में सरकारी अमले के तौर-तरीकों को लेकर जनता में काफी क्षोभ था। आपातकाल के दौरा चूँकि तथ्य प्रकाश में नहीं आते थे, इसलिए यह पता नहीं चलता था कि अमुम नीति के परिपालन में कितनी ज्यादती हो रही है। गुपत रूप से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में जनता की आवाज मुखरित होती थी। जिसने बौद्धिक जन-जागरण में अपनी भूमिका का निवर्हण किया।

दक्षिण भारत के चर्चित पत्रकार एस.एस. महादेवन के अनुसार, प्रीसेंसरशिप के चलते समाचार-पत्र-पत्रिकाओं में आपातकाल के दौरान पुलिस प्रशासन और सरकार की ज्यादती एवं जुलम

संबंधी खबरें प्रकाशित नहीं हो पाती थीं। आमतौर पर वही लिखा जाता था, जो प्रशासन चाहता था। ऐसे में गुप्त रूप से निकाले जाने वाले न्यूज लेटर, पत्रिकाएँ और बुलेटिन की अहम भूमिका थी। आंदोलनकारियों को इन्हीं के माध्यम से सही जानकारी मिल पाती थी। देश-भर में विभिन्न भाषाओं में लगभग सौ पत्र-पत्रिकाएँ निकाली जाती थीं। प्रतिबंध के बावजूद इनको घर-घर बँटवाया जाता था।

पश्चिम बंगाल के चर्चित पत्रकार और 'स्वास्तीक' के संपादक असीम मित्रा बताते हैं कि गुप्त रूप से निकलने वाली पत्रिकाओं को डाक से भेजना असम्भव सा था लेकिन कोलकाता में बाकायदा एक पूरा नेटवर्क खड़ा किया : जो इन पर्चों को पाठकों तक पहुँचाए। सभी घरों में ये पर्चे सुबह-सुबह डाल दिए जाते थे। बाद में लोग इन्हें पढ़कर आपस में चर्चा करते। इस चर्चा के दौरान हम भी शरीक हो जाते और वाद-विवाद का आनंद लेते।

आपातकाल के दौरान जबलपुर से प्रकाशित 'धर्मयुग' के सह संपादक रहे बवन प्रसार मिश्र के अनुसार, लोग जेलों की खबरें, पुलिस अत्याचार एवं प्रशासनिक ज्यादतियों की इन्हीं गुप्त पर्चों और पत्रिकाओं से जान रहे थे। इससे उनमें तब इंदिरा की सत्ता के विरुद्ध आक्रोश बढ़ता गया। विशेषकर इंदिराजी के छोटे पुत्र संजय गाँधी की हरकतों से सारा देश सनन था। आपातकाल के दौरान पटना से प्रकाशित हिंदी दैनिक 'प्रदीप' के पत्रकार श्री मगनदेव नारायण सिंह बताते हैं कि हिंदी में एक टेबलाइड साइज का अखबार निकलता था–'प्रतिपक्ष' एक साप्ताहिक था 'युवा', इसकी जबरदस्त माँग थी। लोगों को इस पर पूरा यकीन था, जबकि पूर्व से स्थापित समाचार पत्रों पर से लोगों का विश्वास उठ सा गया था। सेंसरशिप के बावजूद कुछ प्रमुख पत्र संकेत भाषा में कुछ लिख ही देते थे और पाठक उसे समझ भी जाते थे।

आपातकाल के दौरान मीसा के अंतर्गत जबलपुर सेंट्रल जेल में बंद रहे पत्रकार श्री सुरेंद्र द्विवेदी बताते हैं कि आपातकाल के दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता से संवाद स्थापित करने के लिए हाथ से और साइक्लोस्टाइल कराकर परचे और बुलेटिन की शक्ल में समाचार छापे जाते थे। आपातकाल के समय 'स्वदेश' के भिंड जिले के ब्यूरो प्रमुख रहे रामभुवन सिंह कुशवाह के अनुसार आपातकाल के दौरान गुप्त रूप से कुछ बुलेटिन, पैंफ्लेट अवश्य निकाल रहे थे। संयोग से ग्वालियर केंद्रीय कारागार में बाहर से आने वाले सभी ऐसे बुलेटिन पहले मेरे पास ही आते थे और मेरी जिम्मेदारी थी कि उन्हें सबको दिखाकर नष्ट कर दूँ; इसलिए मैं व्यक्तिगत रूप से जनता हूँ कि आपातकाल के निराशामय घोर अंधकार में भी आशा की एक किरण यह अवश्य थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और सर्वोदय जैसे गैर राजनीतिक संगठनों की सक्रियता के कारण आपातकाल के विरुद्ध जबरदस्त जनआंदोलन खड़ा हो सका था। कांग्रेस के कारण विरोधीदलों को एकजुट किया जा सका था। यही नहीं इन बुलेटिनों और पर्चों ने भूमिगत आंदोलन खड़ा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया था। बुलेटिन और गुप्त साहित्य हम तक अक्सर मीसा बंदियों के परिवार जनों के साथ आता था जो समय-समय पर इजाजत लेकर उनसे मिलने आते थे। ये सामग्री खाद्य पदार्थों में छुपाकर लाई जाती थी।

आपातकाल के दौरान भोपाल के दैनिक जागरण में कार्यरत हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार रमेश शर्मा के अनुसार आपातकाल में गुप्त रूप से पत्रिकाएँ बहुत कम निकल पाती थी किंतु पर्चे, पंफ्लेट का चलन बढ़ गया था। इससे आंदोलनकारियों और दमित परिवारों का मनोबल बना रहा। राजस्थान के वरिष्ठ पत्रकार गुलाब बत्रा बताते हैं कि उस समय गुप्त रूप से पत्रिका अाविा पत्रक छापना और वितरित करना साहसिक कार्य था, जो मानो अग्निपरीक्षा ही थी। इन पत्रिकाओं ने ऐसा माहौल बनाया कि चुनाव की घोषणा के बाद लावा बनकर फूट पड़ा।

छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार रमेश नैय्यर के अनुसार, छोटी-छोटी गुप्त बैठकों में बाँटी जाने वाली पत्रिकाओं के अलावा एक-एक पन्ने के परचों के द्वारा भी आपातकाल का प्रतिरोध किया जाता था। कुछ परचे दीवारों पर भी रात के अंधेरे में चिपका दिए जाते थे। वे सत्ताविरोधी बनाने में बहुत कारगर होते थे। अंग्रेजी के वरिष्ठ पत्रकार बी.आर. जेटली के अनुसार आपातकाल के दौरान सत्ता और सरकार के खिलाफ गुप्त रूप से भूमिगत पैंफ्लेट और पुस्तिकाएँ निकलती रहीं। गुप्तचर विभाग के अधिकारी और कर्मचारी इसको पकड़ने के लिए डाकघरों पर चौकसी रखते थे। आपातकाल के विरुद्ध सूचना संप्रेषण से लगे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस-प्रशासन मुश्तैद रहता था।

आपातकाल के समय 'युगधर्म' के प्रधान संपादक रहे भगवतीधर वाजपेयी कहते हैं कि गुप्त पत्र-पत्रिकाएँ ही उस दौर में सूचना संप्रेषण के एकमात्र साधन रहे। निराशा और भय के उस माहौल में भी उन पत्र-पत्रिकाओं ने जनता के मनोबल को पूरी तरह गिरने से तो बचाया ही लगे हाथ उसे आपातकाल की काली हकीकत से भी बखूबी परिचित करवा दिया। आपातकाल के समय 'इंदौर में 'स्वदेश' के सिटी रिपोर्टर रहे जयकृष्ण गौर बताते हैं कि उस समय कुछ लोग जेल में रहते हुए कागज पर हाथ से लिखकर पर्चा निकालते थे। उस पर्चे को जेल के बाहर चोरी-छिपे लक्षित पाठक समूह तक पहुँचाया जाता था। ऐसे अखबारों का उस समय जनता के बौद्धिक जनजागरण में बड़ा योगदान था।

आपातकाल के समय राँची से पायोनियर के लिए रिपोर्टिंग करने वाले वरिष्ठ पत्रकार डॉ. वी. पी. शरण के अनुसार गुपत तरीके से निकलने वाली पत्रिकाओं का जनजागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पत्रकारिता पर कड़ी नजर के बावजूद गुपत रूप से निकलने वाली कुछ पत्रिकाएँ लोगों तक सरकार की ज्यादतियों और देश में उत्पन्न परिस्थितियों की जानकारी पहुँचाती थी। राँची एक्सप्रेस के संपादक बलवीर दत्त के अनुसार आपातकाल के दौरान गुप्त रूप से निकलने वाली कुछ पत्रिकाओं का इंतजार लोग बेसब्री से करते थे। राँची इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस के कुछ विद्यार्थियों ने नवजागरण समिति का गठन किया था। वे लोग चुपचाप पर्ची बाँटते और सरकार की दमनकारी नीतियों से लोगों को अवगत कराते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आपातकाल में यदि सरकार ने प्रत्यक्ष तौर से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं पर सरकार ने अंकुश लगा दिया था तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा समाजवादी पृष्ठभूमि से जुड़े कुछ पत्रकारों ने गुप्त रूप से पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू कर दिया था। इसके अतिरिक्त आपातकाल विरोधी साहितय के रूप में सरकार की ज्यादतियों से अवगत कराने के लिए कुछ बुकलेट, पंफ्लेअ, हैंडबिल, बुलेटिन, परचे इत्यादि बड़ी संख्या में निकलने लगे थे। जिसमें न केवल पुलिस-प्रशासन के अत्याचार का कच्चा-चिट्ठा खोला जाता था अपितु आंदोलनकारियों और उनके समर्थकों के बीच संवाद-संप्रेषण का भी माध्यम बनता था। भय और आतंक के उस माहौल में अंधेरे के विरुद्ध लड़ाई में ऐसी गुप्त पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश-स्तंभ का काम करती थीं। लोकनायक जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी तथा लालकृष्ण आडवाणी जैसे नेताओं के संदेश भी इन पत्रकों में छपते थे। जो त्रासदी के उस काल खंड में कार्यकर्त्ताओं का उत्साहवर्धन करता था तथा वह आंदोलनकारी परिवारों के लिए संबल का कार्य करता था। कुल मिलाकर आपातकाल की भूमिगत पत्रकारिता ने समानांतर संचार व्यवस्था खड़ी कर दी थी। जिसने बौद्धिक जनजागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया।

संदर्भ-सूची

1. चौधरी श्री विभाष चन्द्र, आपातकाल के दौरान भूमिगत साहित्य (आलेख), छात्र आंदोलन से जनता सरकार तक (स्मारिका), प्रकाशक–अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, बिहार प्रदेश, प्रकाशन वर्ष : 1977, पृष्ठ सं. 39
2. वही, पृष्ठ संख्या 93
3. प्रसाद डॉ. शत्रुघ्न, आपातकालीन संघर्ष में बिहार, प्रकाशक– आपातकालीन-संघर्ष-समिति, पटना, संस्करण–1978, पृ. सं.45
4. श्रीवास्तव डॉ. शैलेन्द्रनाथ, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, प्रकाशन विभाग, चूना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण 2002; पृ.सं.165-166
5. मिश्र श्री दीनानाथ; आपातकाल में गुप्त क्रांति, सरस्वती बिहार, दरियागंज, नई दिल्ली-2, संस्करण–1977, पृ.सं. 36, 37
6. सागर अन्नपूर्णा, तानाशाही से जूझता हरियाणा, कौटिल्य प्रकाशन, सोनीपत, पृ. सं. 65
7. श्रीवास्तव डॉ. शैलेन्द्रनाथ, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण-2002, पृ.सं. 128
8. श्रीवास्तव डॉ. वीणा, आंदोलन में महिलाओं का योगदान (आलेख), छात्र-आंदोलन से जनता सरकार तक (स्मारिका), प्रकाशक–अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, बिहार प्रदेश, प्रकाशन वर्ष-1977, पृ. सं. 31
9. वाजपेयी श्री अटल विहारी, श्री दीनानाथ मिश्र की पुस्तक 'आपातकाल में गुप्त क्रांति' की भूमिका, प्रकाशक–सरस्वती विहार, दिल्ली-2, संस्करण-1977, पृ.सं.5
10. वही, पृष्ठ संख्या-5
11. सहस्त्रबुद्धे श्री प्र.ग. एवं वाजपेयी श्री माणिकचंद्र, आपातकालीन संघर्ष गाथा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली-55, संस्करण-1990, पृ. सं. 300
12. वही, पृ.सं. 302
13. वही, पृ.सं. 301
14. श्रीवासतव डॉ. शैलेंद्रनाथ, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण-2002, पृ. सं. 167

भारत में समाचार पत्रों की वर्तमान प्रवृतियां

अश्विनी कुमार

टीवी पत्रकार, समय न्यूज नेटवर्क

प्रस्तावना

नवीन मीडिया के विकास क्रम में नई पीढ़ी में तकनीकी अत्यंत लोकप्रिय होती जा रही है। अनेक विकसित देशों में समाचार पत्रों की प्रसार संख्या में निरंतर कमी देखी जा रही है। भारतीय समाचार पत्र भी नई मीडिया तकनीकों की इन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। ये स्वयं को बनाये रखने के लिए एवं नई मास मीडिया तकनीकों से मिलने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए कई नवीन प्रवृतियों को अपना रहे हैं।

वर्तमान अध्ययन इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों द्वारा अपनाई गई इन प्रवृतियों एवं शैलियों को चिन्हित करने का एक प्रयास है। समाचार पत्र उद्योग एक संक्रमण काल के दौर से गुजर रहा है। वैश्विक रिपोर्ट संकेत करती है कि समाचार पत्रों के मुद्रित प्रारूप या प्रिंट मीडिया का प्रसार निरंतर घट रहा है। तथापि आर्थिक संकट एवं अन्य समस्याओं के बावजूद भारतीय समाचार पत्रों की प्रसार बढ़ रही है। समाचार पत्र उद्योग इस संदर्भ में सशक्त साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि इंटरनेट वास्तव में समाचार पत्रों के पारंपरिक मुद्रित स्वरूप को कमजोर कर रहा है।

वर्तमान में ऑनलाइन समाचार पत्र कई तरीके से शोध का विषय बन चुके हैं। इसने प्रिंट मीडिया को दुष्प्रभावित किया है। तथापि भारतीय मनोरंजन एवं मीडिया उद्योग ने भारतीय अर्थव्यस्था में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए भारत के तीव्रतम संवृद्धि वाले क्षेत्र कों में अपना स्थान बनाया है। फिक्की की 2011 की रिपोर्ट भारतीय मनोरंजन एवं मीडिया उद्योग की एक अत्यंत आकर्षक तस्वीर प्रस्तुत करती है।

समाचार पत्र स्वयं को बाजार में बनाये रखने के लिए कई नवाचारों का इस्तेमाल कर रहे हैं। नवाचार की प्रवृत्ति एक व्यापक अवधारणा है इसमें कई आयाम सम्मिलित हैं। जिनमें से समाचार पत्र की विषयवस्तु भी एक है। यह सभी प्रकार की सामग्रियों में दिखने वाली नवीन प्रवृत्तियों का आधारभूत तत्व है।

प्रिंट मीडिया कई नवाचारों को अपना रहा है उदाहरणार्थ त्रिविमीय तकनीक का इस्तेमाल समाचार पत्रों में भी आरंभ हो गया है। इस तकनीकी का लाभ यह है कि बिना 3 डी चश्मों के भी तस्वीरें सामान्य दिखाई पड़ती हैं। जबकि पुरानी तकनीकी से बने चित्रों को बिना 3 डी चश्मों के देखने पर ऐसा लगता था मानो कि चित्र सही ढ़ंग से छपे न हों। मॉस मीडिया में नवाचारों को अपनाना एक सतत प्रक्रिया है कोई भी नवाचार या तो लम्बे समय तक जारी रह सकता है या जल्दी ही समाप्त भी हो सकता है।

समाचार पत्रों के संदर्भ में पेज डिजाइनिंग, समाचार लेखन, शीर्षक देना, विषयवस्तु का चुनाव करने, विभिन्न प्रारूपों में सामग्री का प्रस्तुतीकरण, फोटो, तकनीकी अनुप्रयोग, समाचारों का संग्रहण, समाचारों का वितरण एवं ऐसे ही अन्य क्षेत्रों में समान कार्यों में नवाचारों को विकसित किया जा सकता है। विभिन्न समाचार पत्रों में व्याप्त प्रतिस्पर्धा एवं अन्य नये नवीन मीडिया के उद्‌भव से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए नवाचार आवश्यक है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए समाचार पत्र सभी चीजों को अपने पन्नों में नये ढ़ंग से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। भारतीय समाचार पत्रों ने स्वयं को आश्चर्यजनक रूप से बदला है।

समाचार पत्रों के लिए खतरें

प्रिंट मीडिया सर्वाधिक पुराने पारंपरिक संचार माध्यमों में से एक है जिसने समय-समय पर अनेक चुनौतियों का सामना किया है। नई तकनीकें इस मीडिया के सामने अब नये तरह की चुनौतियां खड़ी कर रही हैं। यहां तक की अखबारों का प्रकाशन पर्यावरण के लिए भी खतरा बन चुका है क्योंकि इसमें कागज के लिए बड़ी संख्या में वृक्षों को काटा जाता है। कुल काटे गए वृक्षों में से 11 प्रतिशत इसी उद्योग के लिए काटे जाते हैं।

प्रिंट मीडिया में कई खामियां भी हैं। जबकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इससे कहीं अधिक अद्यतन है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की गति प्रिंट मीडिया से कहीं अधिक तीव्र है। प्रिंट मीडिया गुणवत्ता एवं सटीकता को गति की तुलना में अधिक महत्व देता है। इस मीडिया की पहुंच सीमित लोगों तक ही है जबकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में ऐसी कोई सीमा रेखा नहीं है। यह अधिक अन्तः क्रियात्मक है और कई अन्य गुण भी धारण करती है।

विगत वर्षों में समाचार पत्र उद्योग के अस्तित्व के लिए कई नये खतरे महसूस किए गये हैं। जिसमें रेडियो के नये स्वरूप, नये प्रकार, चौबीसों घंटों चलने वाले न्यूज चैनल शामिल हैं जो हर तरह के समाचार प्रस्तुत करते हैं। दृश्य प्रस्तुति अधिक मनोरंजक एवं उपयोगी हो गई है। इंटरनेट प्रिंट मीडिया के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। इसने पाठकों को अद्यतन समाचारों के कई प्रकार देखने का अवसर दिया है। मोबाइल एक अन्य उपयोगी तकनीक है। समाचार पढ़ने, देखने एवं दूसरे कार्यों के लिए पाठक तेजी से प्रिंट मीडिया से इंटरनेट की ओर स्थानांतरित हो रहे हैं। विकासशील देशों में जहां साक्षरता में वृद्धि समाचार पत्रों का प्रसार अभी भी बढ़ा रही है, के मुकाबले विकसित देशों में यह रूझान अधिक देखने को मिलता है।

समाचार पत्रों में वैश्विक प्रवृत्तियां

शशि सिन्हा, सीईओ लोडेस्टार यूनिवर्सल गत वर्ष में प्रिंट मीडिया में घटित होने वाले कई नवाचारों का उल्लेख करते हैं। सर्वप्रथम 12 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के पाठकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि न्यूज चैनल समाचारों की अपेक्षा मनोरंजन पर अधिक ध्यान केंन्द्रित कर रहे हैं। यहां तक कि आज भी विज्ञापन का अधिकांश भाग प्रिंट मीडिया को ही जाता है। हिन्दी समाचार पत्रों की संवृद्धि निरंतर बढ़ रही है। डिजिटल मीडिया प्रिंट मीडिया का स्थान तो नहीं लेगा किन्तु इसे उन्नत करेगा।

एन्टोनिया लॉक का कहना है कि जर्मनी के अखबार प्रकाशक सदैव उन नये उत्पादों की ताक में रहते हैं जो उन्हें पाठकों एवं विज्ञापनों की होड़ में लाभ पहुंचाएं। प्रतिदिन के समाचार पत्रों में 24 गुने यानि 42 सेन्टीमीटर का आकार एक नई पहल है। इसका सुविधाजनक प्रारूप और आकर्षक शीर्षकों वाली स्टोरिज का लक्ष्य विशेष तौर पर युवा पाठकों को आकर्षित करना है। इस प्रकार के

समाचार पत्र उन लोगों के लिए बनाये गए हैं जिन्हें अखबार पढ़ने की आदत नहीं है। ये वैसे लोगों के लिए उपयोगी हैं जो केवल पूरे दिन की विशेष घटनाओं के बारे में स्वयं को सूचित रखना पसंद करते हैं। यह प्रवृत्ति ब्रिटेन में भी पायी जाती है।

समाचार पत्रों एवं पत्रकारों से युक्त फेसबुक एवं लिंकडिन जैसी सोशल एवं पेशेवर नेटवर्किंग साइट्स का निरंतर प्रसार वर्तमान पत्रकारिता में एक नई प्रवृत्ति है। पत्रकार अपनी स्वयं की प्रोफाइल्स एवं एप्लीकेशन्स बनाकर नये पाठकों से स्वयं को जोड़ रहे हैं। निजीकृत वेब एक अन्य इंटरनेट प्रवृत्ति है। दूसरे उभरते हुए बाजारों में धारणीय संवृद्धि के बावजूद समाचार पत्र अभी भी प्रिंट विज्ञापन राजस्व एवं प्रसार में गिरावट से पीड़ित हैं। 2009 के दौरान सरकारों को कई संघर्षरत समाचार पत्रों को सहायता देनी पड़ी। किन्तु यह विवाद अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों के हिसाब से विभिन्न आयाम लेता रहा। अंग्रेजी भाषी विश्व एवं अन्य स्थानों के प्रकाशकों के चिंतन में भी 2009 में यह प्रश्न केन्द्र में था कि ऑनलाइन विषयवस्तु के लिए शुल्क लिया जाय या नहीं।

किन्तु सर्वत्र समाचार कक्ष अत्यधिक आर्थिक दबाव में हैं और अपने महत्वपूर्ण कर्मचारियों की संख्या में कटौती कर रहे हैं। जिससे उनके समुदाय के लिए आवश्यक अन्वेषणात्मक पत्रकारिता को जारी रखना और भी कठिन हो गया है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा कि निकट भविष्य में और अधिक मात्रा में गैर-लाभकारी (जिसमें हितधारकों के लिए कोई लाभांश न हो), इंटरनेट आधारित (निम्न परिचालन लागत) उद्यम इस अंतराल को भरने के लिए तेजी से आगे आ जाएं।

समाचार पत्र स्वयं को चुनौतियों से सामना करने के लिए भी तैयार कर रहे हैं। समाचार पत्रों के भविष्य के लिए प्रवृत्तियों को चिन्हित करते हुए वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ न्यूज पेपर ने अग्रणी अखबारों को उन वर्तमान प्रवृत्तियों को पहचानने के लिए कहा है जिन्हें ये समाचार पत्र अपने व्यवसाय के भविष्य पर प्रभाव डालने में सक्षम मानते हैं। इनमें से कुछ प्रवृत्तियां गंभीर एवं कुछ अन्य शायद गौण मालूम होती हैं किन्तु इन सभी में समाचार पत्रों के भविष्य को निर्धारित करने की क्षमता मौजूद है।

- बदलती हुई जनांकिकीय, अधिक एकल परिवारों के साथ, अन्य लोग एवं गैर-पारंपरिक परिवार
- विकल्पों में वृद्धि, अनन्त विकल्पों के उपलब्ध होने के कारण उत्पादों एवं सेवाओं को चुनना एवं खरीदना कहीं अधिक कठिन
- प्रयोक्ता द्वारा उत्पन्न विषयवस्तु जो स्वअभिव्यक्ति एवं सामाजिक अंत:क्रिया के लिए अवसर प्रदान करती हैं।
- तीव्रतर, लघुतर एवं अधिक यूजर फ्रेंडली होते मोबाइल उपकरण
- सोशल नेटवर्कों का बढ़ता हुआ महत्व
- मल्टी चैनल रणनीतियां एवं न्यूज मीडिया के प्रकारों के बीच अंतर का विलोपन

अब यह तथ्य है कि विश्व के अधिकांश समाचार पत्रों का प्रसार इंटरनेट से मिलने वाली अत्यधिक प्रतिस्पर्धा के कारण विशेषकर संतृप्त बाजारों में घट रहा है।

समाचार पत्रों की बढ़ती प्रसार संख्या

आईआरएस 2011 की दूसरी त्रैमासिक रिपोर्ट यह बताती है कि दैनिक जागरण की प्रसार संख्या सर्वाधिक है। कई समाचार पत्रों के प्रसार में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिसमें शामिल हैं दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर इत्यादि। इसी प्रकार राजस्थान पत्रिका,पंजाब केसरी एवं नई दुनिया जैसे कुछ समाचार

पत्रों के प्रसार में गिरावट भी दर्ज हुई है। आरएनआई की नवीनतम आंकड़ों के मुताबिक हिंदी समाचार पत्रों के पंजीकरण में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

भारतीय समाचार पत्रों की नाकारात्मक प्रवृत्तियां

भारतीय समाचार पत्रों में कई नाकारात्मक प्रवृत्तियां भी देखी गई हैं और कई विशेषज्ञों ने इस ओर संकेत भी किया है। भारतीय प्रेस परिषद के पूर्व अध्यक्ष जस्टिस जी.एन. रे ने भारतीय प्रिंट मीडिया के कई दोष गिनाए हैं। जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों का संक्षेप में उल्लेख किया जा सकता है।

निगमीकरण (कॉरपोरेटाइजेशन), एकाधिकार, अनाचार एवं भ्रष्टाचार ,पेड न्यूज, मीडिया ट्रॉयल एवं विज्ञापनदाता कंपनियों की प्रभुता भारतीय समाचार पत्रों की कुछ महत्वपूर्ण नाकारात्मक प्रवृत्तियां हैं। अब बड़े मीडिया घरानों में से अधिकांश भाग पर कॉरपोरेट घरानों का नियंत्रण है। जो उन्हें वाणिज्यिक उद्यमों की तरह चला रहे हैं। इन समाचार पत्रों का प्रमुख उद्देश्य अधिकतम राजस्व अर्जित करना रह गया है।

आधुनिक मॉस मीडिया की एक अन्य समस्या एकाधिकार है। कुछ निश्चित समाचार पत्र ही देश के अधिकतम शहरों की खबरों को कवर कर रहे हैं। कई प्रकार के अनाचार भी इस मॉस मीडिया में विकसित हुए हैं। पीत पत्रकारिता ऐसी ही एक मध्यम आकार के समाचार पत्रों द्वारा अपनाया गया अनाचार है। इसी प्रकार ब्लैकमेलिंग भी प्रिंट मीडिया के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुका है। सूचना में विकृति या तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाना भी एक अन्य मुख्य दोष है।

पेड न्यूज का व्यवहार भी मॉस मीडिया विशेषकर प्रिंट मीडिया के स्वस्थ वातावरण के लिए गंभीर खतरा बन रहा है। पेड न्यूज की अवधारणा 2009 के आम चुनाव के दौरान चर्चा में रही। आज अखबारों सहित मीडिया उन मुद्दों पर चर्चा करती है जो विचाराधीन है। ऐसे व्यवहारों के लिए अक्सर मीडिया की आलोचना होती है। हालांकि यह कहना बड़ा कठिन है कि इस तरह की चर्चाएं किसी भी मुद्दे की संपूर्ण प्रक्रिया पर किस प्रकार दुष्प्रभाव डालते हैं।

संपादक का कार्यालय किसी समाचार पत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता था। वे न केवल अखबार की विषयवस्तु बल्कि विज्ञापन के स्थान एवं मात्रा पर भी नियंत्रण रखते थे। किन्तु अब वो अतीत की बात है। अब समाचार-पत्रों में विज्ञापन विभाग सर्वाधिक शक्तिशाली है।

समाचार-पत्रों में कुछ अन्य नई प्रवृत्तियां

पिछले कुछ वर्षों में मॉस मीडिया में कई नवीन प्रवृत्तियां विकसित हुई हैं आज समाचार पत्र पहले कि अपेक्षा कहीं अधिक सृजनात्मक हैं। यह प्रसार बढ़ाने एवं अधिक विज्ञापन प्राप्त करने के लिए किया गया है। वर्तमान में सभी समाचार पत्रों के ऑन लाइन संस्करण मौजूद हैं। मॉड्यूलर विज्ञापन एवं वार्गिक मूल्यन आधुनिक समाचार पत्र के अन्य गुण हैं। समाचार पत्रों का आकार भी घट रहा है। हालांकि यह भारतीय समाचार पत्रों की प्रवृत्ति नहीं हैं किन्तु विदेशों में वर्तमान में यह एक सामान्य व्यवहार बन चुका है। समाचार-पत्रों में नई प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग सतत बढ़ रहे हैं।

साहित्य समीक्षा

मीडिया नवाचार पर प्रर्याप्त विषयवस्तु उपलब्ध हैं। उन सभी पर एक एक स्थान पर चर्चा करना अत्यंत कठिन है। समाचार पत्रों की प्रवृत्तियों को जानने के लिए भी कुछ अध्ययन किए गए हैं। बहुत सारे ऐसे आलेख और अध्ययन भी उपलब्ध हैं जो अखबारों को स्वयं को बनाये रखने के लिए

अपनायी जाने वाली रणनीति से संबंधित हैं। 'एडोप्टर डाई' में रशेल स्मोकिन कहते हैं कि, "जैसा कि समाचार-पत्र कंपनियां चुनौतीपूर्ण भविष्य का सामना कर रही हैं, उनके द्वारा अपने ट्रेडमार्क प्रिंट उत्पाद को वेबसाइट्स एवं निशे प्रकाशनों जैसे प्लेटफार्मों को धारण करने वाले विविधतापूर्ण पोर्टफोलियो के इंजन के मुख्य चालक के रूप में देखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।"

एक अन्य अध्ययन स्वीडन, यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका की समाचार -पत्र कम्पनियों की सात केस स्टडीज पर आधारित है। यह अध्ययन भविष्य के ई-पेपर प्रकाशन पर समाचार-पत्र कम्पनियों के दृष्टिकोण का विश्लेषण करता है। इसका उद्देश्य उन परिस्थितियों का परीक्षण करना रहा है जो ई-पेपर माध्यम को किसी अखबार प्रकाशक चैनल की तरह संभाव्य एवं सुगम्य बनाने में सहयोगी हैं।

एशियाई मीडिया सूचना एवं संचार केन्द्र के 17वे एएमआईसी वार्षिक सम्मेलन (जुलाई 14-17 2008 को मनीला, फिलिपिंस में आयोजित) में प्रस्तुत एक शोध-पत्र 'भारतीय समाचार-पत्रों में नयी प्रवृत्तिया': डॉ. किरण ठाकुर द्वारा महाराष्ट्र में मराठी दैनिकों की एक केस स्टडी' ने मराठी प्रिंट मीडिया की नई प्रवृत्तियों के संदर्भ में कई निष्कर्षों का उल्लेख किया।

वेब समाचार-पत्रों, भविष्य की संभावनाओं एवं लोगप्रियता को ध्यान में रखते हुए उनकी डिजाइनों पर कफी चर्चा हुई है। द वर्ल्ड प्रेस ट्रेंड 2010 ने विभिन्न देशों के अखबारों के विविध नवाचारों के विषय में एक विस्तृत रिपोर्ट दी है। इसी प्रकार हाल वैरियन द्वारा दी गई 2010 की ' न्यूज पेपर्स इकोनॉमिक्स ऑनलाइन एवं आफॅलाइन रिपोर्ट अमेरिकी अखबारों के नवाचारों के संदर्भ में विस्तृत विवरण देती है। ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन तथा इंडियन रीडरशिप सर्वे रिपोर्ट भी भारतीय प्रिंट मीडिया के विषय में अत्यंत रोचक सूचनाएं प्रदान करते हैं।

अनुसंधान के उद्देश्य

- अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कवरेज एवं डिजाइन के क्षेत्र में हिन्दी अखबारों के नवाचारों की खोज करना है। इस हेतु निम्नलिखित क्षेत्रों को चुना गया है:
- विषयवस्तु, अभिकल्प और पृष्ठ-सज्जा, रिपोर्टिंग ट्रेंड, शीर्षक, भाषा, चित्र, प्रस्तुतीकरण की शैली और अन्य दूसरी चीजें जो कि अध्ययन के संदर्भ में अर्थपूर्ण हों।

कार्य-पद्धति (Methodology)

सामग्री के प्रस्तुतीकरण की प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए मुख्य तौर पर अवलोकन पद्धति का सहारा लिया गया है। यहां गुणात्मक तरीके से विश्लेषण किया गया है जिससे प्रस्तुतीकरण की स्पष्ट व्याख्या हो सके। अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गुणात्मक दृष्टिकोण शोध हेतु उपयुक्त होगा।

अध्ययन के लिए सामग्री के तौर पर विषयवस्तु और प्रस्तुतीकरण की शैली को लिया गया है।

इकाईयों का निदर्शन

समाचार पत्रों के अवलोकन के लिए अक्टूबर, नवंबर और दिसंबर 2014 माह के प्रत्येक अखबार दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और नवभारत टाइम्स की 50-50 प्रतियां ली गई हैं। उन सभी प्रतियों को अनियमित तरीके से चुना गया है। अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शीर्षक, समाचार, चित्रों, भाषा, विषयवस्तु की डिजाइन एवं पृष्ठ-सज्जा को अध्ययन की इकाई के तौर पर लिया गया है।

आंकडों का विश्लेषण

अखबारों की विषयवस्तु के विश्लेषण ने कई ऐसी प्रवृत्तियां या नवाचार प्रदर्शित की हैं जिन्हें प्रिंट मीडिया में नये प्रकार के अनुप्रयोगों के रूप में उल्लिखित किया जा सकता है। ये प्रवृत्तियां बहुआयामी एवं व्यापक विविधता को धारण करती हैं। मुख्य बिन्दुओं को यहां प्रस्तुत किया गया है।

मूल्य और पृष्ठों की संख्या

अखबार का मूल्य उसकी प्रकाशन लागत के अनुपात में नहीं है। इसके मूल्य को प्रस्तुत पृष्ठों एवं सामग्री की तुलना में नगण्य कहा जा सकता है। चौबीस पृष्ठों के एक समाचार-पत्र का मूल्य लगभग तीन से चार रूपये होता है जोकि उसकी लागत से कहीं अधिक कम होता है। कई वस्तुओं का मूल्य समान समय काल में बीस से तीस गुना बढ़ गया है जबकि इसी अवधि में अखबारों के मुल्य में दो या तीन गुना मात्र बढ़ोतरी हुई है।

अखबारों में पहले के मुकाबले पृष्ठों की संख्या अधिक है पहले अखबारों में केवल आठ या दस से बारह पृष्ठ होते थे किन्तु अब पृष्ठों की संख्या 20 से चौबीस या और अधिक हो सकती है। त्यौहार के मौके या किसी विशेष दिन इनकी संख्या 32 तक हो जाती है। सभी समाचार पत्रों में पृष्ठों की संख्या क्रमशः बढ़ रही है।

कवरेज, न्यूज सामग्री एवं परिशिष्टों के मुद्दे:

अब समाचार-पत्रों द्वारा अधिकांश मुद्दों को कवर किया जा रहा है। ये स्वास्थ्य, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण, अपराध, दुर्घटना, संस्कृति, पर्यटन, साहित्य, सूचना प्रौद्योगिकी, धर्म और आध्यात्म इत्यादि के विषय में सूचनाएं दे रहे हैं। अधिकांश घटनाओं को समाचार पत्रों द्वारा कवर किया जा रहा है। डिजाइन के विविध तत्वों का संयोजन कुछ इस प्रकार किया जा रहा है कि ये टीवी कार्यक्रम की शैली का आभास देते हैं। परिशिष्ट समाचार पत्रों का एक महत्वपूर्ण एवं नियमित भाग बन गए हैं। सभी समाचार पत्र दैनिक जीवन के कुछ निश्चित क्षेत्रों को कवर करने वाले अतिरिक्त पृष्ठ दे रहे हैं। इसी प्रकार समाचार पत्र स्वास्थ, सौन्दर्य, घर-सज्जा, डिजाइनिंग, खाने की आदतों एवं आधुनिक जीवन शैली को कवर करने वाली साप्ताहिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित करने लगे हैं।

अभिकल्प एवं पृष्ठ-सज्जा

अखबारों का अभिकल्प एवं पृष्ठ-सज्जा उल्लेखनीय रूप से परिवर्तित हुए हैं। अब उन्हें अधिक रचनात्मक एवं आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे पूर्व समाचार पत्र अभिकल्प में साधारण होते थे किन्तु आज अखबारों के पृष्ठों के अभिकल्प में अधिकतम कलात्मक दृष्टिकोण दिखता है। विज्ञापन भी डिजाइन का ही एक भाग है। डिजाइन के कई तत्व जैसे रंग, रेखा, टेक्स्ट अधिकतम प्रभावपूर्ण शैली में इस्तेमाल किए जा रहे हैं। इसी प्रकार लोगो, प्रतीकों एवं अन्य प्रकार के ग्राफिक्स का इस्तेमाल भी बढ़ा है। बहुत से मामलों में समाचार और विज्ञापन के मध्य कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है।

रंग:

समाचार पत्रों के पृष्ठ अत्यंत रंगीन एवं आकर्षक हो चुके हैं। विभिन्न घटनाक्रमों का समाचार भी अधिक रंगीन शैली में दिया जाने लगा है। आधुनिक समाचार पत्र पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए रंगों का इस्तेमाल करते हैं। यहां तक की शीर्षक भी बहुरंगी होते हैं। पृष्ठ को अधिक

आकर्षक एवं प्रभावी बनाने के लिए किसी भी स्थान पर रंगों का इस्तेमाल किया जा रहा है। टेक्स्ट की छाया काले के अतिरिक्त किसी अन्य रंग में भी हो सकती है।

ग्राफिक्स:

इन्फोग्राफिक कला आंकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए इस्तेमाल की जा रही है जिससे तथ्यों को आसानी से समझा जा सके। ऐसे ग्राफिकों में दण्ड आरेख, पाई आरेख एवं चित्रलिपि शामिल होते हैं। आसानी से उपलब्ध चित्रों का भी ग्राफिक चित्र दिया जाता है ताकि नये तरीके से उन्हें प्रस्तुत किया जा सके। यह उन खबरों में महत्वपूर्ण है जहां पर तस्वीरें उनका सटीक विवरण प्रस्तुत न कर पाएं। यह व्यवहार सभी अखबारों में अक्सर राजनीतिक व्यक्तित्वों के संदर्भ में देखा जाता है। इसी प्रकार उन खबरों में भी ग्राफिक्स का प्रयोग देखा जा सकता है जहां खबर महत्वपूर्ण होने के बावजूद तस्वीरें उपलब्ध न हों। ग्राफिक्स का इस्तेमाल समाचार पत्रों के खाली पृष्ठ को भरने के लिए भी किया जाता है। कई प्रकार की सूचनाओं की प्रस्तुति अब पत्रकारों के लिए काफी सुविधाजनक हो गयी है। उदाहरणार्थ कुछ ऐसे ग्राफिक्स जिनका अक्सर इस्तेमाल किया जाता है उनमें शामिल हैं मोबाइल, अदालत, बिजली, अर्थव्यस्था एवं अन्य क्षेत्र। ग्राफिक्स का इस्तेमाल मेडिकल, पर्यावरण, शिक्षा के विषयों के संदर्भ में कल्पनाओं के आधार पर किया जाता है। कुछ मामलों में चिन्ह एवं लोगो भी दिए जा सकते हैं।

टेक्स्ट:

अखबारों में टेक्स्ट की प्रस्तुति में भी विविधता आयी हैं। प्रत्येक पृष्ठ टेक्स्ट की एक छायांकित पृष्ठभूमि धारण करता है। ये पृष्ठभूमि ऐसे किसी भी रंग की हो सकती हैं जो तकनीक में उपलब्ध हों। पहले काले रंग से छायांकन मुख्यत: समाचार पत्र की प्रस्तुति की गुणवत्ता को उन्नत करने के लिए किया जाता था।

शीर्शक:

किसी भी समाचार पत्र के लिए नाम पट्टिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। पूर्व में इसके लिए एक विशेष पृष्ठ छोड़ा जाता था किन्तु अब यह प्रवृत्ति बदल चुकी है। अब नाम पट्टिका एक भिन्न पहचान देने की जगह नहीं रह गई है। इसे चित्रों एवं दूसरे प्रकार के ग्राफिक्स के साथ मिश्रित तक किया जा सकता है। यह नाम पट्टिका की प्रस्तुति की पारंपरिक शैली से एक महत्वपूर्ण बदलाव है।

समाचार शीर्षक

अब शीर्षकों का इस्तेमाल अधिक सृजनात्मक शैली में किया जाता है। टैग, बुलेट,आई ब्रो, उपशीर्षक समाचार के कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनका बहुधा इस्तेमाल किया जाता है। शीर्षकों को विविध प्रकार की शैलियों में लिखा जाता है। तथा शीर्षकों की प्रस्तुति के संदर्भ में समाचार पत्रों द्वारा कई नये प्रकार के प्रयोग किए जा रहे हैं। शीर्षक प्रस्तुतिकरण की कुछ ऐसी शैलियां हैं जिनका अभी तक नामकरण नहीं हुआ है। सुर्खियां तस्वीरों पर भी लिखी गई हैं जहां पारम्परिक रूप से कैप्शन लिखे जाते थे। अखबार के अंदरूनी पृष्ठों तक पर बैनर शीर्षक बहुधा इस्तेमाल किए गए हैं। कभी-कभी अंदरूनी मध्य पृष्ठों पर दो पृष्ठों को घेरते संयुक्त शीर्षक लिखे जाते हैं। इसी प्रकार फॉट प्वाइंट आकार भी प्रथम पृष्ठ के सबसे महत्वपूर्ण समाचार के शीर्षक से बड़े होते हैं।

चित्र

वर्तमान अखबार बड़ी संख्या में चित्रों को प्रकाशित कर रहे हैं। कई बार तो आधे से अधिक पृष्ठों में चित्र की होते हैं। इनका इस्तेमाल समाचार के चित्रण के लिए जब कभी नेताओं के सौजन्य से कोई कथन होता है तो ऐसे में उस राजनीतिक व्यक्ति की तस्वीर भी पासपोर्ट आकार की तस्वीर भी लगा दी जाती है। इसी प्रकार यदि ऐसे समाचार में मूल चित्र यदि उपलब्ध न हो तो इंटरनेट से चित्र डाउनलोड कर उसे छापा जा सकता है। सभी प्रकार की सामाजिक गतिविधियों पर आधारित घटनाएं विभिन्न प्रकार के चित्रों के साथ दी जाती है। विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों के चित्र प्रमुख रूप से दिये जाते हैं। कुछ अवसरो पर तो चित्रों की संख्या खबरों की संख्या से भी अधिक होती है।

संपादकीय पृष्ठ पर दिये गए आलेखों में चित्र नहीं होते थे। किन्तु कभी-कभी इस पृष्ठ का 30 से 40 प्रतिशत भाग ग्राफिक्स या चित्रों को दिया जाता है। ये कोई आवश्यक नहीं कि तस्वीरों का आकार पारंपरिक रूप से आयताकार, वर्ग, वृत्ताकार ही रखा जाय और उन्हें आंशिक रूप से सरल तकनीकी प्रस्तुतिकरण की सुविधा एवं नई प्रवृत्तियों को अपनाने के कारण अलग अपरिभाषित आकार और आमाप दिया जाता है। जब कोई खबर ऐसी हो जिसमें घटना के मूल चित्र उपलब्ध न हो तो ऐसे में संवाददाता कला अनुभाग से उपयोगी सामग्री की व्यवस्था कर सकता है। अब विषयवस्तु चित्र एवं विज्ञापन एक दूसरे से कुछ इस प्रकार मिश्रित हो रहे हैं कि पाठक उन सभी को देखने के लिए विवश हैं।

विषयवस्तु के प्रस्तुतिकरण की नवीन प्रवृत्तियां

समाचार-पत्र विभिन्न प्रकार की सामग्रियों की प्रस्तुति के लिए टीवी की शैली अपना रहे हैं। सामग्री के दृश्यात्मक प्रकार एवं विविध तत्व जैसे विषय, समाचार, आलेख, फीचर एवं ग्राफिक्स को तो निष्चित रूप से टेलीविजन की शैली में प्रदर्शित किया जा रहा है। उदाहरणार्थ प्रकाशक मुख्य पृष्ठ पर खबर को संक्षिप्त में देते हैं और विवरण अंदरूनी पृष्ठों पर देते हैं। पृष्ठ का अभिकल्प कुछ इस तरह से किया जाता है ताकि विज्ञापन एवं समाचार के टेक्स्ट एक दूसरे में घुल मिल जाएं। ऐसा सिर्फ इसलिए किया जाता है ताकि पाठक विज्ञापनों को भी देखे और उपेक्षित न कर सके। विज्ञापनों की संख्या और स्थान निश्चित रूप से बढ़े हैं।

स्थानीय मुद्दों की कवरेज

समाचार पत्र स्थानीय खबरों को पहले से कहीं अधिक स्थान दे रहे हैं। पहले स्थानीय खबरों को केवल दो या तीन पृष्ठों में ही जगह दी जाती थी। अब दूसरे जिलों की खबरें बहुत कम मात्रा में प्रकाशित की जाती हैं। यह प्रवृत्ति कमोवेश सभी समाचार पत्रों में है। उदाहरणार्थ दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, अमर उजाला एवं राष्ट्रीय सहारा स्थानीय या शहर के समाचारो को आठ से नौ पृष्ठों में स्थान देते हैं। इस प्रवृत्ति ने निश्चित रूप से लोगों को दूसरे स्थानों की खबरों से वंचित कर दिया है। लखनऊ में रहने वाला एक व्यक्ति पड़ोस के शहरों की घटनाओं का विवरण नहीं जान पाता। नई नौकरी से संबंधित या इस संदर्भ में किसी अन्य सूचना को मॉस मीडिया द्वारा रेखांकित किया जाता है। अपराध एवं दुर्घटना संबंधित खबरों को उच्च प्राथमिकता दी जाती है। आर्थिक पृष्ठ मुख्यत: निवेश, ऋण, बीमा, खरीद को कवर करता है।

दैनिक जीवन की गतिविधियों एवं समस्याओं की कवरेज

समाचार पत्रों द्वारा दैनिक जीवन की गतिविधियों एवं आम लोगों के मुद्दों को निरंतर व्यापक रूप से स्थान दिया जा रहा है। सांस्कृतिक पत्रकारिता को समाचार पत्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिय गया है। सभी समााचार पत्र न केवल इन सभी गतिविधियों से संबंधित टेक्स्ट सामग्री दे रहे हैं बल्कि इनसे संबंधित चित्रों का भी प्रकाशन कर रहे हैं। सांस्कृतिक गतिविधियां एवं घटनाएं पत्रकारिता का एक अत्यंत महत्वपूर्ण भाग या क्षेत्र बन चुकी हैं। समाचार पत्र उन सभी गतिविधियों के बारे में अब सूचना दे रहे हैं जो आम लोगों की जिन्दगी एवं समाज से निकटता से जुड़े हैं। उदाहरणार्थ परिवहन, बाजार, विभिन्न वस्तुओं से जुड़ी सूचनाएं। इसी प्रकार जल, बिजली और परिवहन से जुड़ी जन समस्याओं को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा है। यह समाचार पत्रों के लिए वास्तव में एक अत्यंत साकारात्मक दृष्टिकोण है। वे लोगों के विभिन्न वर्गों के लिए आवश्यक सूचनाओं की पूर्ति कर रहे हैं। प्रिंट मीडिया उन विषयों को अधिकतम कवरेज दे रही है जो आम लोगों के दैनिक जीवन के लिए किसी भी तरीके से उपयोगी हैं।

अन्य मीडिया की विषयवस्तुओं का कवरेज

समाचार पत्र अन्य मास मीडिया के विविध पहलुओं को भी अधिक से अधिक स्थान दे रहे हैं। यह डिजिटल वेब टीवी, फिल्म कार्यक्रमों, रेडियो से संबंधित सूचनाएं धारण करते हैं। इसी प्रकार ये समाचार पत्र इन माध्यमों के कलाकारों के विषय में भी चर्चा करते हैं। यह वेब पत्रकारिता, सोशल साइट्स, मोबाइल के इस्तेमाल एवं दूसरे ऐसे ही संचार माध्यमों के विविध पहलुओं से संबंधित सूचना देने का प्रयास करते हैं। फेसबुक एवं टिवट्र पर प्रसिद्ध व्यक्तित्वों द्वारा व्यक्त विचार को भी अखबारों में जगह दी जाती है। इसी प्रकार विदेशी समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों को भी इन अखबारों में स्थान दिया जाता है।

भाषाएं

खबरों की भाषा के प्रस्तुतिकरण में देश एवं काल के दबाव को अत्यंत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बहुत सारे समाचार को बिना कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष दिए अप्रत्याशित तरीके से समाप्त कर दिया जाता है। इस परिस्थिति के पीछे पृष्ठों में स्थानाभाव एवं समय का दबाव निश्चित रूप से महत्वपूर्ण कारण हैं। निष्कर्ष रहित या अर्थपूर्ण समाप्ति के बिना ही खबरों को प्रकाशित करना एक अत्यंत सामान्य प्रवृत्ति बन चुकी है। खबरों की भाषाा में भी कई प्रकार की त्रुटियां देखी देखी जा सकती हैं। इसी प्रकार बहुत से माामलों में तथ्यों का अनावश्यक पुनरावृत्ति भी देखी जा सकती है।

समाचार पत्रों के मध्य प्रतिस्पर्धा का स्वरूप

विभिन्न अखबारों के मध्य एक कड़ी प्रतिस्पर्धा है। इस प्रतिस्पर्धा को खबरों की प्रस्तुति की शैली में देखा जा सकता है जहां हर अखबार सर्वाधिक एक्सक्लूसिव खबर देने का दावा करता है।कई बार यह अखबार उन पुरानी खबरों तक को प्रकाशित करता है जिन्होंने प्रशासन को किसी समस्या या विषय पर निर्णय लेने के लिए अभिप्रेरित किया हो। ऐसी बहुत सी खबरें हैं जिन्हें अनन्य रूप से केवल एक ही समाचार पत्र में जगह दी जाती है।

बाजार केन्द्रित सूचना

बाजार गतिविधियों के विस्तृत कवरेज में विभिन्न उत्पादों की खरीद में निश्चित रूप से पाठकों को मदद पहुंचायी है। यह दुकानदारों को अपनी वस्तुओं के प्रचार में भी सहयोग प्रदान करता है। लोगों को खरीद एवं विपणन में मार्गदर्शन भी दिया जा रहा है। यह अखबार नये उत्पादों के विषय में विस्तृत सूचना चित्रों के साथ देते हैं। दीपावली के अवसर पर मिठाईयां, गहने, पटाखे, सजावट के विभिन्न उपकरण ऐसे उत्पाद हो सकते हैं। लोगों को बाजार में खरीद के लिए अभिप्रेरित करने के लिए त्योहार अत्यंत ही महत्वपूर्ण अवसर होते हैं। यह बाजार शक्तियों का अखबारों के साथ इस प्रकार की सूचनाएं देने हेतु संयोजन का एक प्रकार है।

घटनाओं का इतिहास एवं पृष्ठभूमि

किसी खबर की एतिहासिक पृष्ठभूमि देना अब समाचार पत्रों के लिए एक सामान्य प्रवृत्ति बन गयी है। यह घटना के बारे में लोगों को पूरक सूचना देने की जरूरत को पूरा करने के लिए दिया जाता है। सामग्री की उपलब्धता ने भी विभिन्न घटनाओं की ऐसी पृष्ठभूमि की प्रस्तुति में पर्याप्त सहयोग दिया है। किसी विशेष अवसर पर विभिन्न घटनाओं का इतिहास दिया जाता है। उदाहरण के लिए अदालती फैसले, प्रमुख व्यक्तियों की मृत्यु, बड़ी रेल एवं वायुयान घटनाएं एवं ऐसी ही अन्य घटनाओं के मामले में घटना की पृष्ठभूमि प्रकाशित की जाने लगी है। हालांकि इस प्रकार का कवरेज पहले के अखबारों में भी दिया जाता था किन्तु अब इस प्रकार के कवरेज की आवृत्ति एवं विविधता काफी बढ़ गयी है।

घटनाओं से सीखना

यह अखबारों की अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। ये अखबार आम आदमी के सुरक्षा संबंधी विविध सूचनाएं प्रकाशित करते हैं। उदाहरण के लिए किसी आगजनी की खबर में आवश्यक सुरक्षोपायों संबंधी ऐसी सूचनाएं जिन्हें भविष्य में किसी ऐसी दुर्घटना से बचने के लिए पाठकों को याद रखना चाहिए भी शामिल होती है। इसी प्रकार बिजली से होने वाली मौतों की खबर में भी ऐसी किसी अनहोनी से बचने के लिए किसी आवश्यक परामर्श शामिल होते हैं। कई बीमारियों के संदर्भ में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। समाचार पत्र साक्षात्कार एवं तस्वीरों के रूप में किसी खबर से जुड़ी अतिरिक्त सूचनाएं भी दे रहे हैं।

समाचार पत्रों की सहभागी भूमिका

समाचर पत्र विभिन्न घटनाओं के मूक दर्शक नहीं हैं बल्कि उनकी प्रवृत्ति अब पाठक के समक्ष स्वयं को एक मार्गदर्शक, अभिप्रेरक, परामर्शदाता के रूप में प्रस्तुत करने की है। और इसके अलावा वो ऐसे बहुत सारे कार्य करते हैं जिन्हें पहले अखबारों की भूमिका में नहीं रखा जाता था। यह पाठकों के मित्र की तरह भी कार्य करते हैं। एक अच्छा मतदाता कैसे बना जाय एवं किस प्रकार स्वयं को विभिन्न बीमारियों से बचाया जाय, विभिन्न तकनीकों का प्रयोग कैसे किया जाय, कहां निवेश किया जाय, कहां घूमा जाय, समाज में कैसे व्यवहार किया जाय, कौन सा पेशा चुना जाय, व्यक्तित्व विकास किस तरह हो और ऐसे कई सारे अन्य विषयों को मीडिया द्वारा व्यापक रूप से कवर किया जा रहा है।

जन साधारण की भागीदारी

मॉस मीडिया विभिन्न मुद्दों पर अपने दृष्टिकोंण को अभिव्यक्त करने में आम लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित करने का प्रयास कर रहा है। यह अखबारों की एक नियमित प्रवृत्ति बन चुकी है। इसने अखबारों के साथ लोगों को जोड़ने में निश्चित रूप से मदद की है। यह मॉस मीडिया के व्यवसायिक दृष्टिकोंण को भी दिखाता है। यह अखबारों के एक विपणन के एक तरीके के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस प्रकार की सहभागिता पहले भी दी गई थी लेकिन उसकी आवृत्ति एवं प्रस्तुति की मात्रा अब जैसी नहीं थी। ये अखबार पाठकों को कई रूपों में नागरिक पत्रकार (सिटिजन जर्नलिस्ट) के तौर पर काम करने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं।

पत्र लेखन, आलेख, तस्वीरें किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का साक्षात्कार अखबारों द्वारा अपनाए गये वो उपाय हैं जिनके माध्यम से ये निमंत्रण दिये जाते हैं।

सामाजिक गतिविधियों में मीडिया की सहभागिता

समाचार पत्र अनेक सामाजिक गतिविधियों में भी भाग ले रहे हैं। ये सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियां आयोजित कर रहे हैं। कई बार ये इसके लिए प्रचार अभियान का भी सहारा लेते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान अखबार ने निरंतर एक अभियान चलाया ताकि लोगों को मतदान के लिए प्रेरित किया जा सके। समाचार पत्र सामाजिक कल्याण के लिए विभिन्न कैंपों का भी आयोजन करते हैं। यह सभी गतिविधियां केवल अखबार की साकारात्मक छवि बनाने एवं लोगों को इससे जोड़ने के लिए की जाती हैं।

अखबारों में आधुनिकता एवं उपभोक्तावाद

अखबारों का संपूर्ण दृष्टिकोंण लोगों को एक आधुनिक जीवन शैली प्रदान करने के उद्देश्य पर आधारित है। विषयवस्तु, शीर्षक, आलेख, तस्वीरें, फीचर का उद्देश्य उपभोक्तावाद, आधुनिक सामाजिक मूल्यों एवं संस्कृति को बढ़ाने पर होता है। सूचना प्रौद्योगिकी खान-पान की आदतों एवं कई अन्य विषयों को सामाजिक जीवन शैली में आधुनिकता को बढ़ाने के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। ये नवाचार उपभोक्तावाद के प्रति लोगों को अभिप्रेरित करने के लिए हैं।

विकासपरक समाचारों का अभाव

इन सबके बावजूद कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें समाचार पत्रों में न्यूनतम कवरेज मिला है। इनमें शामिल हैं सरकारी कार्यक्रमों एवं विकास मुद्दों संबंधी सूचनाएं। समाचार पत्र मुश्किल से इन विषयों को शामिल करते हैं। हालांकि यह अपेक्षा की जाती है कि अखबार इन विषयों पर भी पर्याप्त सामग्री प्रकाशित करें। इसके अलावा कई ऐसी साकारात्मक एवं नाकारात्मक प्रवृत्तियां हैं जिन्हें अखबारों की विषयवस्तु में देखा गया है। अध्ययन सीमित होने के कारण उन्हें यहां प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

प्राप्तियों एवं निष्कर्षों की चर्चा

अध्ययन अखबारों के कवरेज के विषय में कई नये तथ्य उद्घाटित करता है। यह अधिक व्यवसायिक दृष्टिकोण अपना रहे हैं। और न केवल पाठकों को आकर्षित करने बल्कि उनसे जुड़ने

के सर्वोत्तम प्रयास कर रहे हैं। अखबारों का समग्र दृष्टिकोण बाजार केन्द्रित है। वे विषयवस्तु की प्रस्तुति कुछ ऐसी शैली में कर रहे हैं जिससे पाठकों का ध्यान आसानी से आकर्षित किया जा सके।

- अखबारों की विषयवस्तु जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से अधिकतम विषयों को सम्मिलित कर रही है।
- भौगोलिक रूप से सुदूर क्षेत्रों के समाचार की तुलना में स्थानीय खबरों को अधिक प्राथमिकता दी जा रही है।
- प्रस्तुतिकरण की शैली का उद्देश्य लोगों को अखबार के साथ जोड़ना है।
- शीर्षकों को लिखने में यह अखबार कई प्रकार की नई शैलियां अपना रहे हैं।
- शीर्षक लोगों का ध्यान आकर्षित करने का महत्वपूर्ण साधन बन चुके हैं।
- अखबार स्थानीय खबरों को अधिक स्थान दे रहे हैं।
- अखबार स्वयं को विविध सामाजिक अभियानों में संलग्न कर रहे हैं ताकि समाज के विभिन्न वर्गों से स्वयं को जोड़ सकें।
- चित्र एवं ग्राफिक्स अखबारों का महत्वपूर्ण भाग बन चुके हैं।
- हिंदी के समाचार-पत्रों में अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल बढ़ा है।
- अखबार एक ही समय में कई भूमिकाओं का निर्वाह कर रहे हैं।

अध्ययन की सीमाएं

अध्ययन की निम्नलिखित सीमाएं हैं-

- यह अध्ययन दिल्ली से प्रकाशित होने वाले हिन्दी अखबारों पर आधारित है।
- इस अध्ययन में अखबारों की सभी प्रकार की प्रस्तुतियों पर चिंतन किया गया है।
- इसमें विषयवस्तु पर गुणात्मक शैली में चर्चा की गई है।
- अखबारों में परिवर्तन के प्रभाव को इस विमर्श में शामिल नहीं किया गया है।
- अखबारों की अन्तर्राष्ट्रीय कार्यप्रणाली में भी कई नवाचार देखे गए हैं किन्तु इस अध्ययन में उनपर चर्चा नहीं की गई।

आगे के अध्ययन के लिए सुझाव

आगे के अध्ययन के लिए कई महत्वपूर्ण क्षेत्र चिन्हित किये जा सकते हैं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

- अखबार के पृष्ठ के अभिकल्प एवं पृष्ठ-सज्जा के क्षेत्र में अध्ययन किया जा सकता है।
- इसी प्रकार अखबारों के कुछ अन्य तत्वों को चुनकर उन पर भी अध्ययन किया जा सकता है।
- इस प्रकार के अध्ययन अखबारों के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में किया जा सकता है।
- एक या अधिक विषयों के संदर्भ में भी मात्रात्मक शैली में अध्ययन किया जा सकता है।

हड़प्पाई धर्म

प्रीतम सिंह सारसर

एम.ए. (इतिहास), विनायक मिशन विश्वविद्यालय, सलेम, तमिलनाडु,
यू.जी.सी. नेट उत्तीर्ण

कालान्तर में जब सिंधु तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों में एक शहरी सभ्यता का उदय हुआ जिसके अवशेष पूर्व में आलमगीर तथा पश्चिम में सुतकागेंडोर, उत्तर में मांड़ा तथा दक्षिण में दायमाबाद तक मिले हैं। और वर्तमान समय में भी मिल रहे हैं। लगभग 1500 बस्तियों के अवशेष प्राप्त हो रहे हैं। इन बस्तियों के निवासी मुहरों पर अपने लेखन के लगभग 4000 नमुने अपने पीछे छोड़ गए हैं। लेखन तामग्रखण्डों, कांसे के उपकरण, हाथी दंतों, मिट्टी के ताबिजों, शैलखड़ी के साँचे में ढली पक्की मिट्टी पर अंकित है। निर्माण अवशेषों, मृण्मूर्तियों, काँस्य प्रतिमाओं और विशाल प्रस्तर प्रतिमाओं के साथ-साथ लेखन के नमूने हड़प्पाइयों के आर्थिक विश्वासों की तस्वीर मढ़ने के हमारे प्रमुख स्त्रोत हैं।

धर्म की परिभाषा और व्याख्या अपने आप में विवाद का विषय है। हालांकि एक मतानुसार जब मनुष्य अपने कार्यों, विचारों तथा भविष्य की अनिश्चितताओं तथा प्रकृति के सामने असमर्थ होने पर वह अनेक समाधान, बचाव तथा बेहतर फल पाने के लिए ईश्वर की अलौकिक शक्ति, आत्माओं तथा प्रकृति के ही अनेक रूपों की पूजा का सहारा लेता है और इसकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती है जिसे धर्म के नाम से संबोधित किया जाता है।

हड़प्पाई लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। अत: अनेकानेक देवी-देवताओं की पहचान करने, हड़प्पाइयों के देवसमूह का तानाबाना रचाने, तथा एक दूसरे से भिन्न धार्मिक आचरणों तथा कर्मकाण्डों के बारे में लिखने और एक संरचनात्मक धार्मिक प्रतिमान गढ़ने के सारे प्रयत्न काफी कुछ अटकलबाजी के ढंग के रहे हैं। हड़प्पा के लोग किसकी आराधना करते थे यह प्रश्न विद्वानों के मध्य चर्चा का विषय है। उनकी धार्मिक मान्यताओं को समझने के लिए हमें केवल अपनी बुद्धि और तर्क पर निर्भर रहना होगा ताकि हम हड़प्पा के लोगों की धार्मिक मान्यताओं को आधुनिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में रखकर समझा सकें।

अपने समकालीन सभ्यताओं के विपरित हड़प्पाई नगरों मे स्पष्ट रूप से धर्म से सम्बंधित इमारतें और साजो-समान से युक्त कब्रें देखने को नहीं मिलती। अगर मंदिर थे भी तो इन्हें पहचानना कठिन है क्योंकि न उपास्य जैसी लगने वाली कोई शानदार मूर्ति मिलती है और न ही विशेष रूप से सुसज्जित संरचना।

हड़प्पा सभ्यता मे भारी मात्रा में पक्की मिट्टी की मूर्तियाँ मिली है जिसमें नारी की बहुसंख्यक मृण्मूर्तियाँ मिली है साथ ही नारी आकृतियों का अंकन मुहरों पर विविध रूपों में प्राप्त होता है इसमें स्त्रियों की जो मूर्तियाँ हैं जो शिरोसज्जा से अलंकृत है। कभी-कभी उनके साथ शिशु भी दिखाई गए

हैं। अधिकांश महिलाओं की मूर्तियाँ हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो से मिली है। इन मूर्तियों को सामान्यत: देवीयाँ माना जाता है यह संभावना अंशत: इस तथ्य पर आधारित है कि परवर्ती भारतीय इतिहास में विभिन्न देवियों की उपासना जारी रही। जॉन मार्शल ने भी उपरोक्त आधार पर हड़प्पा सभ्यता में देव समूह में देवियों की प्रधानता को स्वीकारा और वर्तमान समय में भी यह अनुकरणीय ध्वनि सुनायी देती है। किन्तु विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के बाद इस धारणा का खण्डन किया जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता में मातृदेवी की प्रधानता थी। कालीबंगा, सुरकोटदा और मिरथल जैसे महत्त्वपूर्ण हड़प्पाई स्थानों पर मृण्मूर्तियों के साक्ष्य नहीं मिलते। वृहतर सिंधु घाटी के बाहर पड़ने वाले अन्य सभी हड़प्पाई स्थानों पर केवल पशु मृण्मर्तियां ही मिली है। चान्हुदड़ो में प्राप्त नारी लघु प्रतिमाओं का रूप हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की प्रतिमाओं से भिन्न है। प्राप्त मृण्मूर्तियों को हमेशा मातृदेवी के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु उनकी स्पष्ट विशेषताओं जैसे कमर पर छोटा घाघरा, पंखनुमा शिरोसज्जा आदि। क्या ये पवित्र अग्नि के समर्पित कुमारियाँ नहीं हो सकती।

कुछ प्रतिमाएँ दरअसल कुड़े के हिस्से के रूप में उन भांडों में मिली है जो शहर के कुड़े डालने के लिए सड़कों पर रखे गए थे। देवी को स्वतंत्र रूप से पक्की मिट्टी की प्रतिमाओं के रूप में और देवताओं को सिर्फ मुहरों पर। यह नियम कहीं संयोग से भी भंग नहीं हुआ है।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त (एम 304) मुहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सबसे प्रसिद्ध देवता की पहचान मार्शल ने आदि शिव के रूप में की है। एक देवता सिके सिर पर भैंस के सिंग का मुकुट है योगी की मुद्रा में बैठा हुआ है व अनेक पशुओं हिरण, गैंडा, भैंसा, बाघ, हाथी से घीरा हुआ है। एक मुहर में एक योगी के साथ एक सर्प की आकृति है। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने शिव को हड़प्पा का सबसे महत्वपूर्ण देवता माना है यह दलील भी दी गई कि शिव को वैदिक देवसमूह में हड़प्पाइयों के जरूरी तौर पर आक्रमणकारियों/विध्वंशकों के रूप में नहीं बल्कि काल की दृष्टि से आर्य उत्तराधिकारियों में शामिल किया गया। किन्तु उपरोक्त मत पर लगातार शंकाएं उठाई जाती रही है। मार्शल की टीम के एक सदस्य इ.जे.एच. मैके थे जिन्होंने मुहर पर अंकित प्रतिमा के 'पुरुष' होने के संबंध में शंका व्यक्त की थी। एच.पी. सुलीवन, सुमांगना अत्रे ने इस तर्क को आगे बढ़ाया। अत्रे ने इस नारी लघु प्रतिमा की पहचान जंगली पशुओं की स्वामिनी (अखेटिका) के रूप में की है जो उस आदि-देवी की उपासना का प्रतिनिधित्व करती है। कुछ विद्वानों ने तथाकथित आध-शिव मुहर में शामन धर्म के लक्षण दिखाई देते हैं।

हड़प्पाई मुहरों पर सर्वाधिक चित्रांकन कुबड़दार बैल का किया गया है ये बहुत कलात्मक तथा स्वभाविक रूप में चित्रित किया गया है। उसका कुछ धार्मिक महत्त्व भी है डी.पी. अग्रवाल के अनुसार एक मुहर पर एक जुलुस वृषभ को कंधों पर उठाकर ले जा रहा है। अग्रवाल कहते हैं कि इसकी व्याख्या धार्मिक दृष्टि से ही की जा सकती है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा का सेलखड़ी मुहरों तथा मृण्मूर्तियों मे पाँच प्रकार के वृषभों का चित्रण किया गया है। पुरुषत्व का प्रतिनिधित्व करने वाला वृषभ 'मातृदेवी' का पुरुष प्रतिरूप माना गया है। चान्हुदड़ो में एक मुहर मिली है जिसमें जमीन पर लेटी एक निर्वसन पुरोहितानी के साथ एक गौर (वृषभ) को संभोग करते चित्रित किया गया प्रतित होता है। वृषभ उर्वरता उपासना का अंग था। इस प्रकार के चित्रण मे उर्वरा संस्कारों के प्रतीक के रूप में अन्न के कर्मकाण्डों के विकास के संकेत मिलते हैं।

विद्वान पोसेल ने पुरातात्विक प्रलेख से उभरते हड़प्पाई धर्म को द्वैत भावना के विशिष्ट पहलुओं के रूप में देखा। जिसका मुख्य विषय पुरुष-नारी देवत्व है। पुरुष सिंगदार पशु देवता में दिखाई देता है। जिसका संबंध भैंसे से है और नारी पौधा देवी में जिसे या तो पौधो की आकृति या पौधों के अन्दर अथवा उसके नीचे खड़ी मानव आकृति के रूप में चित्रित किया गया है। यह संभावना इस विचार

के साथ-साथ सुझाई गई है कि प्रारंभिक हड़प्पाई धार्मिक विश्वासों के पुराने विविधतापूर्ण हिस्सों पर परिपक्व हड़प्पाई काल में भी आचरण किया जाता था। पोसेल इस बात को भी भूल जाते हैं कि पौध और पशुओं में भी दोनों लिंगों का अस्तित्व है फिर पशु पुरुष और पौधा नारी ही क्यों है। विद्वानों ने मुहरों, मृदमाण्डों आदि पर चित्रित वृक्षों को भी धार्मिक कर्मकाण्डों से जोड़ दिया। जैसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और चान्दुदड़ों स्तरों से जो कृष्ण चित्रित मृदमाण्ड मिले हैं। सैंधव लिपि मे पीपल के पत्ते के सात अलग-अलग रूपों का अंकन शायद इस बात का सूचक है कि इस पेड़ को अत्यधिक श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

कई स्थानों पर वृक्षों की शाखाओं के बीच से झाँकती हुई आकृतियाँ दिखाई गई है। विद्वानों का मत है कि यह आकृतियां वृक्ष आत्माओं को बिंबित करती है या फिर उनके जीवनदायी औषधीय गुणों के एहसास के नतिजे थे। एक स्थान पर वृक्ष के सामने सात मानवीय आकृतियाँ खड़ी दिखाई गई है और वृक्ष के अंदर एक आकृति जिसके सिर पर सिंग दिखाई गई है। कुछ विद्वानों ने सिंग वाली आकृति की तुलना शिव से की है। भारत में पीपल के पेड़ की पूजा युगों से होती रही है और कहीं-कहीं पीपल के पेड़ और शिव की पूजा साथ-साथ होती दिखाई गई है। सात आकृतियों बहुधा सात-महान ऋषियों अथवा भारतीय मिथक की सात जननी मानी गई है। के.एन. शास्त्री के अनुसार पीपल देव सर्वोच्च देवता था।

हड़प्पाई मुहरों तथा मृण्मूर्तियों तथा अन्य पुरावशेषों में पशु-पूजा का भरपूर चित्रण हुआ है जैसे नाग, बाघ आदि। नाग का धार्मिक महत्त्व रहा होगा जो आगे चलकर उर्वरता, सुरक्षा, सौभाग्य, सम्पत्ति आदि का प्रतीक बन गया। कालीबंगा से प्राप्त एक वर्गाकार (के 50) में शेर के शरीर वाली देवी को प्रदर्शित किया गया। मछली का भी चित्रण खूद किया गया। हिरण, बकरा, बारहसिंगा संयोग वाले पशुओ की प्रधानता है। यह शायद उस समय के कृषि प्रतिकों के साथ-साथ आखेद और पशुचारण के प्रतिकों की स्मृतियों के संयोग का परिणाम मिश्रित पशुओं का चित्रण अर्थात् मुखकृतियाँ मनुष्य की है तो शरीर पशु के और यदि मुखाकृतियाँ पशु की है तो शरीर मनुष्य के, लगता है कि हिरण्यकश्यप मिथक इसी से प्रेरित है। एक विद्वान का कहना है कि कुबड़वाले सांड और छोटे सिंगों वाले बिना कुबड़ के सांड़ को अलग-अलग रखते तो मुहरों पर चित्रित सभी जानवर जंगली है।

संभवत: यह कुछ बच्चों के खिलाने या दीवारों पर रखने के लिए सजावट की वस्तुएं रहे हों और शल्को तथा मिट्टी की बनी लघु पशु प्रतिमाएं शायद ताबिजों के रूप मे इस्तेमाल की जाती होगी। संभवत: यह जनजातीय चिन्ह रहा होगा। कुछ चित्रण सामनी (ओझागिरी) के लक्षणों को भी प्रतिबिंबित करते हैं। जैसे चेहरे पर नकाब और मोहरों पर माचिस की तिल्ली के समान कुछ चित्र अर्धमानव आकृतियाँ अपने-अपने ढोलों के साथ पक्की मिट्टी के बने गायक और नर्तक ढोलकियाँ आदि। ड्यूरिंग कैस्पर्स का कहना है कि इस सबसे ऐसे विधि-विधानों के प्राचीन आर्थिक कर्मकाण्डों और उपासनाओं की पृष्टि होती है। शीरीन रत्नाकर का मानना है कि सामंती मानव तथा पशु की दुनिया के बीच सेतु कार्य करते हैं क्योंकि सामान औषधीय गुणों की जानकारी भी रखते हैं। सम्भवत: इनका समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। किन्तु रोमिला थापर का मानना है कि इस सभ्यता का नागरीय स्वरूप ऐसे धर्म के अनुकूल रहा होगा, ऐसा नहीं लगता।

कालीनंगा, लोथल, ओर बनावली मे राख से युक्त कुछ छोटी-छोटी संरचनाओं की व्याख्या अग्निदेवी के रूप मे की गई है। किन्तु वे चुल्हे भी हो सकते हैं। शंख तथा तर्पण पात्रों, की तुलना हिन्दु धर्म की विचारधारा तथा कर्मकाण्ड के रूप में शामिल किए जाते हैं। स्वास्तिक चिन्हों को आज भी पवित्र मांगलिक चित्र माना गया है।

ब्रिटिश मूल के जिन इतिहासकारों तथा पुरातात्वशास्त्रीयों वी.ए. स्मिथ, जॉन मार्शल, व्हीलर, पिगाँट आदि अन्य क्षेत्रों में भारत स्थित अंग्रेज प्रशासक खासतौर पर ब्राह्मण पंडितों से जिनकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृत परम्पराओं मे होती थी। परामर्श लेते थे। हिन्दु अस्मिता की सृष्टि में इन ब्राह्मणों का बहुत हाथ होता था। तत्पश्चात् अधिकांश विद्वानों ने जॉन मार्शल के वर्णन का अनुसरण करते हुए कहा है कि हड़प्पाइयों के धार्मिक आचार विचार आज के हिन्दु धर्म के सीधे जनक थे। हालांकि उपरोक्त इतिहासकारों प्रशासकों के मतों का खण्डन अब तीव्र हो चुका है।

संदर्भ

1. श्रीमाली, के.एम.–धर्म, समाज और संस्कृति, प्रथम संस्करण 2005, ग्रंथ शिल्पी, बी-7, सरस्वती कॉम्पलेक्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली।
2. थापर, रोमिला–पूर्वकालीन भारत (प्रारम्भ से 1300 ई. तक), प्रथम संस्करण 2008, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 10 केवेलरी लाईन, दिल्ली-110007
3. श्रीवास्तव, के.सी.–प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, 2007, यूनाईटेड बुक डिपो, 21, यूनवर्सिटी रोड, इलाहाबाद-211002।
4. झा, डी.एन.; श्रीमाली, के.एम.–प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय, दिल्ली।
5. झा, डी.एन.–प्राचीन भारत, 2003, ग्रन्थ शिल्पी, बी-7, सरस्वती कॉम्प्लेक्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092।

असहयोग आन्दोलनोपरांत 1930 तक चम्पारण में गांधी प्रभाव की निरंतरता

कुमारी नीतू

शोध छात्रा, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

चम्पारण सत्याग्रह का मूल कारण आर्थिक था। लेकिन कांग्रेस में पुराने नेताओं ने चम्पारण की आर्थिक दुर्दशा पर ध्यान देने से मना कर दिया था तथा गांधीजी अनमने ढंग से ही चम्पारण आये थे। उन्हें न तो चम्पारण की भौगोलिक स्थिति का कोई ज्ञान था और न ही वे नील की खेती के बारे में कुछ जानते थे।[1] वे चम्पारण यात्रा के बारे में शंकालू भी थे। अत: उनके साथ बाहर के स्वयंसेवक तथा प्रेस के लोग भी नहीं आये थे।[2] चम्पारण गांधीजी के लिए एक अनुभव था।

गांधीजी ने यहाँ भयंकर गरीबी देखी। पढ़ने का कोई साधन नहीं था। रैयतों के बच्चे या तो खेतों में काम करते या मटरगश्ती। एक पुरूष श्रमिक एक दिन में दस पाई, स्त्री श्रमिक छ: पाई तथा बालक श्रमिक तीन पाई ही कमा पाता था। यदि कोई व्यक्ति दिन में एक चवन्नी कमा लेता था तो वह सौभाग्यशाली समझा जाता था।[3] गरीबी इतनी थी कि स्त्रियों के पास एक ही कपड़े हाने के कारण वे उसे धो नहीं सकती थी।[4] गंदा रहने के कारण किसान बाराबर बीमार रहते थे और उन्हें चर्म रोग हो जाया करता था।

गांधीजी बड़े व्यथित हुए। उन्होंने पाठशालाएं खुलवाई। उन्होंने बाहर से स्वयंसेवक, शिक्षक तथा डॉक्टर बुलवाये। लेकिन सबसे बड़ी जो बात हुई, वह यह थी कि गांधीजी ने यह स्पष्ट अनुभव कर लिया कि बिना आर्थिक स्वराज्य के राजनीतिक स्वतंत्रता की बात निरर्थक है। इसिलिए चम्पारण के किसानों की समस्या से निपटने के तुरंत बाद फरवरी, 1978 ई० में कपड़ा मजदुरों की हड़ताल के लिए अहमदाबाद गए तथा फिर खेड़ा में किसानों के सत्याग्रह का नेतृत्व किया। यह कांग्रेस के पुराने नेताओं के राजनीतिक उद्देश्य मात्र की नीति से सर्वथा उलट था। गांधीजी ने स्वयं अपने आत्मकथा में लिखा है कि जब चम्पारण में किसानों की आर्थिक समस्या का संघर्ष किया गया, तो वे राजनीतिक रूप से अयास ही जागरूक हो गए। डी.जी. तेंदुलकर ने लिखा है कि चम्पारण, जहाँ संतों ने प्राचीन काल में ज्ञान पाया था, में गांधीजी ने अपने जीवन के मिशन का साक्षात्कार किया और एक ऐसे अस्त्र का आविष्कार किया जिससे भारत स्वतंत्र कराया जा सका।[5]

देश की ग्रामीण और गरीब जनता को राजनीतिक स्वतंत्रता से जोड़ने के लिए गांधीजी ने चरखा और खादी के आर्थिक स्वराज्य का मंत्र दिया। 6 फरवरी, 1921 ई० पटना में बिहार के लोगों के

समक्ष अपने भाषण में गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अकेले चरखे के दम पर ही स्वराज पाया जा सकता है।[6]

इस प्रकार गांधीवादी युग के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर चम्पारण सत्याग्रह का दूरगामी परिणाम सहज ही देखा जा सकता है। इस युग में प्रथम अखिल भारतीय आन्दोलन 'असहयोग आन्दोलन' या और इसमें भी चम्पारण की भागीदारी प्रमुख रही।

चम्पारण में असहयोग आन्दोलन स्थगित किए जाने के बाद भी राष्ट्रीय जागृति में रत्ती भी भी कमी नहीं आई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नेतृत्व में यहाँ राजनीतिक गतिविधियाँ आबाध जारी रहीं। सरकारी दमन भी जारी रहा। इसी बीच महात्मा गांधी को 10 मार्च 1922 ई० में सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया। उन्हें 6 वर्षों की कैद की सजा दी गई। विरोध में देश भर में धरना प्रदर्शन हुए तो चम्पारण भी इससे अछूता नहीं रहा। पूरे जिले में जनसभाएं तथा हड़तालें हुई। 27 मार्च, 1922 ई० को मोतिहारी में हुई जनसभा को बिहार विधान सभा के कई सदस्यों ने सम्बोधित किया।[7]

21 दिसम्बर, 1922 ई० को देशबंधू चितरंजन दास की अध्यक्षता में अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक सत्र प्रारम्भ हुआ। इसमें सुगौली से बड़ी संख्या में प्रतिनिधियों ने भाग लिया–सर्वश्री सुखलाल मिश्रा, जगन्नाथ झा, राजाजी झा (सुगांव), सुखम मिश्रा एवं राजवंशी लाल (फुलवरिया)।[8]

मोतिहारी में 28 जनवरी, 1923 को जिला कांग्रेस कमिटी की बैठक श्री हरिवंश सहाय की अध्यक्षता में हुई। इसमें स्वयंसेवकों के प्रशिक्षण और तिलक स्वराज फंड के लिए चंदा की राशि बढ़ाने पर विचार हुआ। बेतिया में कांग्रेस के एक हजार स्वयंसेवक बनाए गए एवं खादी का प्रचार किया गया।[9] 18 मार्च को बेतिया में पूर्ण हड़ताल रही।[10]

नागपुर झंडा (1923) सत्याग्रह में भी चम्पारण का अमुल्य योगदान रहा। यहाँ से कई स्वयं सेवक नागपुर गए। श्रीपुर (सुगौली) के आशमान महतो ने वह राष्ट्रीय गीत गाया। उन्हें दो सप्ताह की जेल हुइ।[11] बेतिया राज के अर्दली जोधा सिंह ने राज मैनेजर रदरफोर्ड के कहने पर 18 जनवरी, 1924 ई० को विधान सभा के कांग्रेस सदस्य श्री जयनारायण लाल को चांटा मारा और रदरफोर्ड के ही उकसाने पर दूसरे कांग्रेस विधायक श्री प्रजापति मिश्र को डंडे से प्रहार करके घायल कर दिया। उनका कसूर बस इतना था कि उन्होंने बेतिया राज के मीना बाजार के दूकानदारों से कांग्रेस द्वारा आयोजित एक प्रार्थना सभा में भाग लेने का आग्रह किया था।[12] मीना बाजार के दूकानदार स्वत: अपनी दूकानें एक नए स्थान पर ले गए। इस स्थान को नया बाजार कलांतर में गांधी बाजार कहा जाने लगा।

कांग्रेस नेताओं पर आक्रमण का समाचार देशभर में फैल गया। प्रांतिय कांग्रेस कमिटि ने प्रस्ताव किया कि स्थिति को नियंत्रित नहीं किया गया तो जनता से आग्रह किया जाएगा कि वे बेतिया राज को किराया देना बंद कर दें।[13]

चम्पारण में 1924 तक खादी का काम बहुत बढ़ गया था। अस्पृश्यता निवारण के लिए कार्य होने लगे। चरगांहां (बेतिया) गांव के श्री झींगुर लाल ने मऊ (उत्तर प्रदेश) से बुनाई का विशेष प्रशिक्षण लिया और उन्होंने चम्पारण के गांव-गांव घूम कर बुनकरों को बुनाई का प्रशिक्षण दिया। खादी की बिहार में धूम मच गई। 1926 ई० में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के निर्देशन में बिहार भर में प्रदर्शनियाँ लगाई गई। बेतिया में इस क्रम में जुलाई, 1926 में प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्घाटन

बेतिया राज के नए मैनेजर एच.सी. प्रायर ने किया।[14] इसी महीने मोतिहारी में भी एक खादी प्रदर्शनी लगाई गई। जिसका उद्घाटन जिले के प्रसिद्ध ईसाई पुरोहित खेरेंड फादर जे. एच. हैज ने किया। बेतिया में रूपये 1,304-12-3 मुल्य की तो मोतिहारी में रूपये 1.162-8-9 मुल्य की खादी की बिक्री हुई।[15]

गांधीजी जनवरी, 1927 ई० में दुबारा चम्पारण आए। वे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, कस्तूरबा बाई तथा प्रभावती देवी (श्री जयप्रकाश नारायण की पत्नी) के साथ 7 जनवरी 1927 ई० को मोतिहारी पहूंचे।[16] गांधीजी को रक्सौल में रूपये 177-13-1.5, ढाका में रूपये 723-0-0, सुगौली में रूपये 207-0-0, मोतिहारी में रूपये 270-0-0, शिकारपुर में रूपये 1089-12-0, बेतिया मे रूपये 2,229-11-9, बगहां में रूपये 737-8-0 तथा चनपटिया में रूपये 422-5-6 की राशि की थैलियां सौंपी गई।[17]

गांधीजी ने चम्पारण के इस दौरे पर हिन्दु-मुस्लिम एकता पर बल दिया। इस सम्बंध में नरकटियागंज, बेतिया, रक्सौल, घोड़ासहन, ढाका एवं मोतिहारी में 24 जनवरी 1927 ई० को जनसभाओं को सम्बोधित किया।[18] महिलाओं को उन्होंने पर्दा प्रथा त्यागने को कहा।[19]

नवम्बर, 1927 को ब्रिटिश सरकार ने साइमन आयोग की नियुक्ति की जिसके सारे सदस्य अंग्रेज थे। भारत के लिए भावी संविधान की रचना के लिए बने इस आयोग में एक भी भारतीय न हो, यह भारत के राजनेताओं और भारत की जनता को स्वकार नहीं था। देश भर में इस आयोग का विरोध हुआ। 12 दिसम्बर, 1928 पहुंचने पर बिहार भर में जुटे हजारों लोगों ने रेलवे प्लेटफार्म पर साइमन आयोग के विरूद्ध प्रदर्शन किया। बड़ी संख्या में चम्पारण से स्वयंसेवक गए थे।[20]

बिहार स्टूडेंट्स कॉन्फ्रेंस का 21वां सत्र मोतिहारी के हिकॉक एकेडमी में 4 अक्टूबर, 1928 ई० में प्रारम्भ हुआ। निर्वाचित अध्यक्ष प्रो० बासवानी की अनुपस्थिति में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने उनका संदेश पढ़ा जो युवकों को राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत कर देने वाला था।[21]

साइमन आयोग का विरोध करते हुए जब लाला लाजपत राय पुलिसिया बर्बरता से शहीद हो गए, 29 नवम्बर 1928 ई० को बेतिया में लाला लाजपत राय दिवस मनाया गया। 02:30 बजे से 4 बजे दिन तक जुलूस निकाला गया जो बाद में एक जनसभा में परिणत हो गया। विधान सभा सदस्य श्री हरिवंश सहाय तथा जोगपट्टी के श्री विशुनाथ सिंह मुख्य वक्ता थे।[22]

पुलिस का दमन बढ़ने के बाद भी बेतिया तथा चम्पारण के लोगों का राष्ट्रवादी उत्साह कम नहीं हुआ। उन्होंने बहिष्कार, स्वदेशी, खादी तथा समाज-सुधार के कार्य जारी रखे। जिले भर में ग्राम समितियां गठित की गई। हिन्दुस्तानी सेवा दल का विस्तार हुआ तथा थाना समितियां भी बनाई गई।

रामनगर थाना क्षेत्र में बेतिया राज के करिंदों ने पं० प्रजापति मिश्र और उनके सहयोगियों पर 4 अप्रैल, 1929 ई० को लाठियां बरसाई।[23] इसका व्यापक विरोध हुआ। चम्पारण में अहिंसकर राष्ट्रीय आन्दोलन के समानंतर एक उग्रवादी आन्दोलन भी चला था। मौलानिया नामक स्थान में एक राजनीतिक डकैती हुई। इस मौलानिया षड्यंत्र केस में पुलिस ने बेतिया के क्रांतिकारियों, फणींद्रनाथ घोष तथा मनमोहन बनर्जी को अभियुक्त बनाया।[24]

सरदार बल्लभभाई पटेल, बिहार प्रादेशिक कांग्रेस सम्मेलन में भाग लेने मुंगेर आए थे। वहाँ से वे 10 दिसम्बर, 1929 ई० को मोतिहारी आए और उन्होंने एक महती जन सभा को सम्बोधित किया और जनता से आग्रह किया कि वे चौकदारी टैक्स न दें।[25]

फुलवरिया में 11 दिसम्बर, 1929 ई० को श्री भगवती प्रसाद वर्मा (वैरिस्टर विपिन बिहारी के भाई) की अध्यक्षता में जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुई। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता खड़ी बोली के प्रथम कवि श्री चन्द्रशेखर मिश्र (बगहा) ने की। युवा संघ की बैठक की अध्यक्षता श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने की।[26]

अश्पृश्यता निवारण के संदर्भ में कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई। एक चमार जाति के व्यक्ति ने एक कलवार जाति के व्यक्ति के घर में ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ तथा अन्य जातियों के लोगों के साथ मोतिहारी में कच्ची रसोई (भात) खाई। चम्पारण तथा मुजफ्फरपुर में कुछ और व्यक्तियों ने अन्तर्जातीय भोज का आयोजन किया।[27] परिषद् सदस्य श्री हरिवंश सहाय तथा योगापट्टी के श्री विशुनाथ सिंह मुख्य वक्ता थे।[28]

चम्पारण के अनुभवों से गांधीजी ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को जन आन्दोलन बनाने के लिए जनता मे आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक आधार पर राष्ट्रीय जागरण को प्रोत्साहित करने के महत्त्व को समझा। राष्ट्रीय आन्दोलन का फलक अत्यन्त विस्तृत हो गया। चरखा, खादी इत्यादि के सफल प्रयोग से ग्रामीण भारत की जनता सालों भर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रभाव से उद्धेलित होती रही। चरखा और खादी से देश में नारी-जागृति तथा धार्मिक सहिष्णुता के भाव भी समृद्ध हुए। अधिकांश सूत-कताई का कार्य महिलाएँ ही करती थी। ये 'कतिने' मुख्यत: हिन्दु धर्मावलम्बी थी तथा अधि कांश बुनकर (जुलाहे) मुस्लिम थे। फलस्वरूप सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीय जागरण की एक नई और अधिक तीव्र लहर उठी।

संदर्भ

1. एम. के गांधी: माई एक्सपेरियेंस विद् ट्रूथ, अहमदाबाद, 1963, पृष्ठ संख्या 245।
2. एम.के गांधी: माई एक्सपेरियेंसेज विद् ट्रूथ, अहमदाबाद, 1963, पृष्ठ संख्या 266।
3. डी.जी. तेंदुलकर: गांधी इन चम्पारण, नई दिल्ली, 1994, पृ०सं० 103।
4. डी.जी. तेंदुलकर: गांधी इन चम्पारण, नई दिल्ली, 1994, पृ०सं० 111।
5. डी.जी. तेंदुलकर: गांधी इन चम्पारण, नई दिल्ली, 1994, पृ०सं० 115।
6. एम. के. गांधी: यंग इंडिया, 22 दिसम्बर, 192।
7. द सर्चलाइट: 30 मार्च 1921।
8. रमेश चन्द्र झा: स्वाधीनता समर में सुगौली, पृ. सं. 18।
9. द सर्च लाइट: पटना 23 मार्च 1923।
10. रमेश चन्द्र झा: पूर्वाक्त, पृ. 40।
11. रमेश चन्द्र झा: पूर्वाक्त, पृ. 20-22।
12. द सर्च लाइट: पटना 20 मार्च 1924।
13. राजेन्द्र प्रसाद: आत्मकथा, पृ. सं. 218।
14. यंग इंडिया: 15 जुलाई, 1926।
15. यंग इंडिया: 15 जुलाई, 1926।
16. यंग इंडिया: 15 जुलाई, 1927-28, पृ. सं. 53।
17. डी.जी. तेंदुलकर: महात्मा, खंड-4, पृ.सं. 128।

18. जनकधारी प्रसादः आत्मकथा, पृ. सं. 142।
19. डी.जी. तेंदुलकरः उपरोक्त, खंड-4, पृ.सं. 131।
20. डॉ. के.के. दत्ताः गांधी इन बिहार, पृ. सं. 139।
21. रमेश चन्द्र झाः पूर्वोक्त, पृ. सं. 22।
22. द इंडियन क्वार्टरली रजिस्टर, 1928, खंड-2, पृ. सं. 463।
23. डॉ. के.के. दत्ताः फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, खंड-2, पृ. 45।
24. फाईल नं. 59/1229, पॉलिटिकल स्पेशल, गवर्नमेंट ऑफ बिहार, पटना।
25. डॉ. के.के.: हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, खंड-2, पृ. सं. 32।
26. नागेन्द्र कुमारः दी इंडियन नेशनल मूवमेंट, पृ. सं. 70।
27. रमेश चन्द्र झाः पूर्वोक्त, पृ. सं. 22।
28. बिहार प्रॉविंशियल कान्ग्रेस कमिटिज ऐन्युअल रिपोंट, 1928-29।

मुंडा जनजाति और समावेशी विकासः मुंडा महिलाओं के विशेष संदर्भ में

श्रीमन नारायण पाठक

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सशक्तिकरण एक राजनैतिक-सामाजिक अवधारणा है जो महिलाओं को निर्णय की स्वायत्ता निर्णय में सहभागिता एवं समाज में न्यायोचित स्थान प्रदान करने से संबद्ध हैं लेकिन इसका सर्वाधिक प्रमुख आधार आर्थिक है। समानता व स्वतंत्रता के आदर्श को कारगर ढँग से आर्थिक प्रगति के बिना लागू नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार सशक्तिकरण भी आर्थिक प्रगति के बिना एक अमूर्त अवधारणा ही बन कर ही रह जायेगी।

उल्लेखनीय है कि आजादी के बाद देश का आर्थिक विकास उतरोत्तर बढ़ा है। विशेषकर द्वितीयक श्रेणी की प्रगति उल्लेखनीय रही है। देश के अर्थव्यवस्था में आये इस संरचनात्मक परिवर्तन का लाभ आदिवासी महिलाओं को मिला है। वे सक्रिय रूप से निर्माण क्षेत्र में, विनिर्माण क्षेत्र, आवाजाही के साधन में एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में सहभागिता कर रही है।[1]

सरकार भी विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत उनकी आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित कर रही है। विभिन्न योजनाओं में उनके प्रगति को प्राथमिकता दी गई है। 8वीं पंचवर्षीय योजना में विकास प्रक्रिया में समान साझेदार एवं प्रतिभागी के रूप में महिलाओं पर विशेष बल दिया गया है। इसी क्रम में 9वीं पंचवर्षीय योजना में योजना, प्रक्रिया और स्व-सहायता दलों के निर्माण में लोगों की सहभागिता पर बल दिया गया है। सरकार अब महिलोन्मुखी बजट निर्माण पर जोर दे रही है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के बजट परिव्यय में लगातार वृद्धि हो रही है।

सरकार ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948), समान कार्य के लिए समान वेतन (1976) एवं मातृत्व लाभ अधिनियम (1961) आदि कानूनों के द्वारा कामकाजी महिलाओं के हितों को सुरक्षित करने का भी प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त सरकार ने बीड़ी मजदूरों एवं खान मजदूरों के कल्याण के लिए कल्याण कोषों का गठन किया है। इन कोषों का उपयोग श्रमिकों को उनके बच्चों की शिक्षा, मनोरंजन, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं, मकान निर्माण आदि के लिए वित्तीय सहायता देने में किया जाता है। इसका लाभ आदिवासी महिलाओं को भी मिला है, क्योंकि अधिकांश महिलायें इन क्षेत्रों में ही भागीदारी करती है।

1947-2000 की अवधि के मध्य आदिवासी महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण व परिवर्तन भी बड़ी तीव्र गति से हुआ। इसके अन्तर्गत शिक्षा के क्षेत्र में, स्वास्थ्य के क्षेत्र में एवं बच्चों के पालन-पोषण के संदर्भ में गुणात्मक परिवर्तन आये जिससे आदिवासी महिलायें सामाजिक रूप से और

सशकत होकर उभरी। विभिन्न विधानों एवं योजनाओं के तहत सरकार ने सामाजिक रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण को उत्प्रेरित किया। सरकार ने संवैधानिक प्रावधानों 15 (4) एवं (46) अनुच्छेद से प्रेरित होकर कई योजनाओं को लागू किया। सरकार ने एलीमेंटरी गर्ल्स एजुकेशन सिस्टम के तहत कई विद्यालय खोले[2] लड़कियों के लिए मुफ्त पुस्तक वितरण योजना लागू की, आश्रम विद्यालय खोले, महिला समाख्या योजना लागू की एवं नेशनल प्रोग्राम फॉर एजुकेशन ऑफ गर्ल्स एट एलीमेन्ट्री लेवर (NPEGL) भी क्रियान्वित किया।

इन उपायों का असर मुंडा आदिवासी लड़कियों पर विशेषकर प्रभावशाली रूप से पड़ा और उनमें साक्षरता का प्रसार हुआ। यह 1991 की के 14.2 प्रतिशत के स्तर से बढ़कर 2001 में 27.2 प्रतिशत हो गया।[3]

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी उन्होंने नये मानको एवं पद्धतियों को स्वीकार किया है। नेशनल हेल्थ सर्वे (1998-99) इस रूप की पुष्टि करता है।[4] उन्होंने अब आधुनिक मानकों को स्वीकार किया है। सर्वे यह दिखाता हैं कि अब वे परिवार नियोजन के आधुनिक मानको को भी अपना रही है। बच्चों के देखभाल के लिये गर्भावस्था में अपनी सुरक्षा के लिए, प्रसव के समय आधुनिक सुरक्षात्मक पद्धतियों को स्वीकार करने में एवं प्रसवोपरांत की पद्धतियों को स्वीकार करने में वे अब पहले की अपेक्षा अधिक जागरूक हुई हैं। इससे उनमें मातृत्व मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर आदि में उल्लेखनीय कमी आई है। कुपोषण जैसी गंभीर समस्याओं से उन्हें मुक्ति मिली है और उनका जीवन प्रत्याशा बढ़ा है। इससे उनका मानव विकास सूचकांक पहले की अपेक्षा बढ़ा है।

सरकार ने आईसीडीएस, स्वयंसिद्ध, स्वावलंबन, स्वधार, निपसिड, सेप और स्वशक्ति[5] जैसे सरकारी व गैर सरकारी अभियानों के तहत इस दिशा में गंभीर प्रयास किया है।

यह प्रशंसनीय है कि इस प्रक्रिया को स्वतंत्र भारत के सरकारी प्रयासों एवं संवैधानिक आदर्शों ने और तीव्रता प्रदान की। आजाद भारत में सरकार ने इन उपेक्षित समुदायों की प्रगति को राष्ट्रपति एवं राज्यपाल का विशेष कर्तव्य घोषित किया। संविधान में इन समुदायों की प्रगति एवं कल्याण को सुनिश्चित करने वाली कई प्रावधनों को स्थान दिया गया। धारा 15(4) के तहत इनके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक हितों को सुरक्षित किया गया, धारा 16 (4) के तहत सरकारी नौकरी में इन्हें आरक्षण का लाभ दिया गया, धारा 19(5) के तहत संपत्ति में इनके अधिकारों को संरक्षित किया गया, धारा 23 के तहत इनके अवैध व्यापार को समाप्त किया गया और बलात् श्रम को प्रतिबंधित किया गया। धारा 29 के तहत इनके सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकारों को सुरक्षित किया गया। धारा 46 के तहत इनके शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों के विकास के लिये निर्देश दिया गया। धारा 275 के तहत इनके हितों के लिए राज्यों को धन मुहैया कराने का विशेष उपबंध किया गया।[6]

आजाद भारत में इन संवैधानिक उपबंधों एवं निर्देशों के आलोक में सरकार ने कई कल्याणकारी योजनाओं की शृंखला प्रारंभ की। विशेष बहुउद्देशीय आदिवासी विकास खंड (1955) आदिवासी विकास खंड (1961-62) आदिवासी उपयोजना (5 वीं योजना)[7] इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। कई महत्वपूर्ण योजनायें इस काल में प्रारंभ की गई जैसे आवासीय विद्यालय, भोजन की व्यवस्था, मैट्रिक पूर्व एवं पाश्चात्य छात्रावृत्ति, युवाओं (15-25 वर्ष)[8] के लिए विशेष योजना। इन योजनाओं के मुंडा आदिवासी महिलाओं पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों से इनकार नहीं किया जा सकता हैं।

मुंडा महिलाओं के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका भी प्रभावशाली रही है। मुख्य गैर-सरकारी संगठन, जिन्होंने अपने कार्यक्रमों में आदिवासी कल्याण को मुख्य स्थान दिया है, सर्व सेवा संघ, गाँधी स्मारक निधि, कस्तूरबा स्मारक निधि, आदिमजाति सेवा मंडल, अशोक आश्रम, रामकृश्ण आश्रम।[9] मुख्य रूप से इन संगठनों की भूमिका शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में रहीहै, लेकिन अब धीरे-धीरे ये अपनी भूमिका में विस्तार कर रहे हैं और अपने कार्यक्रमों में कृषि, व्यापार, संस्कृति आदि के विस्तार को भी स्थान दे रहे हैं। इस क्षेत्र में कई संगठन विशेषकर महिलाओं एवं महिला सशक्तिकरण के लिये भी कार्यशील हैं। इन संगठनों में स्वाधीन (1984-85), भूमि-कन्या (1998), कैथोलिक महिला संघ आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[10]

आज झारखंड, मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि आदिवासी बहुल क्षेत्रों की आदिवासी महिलाओं में आर्थिक जागरूकता भी बढ़ी है। इन महिलाओं में आधुनिक आर्थिक कौशल एवं प्रबंधन के गुण आसानी से देखे जो सकते हैं। इसका सर्वाधिक दिलचस्प उदाहरण- झारखंड के गिरिडीह जिला के बैगाबाद प्रखंड में संथाली आदिवासी महिलाओं द्वारा संचालित बैंक है। यह बैंक कामझोर गाँव में है और इसे इंस्टीच्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट (इरमा), आनंद (गुजरात) की सहातया से खोला गया है। इस बैंक का नाम IICCO (IRMA Imitative Credit Co-operation) है।[11] उल्लेखनीय है आज यह बैंक सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। 2005 में इसके उद्घाटन के बाद यह बैंक आज 350 से ज्यादा ग्राहकों के खातों को संचालित कर रहा है और छोटे-छोटे ऋणों को भी उपलब्ध कराने का प्रयास करता है।

इस आर्थिक परिवर्तन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्वयं आदिवासी महिलायें इसका नेतृत्व कर रही हैं। आधुनिक आर्थिक कौशल एवं प्रबंधन को लेकर उनमें चेतना बढ़ी है। पुष्पा टर्की और प्रभावती हंसदा[12] जैसी महिलायें इस प्रकार के आर्थिक आंदोलन को नेतृत्व प्रदान करते हुए आदिवासी महिलाओं के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाने का सचेष्ट एवं सफल प्रयास कर रही है।[13]

यह सही है कि पिछले दो दशकों में भारत की समूची आबादी और वंचित वर्ग समूहों की औसत आमदनी में इजाफा हुआ है। इसे मापने वाली गरीबी रेखा में भी गिरावट आई है। हालांकि, समग्रता के लिए इससे कहीं ज्यादा असरदार नतीजे चाहिए। समग्रता की अवधारणा के लिए जो ज्यादा प्रशस्त अवधारणा अर्थात् समावेशी विकास का इस्तेमाल किया गया है उसके तहत भारत का रिकॉर्ड निराशा करने वाला रहा है।

भारत के वंचित वर्ग समूहों में मुंडा जनजाति की महिलाएँ प्रमुख हैं। भारत की स्वतंत्रता के उपरान्त ही इनकी आर्थिक स्थिति के उन्नयन हेतु केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा प्रयास किया जाता रहा है। इसी क्रम में वंचितों तक विकास की धारा को पहुँचाने हेतु समावेशी विकास की अवधारणा को अपनाया गया।

समावेशी विकास भारत के लिए कोई नई अवधारणा नहीं है। सदियों पूर्व यहाँ सर्वे भवंतु सुखिन: की सामाजिक परिकल्पना व्यक्त की गई थी लेकिन एक नई विश्व व्यवस्था की संरचना के संदर्भ में विकास के एक आयाम के रूप में समावेशी विकास को देखने-समझने की आवश्यकता है। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अपेक्षा समावेशी विकास ही है।[14]

समावेशी विकास में आर्थिक विकास, उच्च घरेलू विकास दर तथा ज्यादा राष्ट्रीय आय की प्राप्ति होती है जिसका लाभ समाज के कमजोर वर्गों सहित सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचता है। भौगोलिक व आर्थिक असमानताएँ घटती है तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छ पर्यावरण, पौष्टिक भोजन जैसी बुनियादी सुविधाओं तक सभी की पहुँच समान रूप से होती है।[15]

समावेशी विकास का ही एक प्रमुख घटक वित्तीय समावेशन है जिसका प्रमुख उद्देश्य समाज के असुरक्षित और कमजोर वर्गों को निवेश के अवसर और आर्थिक वृद्धि का लाभ उपलब्ध कराने के लिए आसान शर्तों पर धन मुहैया कराना है। इसका लक्ष्य जमा और भुगतान खाता, साख बीमा और पेंशन जैसे व्यापक वित्तीय सेवाओं को वृहत् स्तर पर सुलभ कराना है। इसके साथ-साथ व्यापार के लिए अवसर, शिक्षा, सेवानिवृत्ति के लिए बचत और आपात ऋण सहित जोखिमों के लिए बीमा आदि भी शामिल है।

वर्तमान सरकार की नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों से भविष्य की मंशा स्पष्ट होती है। इसमें वंचित वर्ग खासकर जनजातिय क्षेत्रों के निवासियों के सशक्तिकरण की नीयत झलकती है। सरकार ने जनजातियों के सर्वांगीण विकास के लिए वन-बंधु कल्याण योजना की शुरूआत की है। वर्ष 2014-15 में 100 करोड़ राशि का प्रावधान किया है।[16] झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, उड़िसा सहित पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय क्षेत्रों में कल्याणकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सरकार विभिन्न योजनाओं को संबद्ध करने की कोशिश भी कर रही है। प्रधानमंत्री ने जनजाति विकास के लिए नव गठित नीति आयोग को भी निर्देशित किया है। जनजातिय मुंडा महिला समाज में परिवर्तन और विकास के लिए सरकार प्रौद्योगिकी की पहुँच भी सुलभ कराने की कवायद कर रही है।

प्रधानमंत्री जन-धन योजना, विद्यालयों में बालिकाओं के लिए शौचालय निर्माण, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ अभिदान, सुकन्या समृद्धि योजना, बाल स्वच्छता अभियान और मिशन इन्द्रधनुष जैसे पहल मुंडा महिलाओं के स्वावलंबन और सशक्तीकरण की दिशा में क्रांतिकारी प्रयास है। अब प्रत्येक मुंडा महिलाओं को स्वयं का बैंक खाता रखना संभव हो गया है। अब उनकी कमाई के पैसे पर उनका पूर्ण नियंत्रण होगा। सरकार द्वारा उनके खाते में स्वयंमेव सब्सीडी व छात्रवृत्ति की अन्य राशियाँ मिलेंगी। उनका यथोचित विकास होगा तथा वे समाज और राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देंगी।

यह उल्लेखनीय है कि कोई भी समाज सदा के लिए रूढ़ नहीं रह सकता है क्योंकि परिवर्तन एक शाश्वत नियम है।[17] इसलिये आदिवासी समुदाय की महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है। बिहार, झारखंड, उड़ीसा, मध्यप्रदेश की आदिवासी महिलाओं में इस परिवर्तन को स्वत: देखा जा सकता है। इन्होंने जीवन के प्रति नये नजरिये को स्वीकार करने की कोशिश की हैं। इनके जीवन स्तर, व्यवहार, प्रवृति एवं अन्य मनोवैज्ञानिक चेतना जैसे इच्छा, अनुभव, विचार आदि में यह परिवतन सहज अवलोक्य है।[18]

जनजातिय क्षेत्रों में औद्योगिकरण की प्रक्रिया ने स्वाभाविक रूप से शहरीकरण को जन्म दिया। शहरीकरण एवं औद्योगिकरण ने इस क्षेत्र से बाहर के प्रशिक्षित श्रम-संधाधन को आकर्षिक किया।[19] इतना ही नहीं अप्रशिक्षित श्रमिकों के रूप में आदिवासी महिलाओं एवं पुरुषों के लिए भी रोजगार के नये अवसर को औद्योगिकरण ने जन्म दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बाहरी समुदायों एवं

स्थानीय आदिवासी समुदायों के बीच परस्पर सम्पर्क दृढ़ हुआ। आदिवासियों ने बाहरी संस्कृति के मुख्य प्रगतिशील तत्वों को स्वेच्छा से एवं स्वाभाविक रूप से अंगीकार किया है।[20]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि आज औद्योगिकरण, नगरीकरण केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा किये जा रहे प्रयासों के परिणामस्वरूप मुंडा जनजातीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी हैं। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय तथ्य है कि यह परिवर्तन सम्पूर्ण जनजातीय ग्रामीण समुदाय में एक समान नहीं है। ऐसे गाँवों में जो नगरों अथवा औद्योगिक केन्द्रों के अधिक समीप है, उन गाँवों की अपेक्षा अधिक परिवर्तन हुये हैं, जो नगरों अथवा औद्योगिक केन्द्रों से दूरी है। एक ही जनजातीय गाँव में औद्योगिकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया ने उन व्यक्तियों के जीवन को अधिक व्यापक रूप से प्रभावित किया है, जो नगरों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में है अथवा किसी औद्योगिक केन्द्र में कार्यरत है। शेष मुंडा ग्रामीण जनजातियों में आज भी प्रथागत जीवन शैली के अभिलक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

आज भी आदिवासी महिलायें आर्थिक रूप से मजबूत स्थिति में नहीं है। कार्य क्षेत्र में लैंगिक भूमिका के प्रभावशाली रूप से काम करने के कारण वे उत्पादक कार्यों से मरहूम है। साथ ही सुरक्षात्मक कानूनों का क्रियान्वयन भी सुचारु रूप से नहीं होने से महिला कामगारों को काम के बदले उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है। बिचौलियों के द्वारा भी उनका आर्थिक शोषण होता है। पुनः सरकार की योजनाओं में भी ढांचागत दोष हैं। सरकारी की आदिवासी नीति भी दोषपूर्ण है।

आज मुद्रास्फीति की दर भी तीव्र स्तर पर है। इससे इन्हें ही सबसे ज्यादा कष्ट होता है क्योंकि अधिकांश आदिवासी महिलायें असंगठित क्षेत्रों में काम करती है जहाँ मुद्रास्फीति मापांक की अवधारणा नहीं है। इससे उन्हें इसके अनुरूप भत्ता नहीं मिलता है। इनके बचत का स्तर प्रभावित होता है और वे गरीबी के दुष्चक्र से नहीं निकल पाती है। इसलिए मुद्रास्फीति की वृद्धि दर पर कठोर नियंत्रण की आवश्यकता है। उसी प्रकार लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और कारगर बनाने की आवश्यकता है। सरकार को इसके अलावा आदिवासियों के लिए अन्य वनोत्पाद आधारित लघु उद्योगों को प्रसारित करने पर जोर देना होगा। इन विविधोपायों से मुंडा महिलाओं के वर्तमान जीवन दशा में तो सुधार होगा ही, सुन्दर भविष्य की संभावना भी बलवती होगी।

हालांकि वर्तमान सरकार विगत् दो वर्षों में समावेशी विकास का आगाज ही कर पायी है। अभी बहुत कुछ होना बाकी है। आवश्यकता इस बात की है कि समावेशी वित्तीय विकास मॉडल मुंडा महिलाओं के संदर्भ में अनुकूल हो। जनजातिय महिला विकास के लिए भारतीय मानक, पद्धति और प्रक्रिया गढ़े जाएँ तभी यह सार्थक और सफल सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची :

1. यू. एम. राव, ट्राइबल वीमेन इन इंडिया, एबीडी दिल्ली 2006, पृ. 52
2. टारगेटिंग द जेंडर, गर्ल्सा एजुकेशन इन झारखंड, प्रेजेंटेशन बाई वीमेन कमीशन, 154 अक्टूबर, 2003, राँची
3. झारखंड, डाटा, हाइलाईट्स व सेडुल्ड ट्राइब्स, सेशन 2001, स्रोत रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, दिल्ली
4. झारखण्ड क्षेत्र के लिए 1998-99 में यह सर्वे किया गया था (स्रोत डा. सुषमा सिनहा-बिहार में जनजातीय महिलाओं का सशक्तिकरण, पृ. 63)
5. भारत, पृ. 792-793
6. भारत, : 2005, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, पृ. 768

7. वही, पृ. 767
8. वही
9. नदीम हसनैन, ट्राइबल इंडिया, 6वां संस्करण, नई दिल्ली, 2005, पृ. 131
10. स्वाधीन, श्री झौर भूमिकल्या जो महिला सशक्तिकरण के लिए आदिवासी क्षेत्र में कार्यशील हैं, भारत सरकार के सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत निर्बंधित है।
11. स्रोत, http: knews. webIndia 123. com) p. 18, 2007.
12. वही
13. योजना-अगस्त, 2015, पृत्र 15 (श्रीपद मोतराम- भारत का समग्र विकास : अवधारणाएँ और साक्ष्य)
14. वही, पृ. 56
15. वही, पृ. 34
16. वही, पृ. 57
17. सुषमा सहाय प्रसाद, ट्राइबल वीमेन लेबरर्स : आस्पेक्ट्स ऑफ इकोनॉमिक एण्ड फिजिकल एक्स., ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1988, पृ. 143
18. वही
19. शशांक शेखर सिन्हा, आदिवासी वीमेन इन ट्राजिशन: रिविजिटिंग झारखण्ड (1880 से 1980), शक्ति काम व विश्वभमय पति (सं.), एक्सप्लोरिंग जेंडर इक्वेंश्स : कोलोमिनयल एंड पोस्टकोलोनियल इंडिया, नहरू मेमोरियल म्यूजिम एंड लाइब्रेरी, नई दिल्ली, 2005, पृ. 179
20. नदीम हसनैन, पूर्वोक्त, 2007

और गाँधीजी बोल उठे – 'चम्पारण की लड़ाई फतह हो गई!'

विनीता कुमारी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर, नेट यू.जी.सी., इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारत में असफल किन्तु 'दक्षिण अफ्रीका में एक सफल वकील से मानवतावादी वकील और फिर मानवीय मूल्यों के रक्षक बनने की कहानी मोहनदास करमचंद गाँधी के महात्मा बनने की कहानी है। दक्षिण अफ्रीका में वे बेजुबान भारतीय कूलियों के रक्षार्थ अपना विलक्षण हथियार 'सत्याग्रह' लेकर वहां की शक्तिशाली श्वेत सरकार से उलझ गये। दक्षिण अफीका प्रवास में अपने सत्याग्रह तकनीक से वहाँ के वैध शासक जनरल स्मट्स को चमत्कृत करके और वहाँ बसे भारतीयों को जीवन जीने योग्य नागरिक अधिकार की प्रारंभिक किश्त दिलाकर गाँधीजी ने सन् 1915 ई0 में भारत भूमि पर हमेशा के लिए वापसी की। भारत भूमि पर उन्हें अगले 30 वर्षों तक उसी श्वेत शासनतंत्र से भारत के बेजुबान जनता के लिए संघर्ष में उतरना था, ऐसा तब वे नहीं जानते थे। अपने गुरु (गोपाल कृष्ण गोखले) के कहने पर भारतीय राजनीति को पार्श्व से समझ चुके गाँधीजी ने अगले एक वर्ष तक देश का भ्रमण किया। सन् 1916 ई0. में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधीजी ने भाग लिया और वही एक कृशकाय भारतीय कृषक राजकुमार शुक्ल ने उन्हें अपने गृह जिले (चम्पारण) में चलकर वहाँ के किसानों की दुर्दशा देखने के लिए आग्रह किया। गाँधीजी न तो चम्पारण से परिचित थे नही राजकुमार शुक्ल से। किन्तु वे किसान की दृढ़ता और गाथा से द्रवित हो उठे।

राजकुमार शुक्ल ने उन्हें चम्पारण आकर वहाँ के किसानों की समस्या, जो बेतियाराज और निलेह ठीकेदारों की मिलीभगत से अतिशय कष्ट झेल रहे थे, के निदान के लिए कुछ करने का आग्रह किया।

वैसे गाँधीजी ने उन्हें धैर्यपूर्वक सुना किन्तु कांग्रेस में उसपर प्रस्ताव रखने से स्वयं को अलग रखते हुए उन्होंने कहा, 'जब तक में अपनी आँखों उनकी दशा देख न लूं, तब तक कोई विचार प्रकट नहीं कर सकता। आप कांग्रेस में प्रस्ताव रखें लेकिन अभी मुझें अलग ही रहने दे।''[1] तब गाँधीजी को कहा मालूम था कि उस कृषक के निरंतर आग्रह को वे टाल नहीं पायेंगे और अप्रैल, 1917 में जिस चम्पारण में वे आर्थिक मुद्दे पर ब्रिटिश सत्ता से उलझेंगे वही चम्पारण समस्त भारत से उनका परिचय करा देगा। गाँधीजी ने निहित स्वार्थों और सत्ता के गठबंधन पर करारा प्रहार करके चम्पारण से भारत में सत्याग्रह का बिगुल फूंका जिसने आजादी की लड़ाई की दिशा ही बदल दी। राजकुमार शुक्ल के दृढ़ निश्चय ने गाँधीजी के भारत में पहले सत्याग्रह को सफल बनाया।

भारत में यूरोपीय निलहों के भारतीय कृषकों पर अत्याचार और अमानवीय कृत्यों का लंबा इतिहास था। बेतिया राज के शाह खर्चों ने उन्हें इंग्लैण्ड का कर्जदार बना दिया और कर्ज की शर्त्तों को पूरा करने के लिए महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह ने बेतिया राज के 417 गाँवों को 1883 ई0. में 37 वर्षों के लिए निलहों को स्थायी पट्टा पर दे दिया।[2] यहीं से जन्म हुआ चम्पारण के कृषकों पर थोपी हुई 'तीन कठिया व्यवस्था।'

चम्पारण के किसान अपनी ही जमीन के 3/20 हिस्सें में नील की खेती उसके असल मलिकों के लिए करने के कानून से बंधे हुए थे। यह नील उन्हें निलहे गोरों की नील की कोठियों को देना पड़ता था। इस प्रथा को वहाँ 'तीन कठिया' कहा जाता था। बीस कट्ठे का ऊपजाऊ जमीन पर किसान नील उगाने के लिए कानूनन बाध्य था। यह व्यवस्था अत्यंत निंदनीय थी। इस व्यवस्था ने चम्पारण में गरीबी, उत्पीड़न, अमानवीय व्यवहार एवं निलहों के अत्याचार को बढ़ाया। निलहों के अत्याचार से तंग आकर कृषकों ने चम्पारण से पलायन कर दिया बहुतों ने न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, याचिकाएं, भेजी और सन् 1907-08 में विद्रोह भी किया जिसे सरकार ने बेरहमी से दबा दिया। समाचारपत्रों में भी कृषकों पर होने वाले अत्याचारों की गुंज सुनाई देने लगी। बिहार से प्रकाशित होने वाले पत्रों में इस विषय पर लेख छपे, जैसे- बिहारी और मिथिला मिहिर। प्रताप (कानपुर), अभ्युदय (इलाहाबाद), भारत मित्र (दैनिक : कलकत्ता), अमृत बाजार पत्रिका (कलकत्ता), हितवादी (कलकत्ता) इत्यादि पत्रों ने कृषकों का पक्ष लिया।[3]

बेतियाराज और निलहे ठीकेदारों के चक्रव्यूह में फंसे चम्पारण के किसानों को निजात दिलाने के लिए अप्रैल, 1917 में चम्पारण (मोतीहारी) में गाँधीजी का पर्दापण हुआ। गाँधीजी की यात्रा का उद्देश्य इलाके में फैल जाने से लोग उनसे मिलने को बेचैन हो उठे।

गाँधीजी के अहिंसक प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि चम्पारण की जनता को निलहे गोरों के अत्याचारी चंगुल से छूटकारा मिला और चम्पारण से तीन कठिया की कलंकिल व्यवस्था समाप्त हुई।

जर्मनी में कृत्रिम नील बन जाने और निलहे गोरों को इसकी जानकारी हो जाने पर भी उन्होंने किसानों का शोषण करने के लिए एकरारनामें पर लिखवा लिया था कि इस व्यवस्था से छूटकारा पाने के लिए वे मुआवजा देंगे।[4] किन्तु किसानों को जब पता चला कि अंग्रेजों ने उनपर दोहरा प्रहार किया है तो वे मुआवजे की रकम वापसी की मांग पर अड़ गये।[5]

गाँधीजी ने चम्पारण पहुँचकर पहले विरोधी पक्ष से मिलना चाहा जिन्होंने मिलने से इन्कार किया। उसके उपरांत वे तिरहुत डिविजन के कमिशनर से मिले। उसने गाँधीजी को आगे बढ़े बिना तिरहुत छोड़ देने का आदेश दिया। गाँधीजी ने तिरहुत नहीं छोड़ने का मन बना लिया था और वे मोतीहारी पहुँच गये। वहाँ उन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि वे चम्पारण छोड़कर चले जाये। गाँधीजी ने आज्ञा प्राप्ति की रसीद पर लिख दिया कि वह उसकी अवज्ञा करेंगे। इस पर उन्हें अदालत में हाजिर होने का सम्मन मिला। गाँधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद को अपने मित्रों के साथ आ जाने का बुलावा भेजा। गाँधीजी ने सत्याग्रह, कानून की अवज्ञा के साथ-साथ अपना अपराध स्वीकार कर सरकार को चक्कर में डाल दिया। सरकार ने उनसे दो घंटें के लिए जमानत मांगा।[6] परंतु गाँधीजी ने देने से इंकार किया। मैजिस्ट्रेट को बिना जमानत के ही उन्हें छोड़ना पड़ा। दो घंटे की जमानत न देने वाले गाँधीजी के मुकदमें की सुनवाई के लिए जब अदालत दोबारा बैठी तब मैजिस्ट्रेट ने कहा कि फैसला कुछ दिनों बाद होगा। राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, मौलाना मजरुल हक इत्यादि कई वकील वहाँ पहुँचे।

गाँधीजी ने पूछा कि अगर मैं जेल चला जाऊ तो आप लोग क्या करेंगे? उन्होंने जवाब दिया कि वापस चले जायेंगे।

गाँधीजी ने पूछा - ''तब किसानों पर जो अन्याय हो रहा है उसका क्या होगा?''[7] वकीलों ने आपस में सलाह करके जवाब दिया कि वे भी उनके पीछे जेल जाने को तैयार है। लोग क्षण भर को सत्ता के दण्ड का भय छोड़कर अपने नये मित्र के प्रेम की सत्ता के अधीन हो गये। गाँधीजी बोले - 'चम्पारण की लड़ाई फतह हो गई।[8]

गाँधीजी के विरुद्ध मुकदमा वापस हो गया और मैजिस्ट्रेट ने उन्हें कमीशन बैठाने का आश्वासन दिया। जून, 1917 में गाँधीजी को बिहार के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर एडवर्ड गेट ने बुलाया और कहा कि वे स्वयं एक जाँच समिति नियुक्त करना चाहते है; जिसमें गाँधीजी को एक सदस्य नियुक्त करना चाहते है। सरकारी जांच में निलहे गोरों के विरुद्ध गवाहियों का पुलिंदा जमा हो गया और कमीशन ने किसानों की सारी शिकायतों को सही ठहराया। कमीशन ने निलहे गोरों ने किसानों से जो रकम अनुचित तरीके से वसूल की थी उसका कुछ अंश लौटाने और 'तीन कठिया' के कानून को रद्द करने की सिफारिश की। निलहे गोरों ने 25 प्रतिशत लौटाने का प्रस्ताव रखा।[9] गाँधीजी ने विरोधी पक्ष से सुलह सफाई की तकनीक के आधार पर यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार गाँधीजी के सत्याग्रह तकनीक से अमानवीय प्रथा की समाप्ति हुई। वहाँ के किसानों को नील के अभिशाप से मुक्ति मिली।

गाँधीजी द्वारा भारत भूमि पर सत्याग्रह का यह पहला सफल प्रयोग था। इससे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक नयी दिशा बोध, नया नेतृत्व और अहिंसा और सत्य पर आधारित एक नई तकनीक प्राप्त हुई। जिसे अपनाकर बिना रक्तपात के देश ने महात्मा गाँधी की अगुआई में स्वतंत्रता प्राप्त की।

चम्पारण सत्याग्रह का भारत की आजादी की लड़ाई और गाँधीजी की जिंदगी में क्या स्थान रहा यह गाँधीजी ने स्वयं अभिव्यक्त किया है।

गाँधीजी के शब्दों में ''मैनें वहां ईश्वर का अहिंसा का और सत्य का साक्षात्कार किया।''[10] यही से भारतीय राजनीति में गाँधी युग का आरंभ हुआ।

लूई फिशर के शब्दों में ''जब मैं 1942 ई0. में सेवाग्राम आश्रम में गाँधीजी से पहली बार मिला तो उन्होंने मुझसें कहा; मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि वह कौन-सी घटना थी, जिसके कारण मैनें अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर जोर देने का निश्चय किया। यह घटना 1917 ई0. की है''।[11]

गाँधीजी के लिए कृषकों के मसले को सुलझा लेना भर ही कफी नहीं था। जब तक जाँच चली गाँधीजी वहीं रहे और उस इलाके की दूसरी सामाजिक समस्याओं ने उन्हें कम प्रभावित नहीं किया। उन्होंने देखा कि उस इलाके की सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में शिक्षा और स्वच्छता के प्रति सामूहिक चेतना का सर्वथा अभाव था। छः गाँवों में प्राथमिक विद्यालय खोले गये। स्वास्थ्य की बदहाली दूर करने के लिए एक चिकित्सक तैयार किया।

चम्पारण की घटना ने गाँधी और देश दोनों की धारा बदल दी। उन्होंने कहा : 'जो कुछ मैंने किया वह बहुत मामूली चीज थी। मैंने घोषणा कर दी कि मेरे ही देश में अंग्रेज लोग मुझपर हुक्म नहीं चला सकते''।[12]

गाँधीजी ने इस पूरे प्रकरण में अत्यन्त सहज भाव से अपने उस मानवीय कर्त्तव्य का निर्वहन किया, जो उन्होंने अपने अफ्रीका प्रवास के दौरान निर्धारित कर लिया था 'प्रत्येक आँख के आँसू

पोंछना।' किन्तु भारत में जो राजनीति उस समय प्रचलित थी उससे यह बिल्कुल भिन्न प्रकृति की थी। गाँधीजी आमजनों की समस्या को लेकर ब्रिटिश साम्राज्य से उलझ पड़े। यही वह आरंभ बिंदु था जिसमें गाँधी के स्वराज्य के मानवीय पहलूओं की परते खुलनी शुरु हुई। इसी प्रकरण से पता चल गया कि गाँधीजी की राजनीति आम जनता के सरोकार के लिए होने वाली थी। वे बेजुबान भारतीयों का पक्ष लेकर ब्रिटिश नौकरशाही से संघर्ष में उतरे।

गाँधीजी ने इस असमान संघर्ष में जनता की एकता के महत्व को उजागर कर दिया। साथ ही यह भी साबित कर दिया कि पक्ष यदि न्याय संगत है ते भयभीत होने की जरुरत नहीं और युद्ध हमेशा अपने संसाधनों की सहायता से ही जीती जाती है।

चम्पारण ने वह संकेत दे दिया कि गाँधीजी आने वाले समय में भारत में क्या करने वाले थे। 'He had forced the mighty Bihar government to apply remedies to long neglected grievances".[13]

यह एक व्यवहारिक उपलब्धि थी जो बिना किसी हिंसा के हासिल कर ली गयी थी। भारतीय राजनीतिक मंच से अपने वक्तश्त्व कला का परिचय देने वाले नेताओं और बड़े-बड़े प्रस्तावों को पारित करने वाले काग्रेस के अग्रणी नेताओं के लिए यह एक सबक बना। गाँधीजी ने मौके पर किसानों की समस्या की छानबीन करके, एक मुर्खतापूर्ण आदेश की अवज्ञा करके और जेल भुगतने की तत्परता दिखाकर एक नया दृश्टांत रख दिया।

भारत का युवा वर्ग जो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रियता और ऊर्जा तो चाहता था किन्तु आतंक और हिंसा के रास्ते पर नही चलना चाहता था, उनके लिए 'चम्पारण सत्याग्रह' एक नये तरह की राजनीति का उदाहरण बनकर सामने आया। यह भारतीय राजनीति में एक नये हवा के झोंके की तरह था। अब उनके सामने एक नये तरह का नेता था जिसके पास अपने प्रभावशाली हथियार (सत्याग्रह) और गैर पारंपरिक छवि दोनों ही थी। दो व्यक्ति विशेष रुप से प्रभावित हुए जो अगले तीस वर्षों तक गाँधीजी के प्रमुख सिपहसालार बने रहे। ये थे जवाहर लाल नेहरु और वल्लभ भाई पटेल। इसके अलावे इसी आंदोलन से उनके साथ जुड़े डॉ० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई में आजीवन गाँधीजी के साथ उनके हर सत्याग्रह में सहयोगी की भूमिका में रहे।

चम्पारण सत्याग्रह के दौरान गाँधीजी के सहयोगियों में प्रमुख थे : श्री राजकुमार शुक्ल, मौलान मजरुल हक, ब्रज कियोर प्रसाद, गया प्रसाद, हसन इमाम, सच्चिदानंद सिन्हा, पीर मुहम्मद मुनिस और राजेन्द्र प्रसाद।

चम्परण विजय ने गाँधीजी को अपने गृह राज्य (गुजरात) में भी लोकप्रियता दिलाई और वे गुजरात सभा के अध्यक्ष बने।[14] यह गुजरात की एक निरीह संस्था थी जो सरकार को प्रस्ताव और ज्ञापन भेजने का कार्य करती थी। इसी समय वल्लभ भाई पटेल इसके सचिव बने जो उस समय म्युनिसिपल कांसिलर थे। वे चम्पारण आंदोलन से पूर्व गाँधीजी से असहमत थे अब गाँधीजी से पूर्ण सहमत हो गये।

बिहार के इस हिस्सें में गाँधीजी के आगमन और उनके भारत में पहले सत्याग्रह आंदोलन की सफलता; जिसमें बड़ी संख्या में लोगों ने अपनी खुशी से भाग लिया, ने यह सिद्ध कर दिया कि जनता हर उस सच्ची पुकार पर निकल पड़ती है जिसमें उन्हें अपनी समस्याओं के समाधान का विश्वास होता है।

संदर्भ सूची : (REFERENCE)

1. चौबे, डॉ0 बादशाह, बेतियाराज और चम्पारण के किसान, इम्प्रेशन पब्लिकेशन, पटना, 2011, पृष्ठ-159.
2. वहीं, पृष्ठ - 100
3. DATTA, DR. KALI KINKAR, GANDHIJI IN BIHAR, Published by Government Bihar, 1969, पृष्ठ - 3
4. फिशर लुई, गाँधी की कहानी, हिन्दी अनुवाद : चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय) सत्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 1954, नई दिल्ली, पृष्ठ - 86.
5. वहीं,
6. वहीं, पृष्ठ - 87
7. वहीं
8. वहीं
9. वहीं, पृष्ठ - 88
10. गाँधी, मोहनदास करमचंद, मेरी जीवन कथा (हिन्दी अनुवाद : भारतन कुमारप्पा) नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पांचवा पुनर्मुद्रण : 2014, पृष्ठ - 78
11. फिशर, लुई (पूर्वोक्त) पृष्ठ - 85
12. वहीं, पृष्ठ - 89
13. MOON, PENDEREL, GANDHI AND MODERN INDIA THE ENGLISH UNIVERSITIES PRESS, LONDON, 1968, पृष्ठ - 70
14. वहीं, पृष्ठ - 71

भारत-बर्मा संबंध (1900-1923)

इन्द्रकान्त

शोध छात्र, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण) बिहार

क्रान्तिकारिता का संबंध

बर्मा और भारत की राजनीति में क्रान्तिकारिता के संदर्भ में बर्मा और भारतीयों की संयुक्त भूमिका रही है । 21 अप्रैल 1913 में ओरेगोन (अमेरीका) में एक ''पैसिफिक कास्ट हिन्दुस्तान एसोशियेशन'' की स्थापना की गई थी ।[1] इसका उद्देश्य भारत को ब्रिटिश सत्ता से मुक्त कराना था । वे सशस्त्र विद्रोह और प्रतिरोध में विश्वास रखते थे। इनकी एक पत्रिका भी उस वर्ष नवम्बर से निकलने लगी जो साप्ताहिक थी। इस का नाम था 'गदर' और यह उर्दू भाषा में लिखी जाती थी। सैन फ्रांसिस्को के जुगान्तर आश्रम से यह निकलता था। इस पत्रिका के माध्यम से 1913 में सैन फ्रांसिस्को में ही स्थापित हिन्दुस्तान गदर पार्टी के भी क्रान्तिकारी विचार प्रसारित होने लगे थे। गदर पार्टी के संस्थापक और महासचिव थे लाला हरदयाल। उन्होंने 'गदर' का प्रचार शंघाई, मलय, स्याम, बर्मा, फिलीपीन एवं डच ईस्ट इण्डिज में भी किया। इसका गुजराती संस्करण खेमचंद दामजी निकालते थे जो अमेरिका में आने के पूर्व बर्मा में रह चुके थे।[2]

बर्मा में 'गदर' पत्रिका के अतिरिक्त दूसरे पत्र भी आने लगे। 'जेहान-इ-इस्लाम' एक ऐसा ही पत्र था। यह 1914 के मई में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। इसका प्रकाशन अंकारा (कस्टेंटिनोपुल) से होता था। इसमें दक्षिण पूर्वी एशिया के मुसलमानों में राष्ट्रवाद जागृत करने के लिए प्रेरक लेख छपते थे। यह अरबी, तुर्की और हिन्दी भाषा में छपती थी जिसे रंगून के मुसलमान बड़े चाव से पढ़ा करते थे।

रंगून में पंजाब के बहुत सारे मुसलमान रहा करते थे। इनमें एक थे अबू सैय्यद जो पहले शिक्षक थे और बाद में क्लर्क हो गए। 1912 में वे रंगून छोड़कर मिस्र आ गये और वहाँ से उन्होंने 'जेहान-इ-इस्लाम' का उर्दू संस्करण निकालना आरंभ किया। इसमें ईसाई धर्म की घोर निन्दा रहती थी। 1914 के अगस्त में इस पत्रिका पर अंग्रेज सरकार ने 'सी कस्टम ऐक्ट' के अन्तर्गत प्रतिबंध लगा दिया। इन अबू सैय्यद से हरदयाल का प्रगाढ़ नैकट्य था। सैय्यद ने यंग तुर्क पार्टी के तेवफिक बे को 1913 में रंगून भेजा था। तेवफिक ने वहाँ एक व्यापारी अहमद मुल्ला दाउद को रंगून के तुर्क कौंसल का पद प्रदान किया। इस्लामी एकता के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास में बर्मा के मुसलमानों को भी जोड़ा जा रहा था और उनसे आशा की जा रही थी कि वे अंग्रेजों की सत्ता का विरोध करें। इन संगठनकर्त्ताओं ने एक अन्य प्रमुख नाम नेयाजी बे का था।[3] 1914 के अगस्त में नेयाजी ने बैंकाक में संगठन का काम आरंभ किया पर स्याम की सरकार ने उसकी मनाही कर दी। संगठन के निर्देश में बर्मा और स्याम के बीच 1914 में गुप्त सुरंगें पाकोह, उत्तरी स्याम के पास, बनाई जा रही थी ताकि बर्मा से हथियार मंगाये जा सके।[4]

भारत के बंगाल में विद्रोह करवाने के लिए जर्मनी बहुत अधिक प्रयासरत था। 'एन एकाउण्ट ऑफ दि रिवोल्यूशनरी औरगनाइजेशन्स इन बेंगाल अदर दैन दि ढाका अनुशीलन समिति अप टू 1915' नामक एक गोपनीय विवरण में[5] यह विवृत है कि किसी जर्मन व्यक्ति ने विद्रोह फैलाने के लिए गुप्त रूप से बंगाल मे शस्त्रास्त्र और धन लाने की कोशिश की थी। 1917 में पता चला कि इस षडयंत्रकारी का नाम विन्सेण्ट क्राफ्ट था। पर अंग्रेजों ने उसे उसके पूर्व ही पकड़ लिया था जिससे कलकत्ते में भयंकर रक्तपात होना संभव नहीं हो सका। पकड़े जाने पर षडयंत्रकारी ने भेद खोला कि योजना बर्मा को केन्द्र बनाकर जावा के बटाविया, स्याम के बैंगकोक और एशिया में विद्रोह करवाने की थी तथा इस उद्देश्य से रंगून में बहुत मात्रा में हथियार एवं विस्फोटक सामग्री इकट्ठी कर ली गयी थी । बर्मा में लगभग पांच हजार रायफल पहुँचाये जा चुके थे । वाशिंगटन के जर्मन दूतावास के सीक्रेट सर्विस चीफ फ्रांजवन पापेन को आदेश दिया गया था कि वह अमेरिका के बाजार से दस-बीस हजार रायफल एवं विस्फोटक भारत भेजे।

पर भारत भेजने के क्रम में अंग्रेजों की विरोधी सतर्कता बहुत आड़े आयी । एक क्रान्तिकारी नरेन्द्र नाथ चटर्जी (एम०एन० राय के नाम से अधिक प्रसिद्ध) के परामर्श पर अंतत: हथियारों को बंगाल के सुन्दरवन में छिपाने का निर्णय हुआ । किन्तु वह भी सुरक्षित नहीं पाया गया तो चटगांव के पास हटिया नामक कस्बे में भेजने की योजना बनी। वहाँ जतीन्द्र नाथ मुखर्जी (बाघा जतिन नाम से अधिक प्रसिद्ध) शस्त्र-सामग्री की प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी के भेद खोल देने पर अंग्रेज सतर्क हो गये, जतीन्द्र नाथ और पुलिस में गोलीबारी हो गई जिसमें वह वीर क्रान्तिकारी मारे गये।

जर्मनी से भारत आने के दो मुख्य मार्ग थे। इनमें एक फारस और अफगानिस्तान होकर आता था और दूसरा रंगून होकर कलकत्ता पहुँचता था। अंग्रेजों ने इन दोनों मार्गों पर अपनी निगरानी कड़ी कर दी। ऊपरी बर्मा से भी भारत में घुसा जा सकता था तो वहाँ भी सैन्य गश्त बढा दी गयी।

1917 के उपरान्त स्याम के अंग्रेजों के पक्ष में हो लेने के बाद जर्मनी ने भारत में विद्रोह फैलाने के लिए धन और हथियार भेजने की नीति त्याग दी। अनिल बरन गांगुली के एक विवरण[6] से ज्ञात होता है कि भारतीयों ने सहयोग के नाम पर जर्मनी से आई राशि में बहुत अधिक घपला किया था, जिससे जर्मनी का हौसला टूट गया। ऐसी ही बेईमानों का एक मुखिया था डॉ० चंद्रकांत चक्रवर्ती।

पर इंग्लैण्ड के विरूद्ध जर्मनी का साहित्यिक प्रचार चलता ही रहा। जर्मनी ने इसके लिए बौद्ध धर्म के अध्ययन को एक हथियार बनाया। इससे लाभ यह था कि इससे बर्मा समेत दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों के अतिरिक्त भारत में भी जर्मनी के प्रति सद्भाव विकसित हो सकता था। जर्मनी द्वारा किये गये बौद्ध धर्म के अध्ययनों से ऐसा हुआ भी।

मण्डाले-षडयंत्र पर मुकदमा के सिलसिले में यह पता चला कि लाला हरदयाल, रास बिहारी बोस और बरकुतल्ला ने घनिष्ट सम्पर्क कर विद्रोह की योजना बनायी थी। इसमें शामिल सोहन लाल पाठक और हसन खान सिंगापुर से भागकर बर्मा में चले आये थे। यहाँ इन दोनों ने डफरीन स्ट्रीट में अपना राजनीतिक केन्द्र बनाया।[7] पर पाठक पकड़े गये और उन्हें मृत्युदंड मिला। शिवदयाल कपूर नामक एक सिक्ख जर्मनी के कहने पर स्याम से बर्मा आने वाले क्रान्तिकारियों को (जर्मनी द्वारा भेजे गये) धन दिया करते थे। एक अन्य नाम इस संदर्भ में बर्मा में रह रहे मुर्तजा हुस्सैन उर्फ मूलचन्द का था। हुस्सैन ने कानपुर में, जिलादार के पद पर रहकर 2000 रूपयों का गबन किया था, पर किसी प्रकार वह रंगून चला आया था और वहाँ क्रांतिकारी आतंकवाद में सम्मिलित हो गया। कालान्तर में वह भी पकड़ा गया। पता चला कि बकरीद के दिन उसके लोग रंगून में क्रान्ति करने वाले थे।[8]

बर्मा में रहने वाले अफगान अंग्रेजों के सत्ता के विरोधी थे, अतएव वे वहाँ के 'गदर' समूहों को सहयोग देते थे। इनमें एक मसीदी नामक अफगानी, शस्त्रास्त्र एवं विस्फोटक सामग्रियों का आयात-निर्यात करता था।

गदर पार्टी में सिक्खों की बहुत बड़ी भूमिका रहती थी। जर्मनी ने सिक्खों को बहुत अधिक प्रोत्साहित भी किया था। जब ऊपरी बर्मा को अंग्रेजों ने जीता तो वहाँ रेलवे लाईन बिछाना शुरू कर दिया तो इस काम में बहुत से सिक्ख भी लगाये गये थे। भूपेन्द्र नाथ दत्त के अनुसार[9] इन सिक्खों में बहुत से सिक्ख जर्मनी से मिले हुए थे। इन्होंने भारतीय क्रान्तिकारियों को स्याम से बर्मा आने में बहुत सहायता की थी। सिक्ख रेल कम्पनियों के अतिरिक्त पुलिस विभाग, तेल कंपनियों आदि में भी नौकरी कर रहे थे। जेल विभाग के एक कर्मचारी एस० गंगासिंह एवं उसके साथियों के प्रयास से मेमियो में 'खालसा दिवान' स्थापित हुआ।[10] भारतीय विद्रोह मे सिक्खों के सहयोग का सबसे बड़ा उदाहरण[11] उनके द्वारा सुभाष चंद्र बोस को दिया गया समर्थन था।

सिक्खों, पंजाबियों एवं पठानों के सम्मिलित प्रयास से संभावित किसी भी विद्रोह से बर्मा के अंग्रेज अधिकारी सदैव आशंकित रहते थे। उनकी चिन्ता चीन-बर्मा एवं स्याम-बर्मा की सीमा की सुरक्षा को लेकर भी रहती थी क्योंकि विद्रोही उनका उपयोग करते थे। इसी के लिए 7 करोड़ के खर्च से चटगांव-आकियाव-मुन्हिला नामक 450 मील लम्बा रेलमार्ग, 605 करोड़ के खर्च से मणिपुर रेलमार्ग (385 मील लम्बा) और हुकोंग वैली रूट (चीन से संबंधित) पर रेलमार्ग (284 मील लम्बा तथा 30 करोड़ से बनने वाले) बनाने की योजनाएँ बनी थी।[12]

बर्मा के म्यावादी में जून 1915 में 'गदर' का बहुत सा साहित्य अधिकारियों द्वारा पकड़ा गया था। इसमें रंगून के अली अहमद और फयम अली को संबंधित दो पत्र भी सम्मिलित थे। इससे यह प्रमाणित हो गया कि बर्मा के मुसलमानों ने 'गदर' की योजनाओं में बहुत सहयोग दिया था।

बर्मा-स्याम सीमा विद्रोह मार्ग बन गया था। ब्रिटिश पदाधिकारियों ने अन्य उपायों के साथ एक उपाय स्याम के पुलिस अधिकारियों को घूस देने का भी अपनाया ताकि वे अधिकारी क्रान्तिकारियों को बर्मा में नहीं आने दे। 15.07.1915 की एक गोपनीय रिपोर्ट में एस०आर० हिग्नेल ने ऐसी ही मांग की थी[13] ताकि विद्रोही और विद्रोह-सामग्री दोनों को स्याम में ही रोक लिया जा सके।

बर्मा में अपनी मिलिट्री पुलिस के संगठन पर भी अंग्रेज अधिकारियों की चिन्तातुर आंखे पड़ी। इस संगठन में भी विद्रोह फैलाने की कोशिशें हो रही थी। 29.06.1915 के अपने एक गोपनीय रिपोर्ट में सी०आर० क्वीवलैण्ड ने स्थिति की गंभीरता सूचित की थी।[14] वस्तुतः बर्मा की इस सेना में अधिक संख्या में विद्रोह से प्रभावित हो सकने वालों की थी। द्रष्टव्य है एक संबंधित चार्ट -

बर्मा मिलिट्री पुलिस में कार्यरत[15]

हिन्दुस्तानी मुसलमान	1212
पंजाबी मुसलमान	2646
सिक्ख	3942
हिन्दुस्तानी हिन्दू	2701
पंजाबी हिन्दू	104
डोगरा	246

गोरखा	2669
गढवाली	350
कुमायूनी	457
मरहट्टा	97
आसामी जोरवन	28
करेन	712
काछिन	592
शान	51

रिपोर्ट में कहा गया कि पूरी संख्या में की आधी संख्या के लोग कभी भी धोखा दे सकते हैं। इनमे मुसलमानों और सिक्खों से विशेष चिन्ता थी।

इस प्रकार बर्मा और भारत की राजनीति में हिन्दुओं के अलावे जर्मनी, अफगानों, सिक्खों एवं भारत के मुसलमानों की भी एक विशेष भूमिका थी।

संदर्भ ग्रंथ

1. Kalyan Kumar Banerjee, *Indian Freedom Movement: Revolution in America*, Calcutta, Jijnasa, 1969, P–9.
2. Sedition Committee Report, P–120.
3. Arun Bose, 1984, *Indian Revolutionaries in Thailand till 1941*, People Publishing House, P–132.
4. Ibid, P–134.
5. File No. VA-43 of 1917; Nixon Report, Calcutta (State Archives, W. Bengal).
6. Thomas G. Fraser, *Germany and Indian Revolution 1914-18*, Journal of Contemporary History, Vol. XII, 255-272.
7. इनकी स्मृति आदर से की जाती है। इन्होंने स्याम-बर्मा की जर्मन योजना से संबंधित अपने संस्मरण लिखे हैं।
8. Petri Report, P–11.
9. Bhupendra Nath Datta, *Bharater Dritya Swadhinatasangram*, Calcutta, 1983, P–227.
10. Khuswant Singh, The Sikhs in Burma; *The Sikh Review*, Vol. IX, 1961, No. 5, P–34.
11. Nisith Ranjan Ray (ed.) *Challenge, Saya of Indian stmaale of for Freedom*, Delhi, 1948.
12. Govt. of India, Foreign Department, External A Proceedings, Nov. 1912 No. 1.
13. Home Poll, August 1915, File No. 414-439 (Part B).
14. Ibid.
15. Ibid.

डॉ० लोहिया का आर्थिक दर्शनः एक दृष्टि में

मनोरंजन कुमार 'मयंक'

शोध छात्र, इतिहास, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ० लोहिया समाजवादी अर्थशास्त्रियों में महत्वपूर्ण स्थान रखतें हैं। बर्लिन विश्वविद्यालय में उनको समाजवादी अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का अवसर मिला था। डॉ० लोहिया के आर्थिक विचारों का अध्ययन करने से पूर्व यह ज्ञात कर लेना आवश्यक है कि समाजवाद में आर्थिक तत्व का महत्व सर्वाधिक है। वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स ने आर्थिक तत्व को समाज का निर्णायक तत्व कहा है। उनके मतानुसार समाजिक विकास की प्रगति और दिशा, उत्पादन और विनियम की रीतियों पर निर्भर करती है। अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित संबंधों में बँधते हैं जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। इन्हीं उत्पादन - संबंधों के योग से समाज की आर्थिक प्रणाली बनती है। यही वासतविक आधार होता है जिसपर वैधानिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं का निर्माण होता है। फ्रेडरिक ऐंजिल्स ने भी इसी सिद्धांत का वर्णन करते हुए लिखा है, ''समस्त सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक क्रांतियों के अन्तिम कारण न तो मनुष्य के मस्तिष्क में और न उनके चरम सत्य और न्याय - संबंधी विशेष ज्ञान में पायें जाते हैं।'' स्पष्टतः सामाजिक उन्नति और विकास की दिशा उत्पादन तथा विनियत की रीतियों पर निर्भर है। डॉ० लोहिया मार्क्स के आर्थिक चिन्तन की अपरिहार्यता को स्वीकारते हुए अनार्थिक कारणों से पड़ने वाले प्रभुत्व को भी महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि से धार्मिक महत्वाकांक्षा से शक्ति का मद, यश-लिप्सा, स्त्री-पुरूष के बीच परस्पर आकर्षण आदि भी सामाजिक स्थिति के संयोजन में गंभीर भूमिका का निर्वाह करते हैं। इतिहास की केवल आर्थिक व्याख्या ही नहीं वरन् एक नैतिक, सौन्दर्यमूलक, राजनीतिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या भी है, किन्तु फिर भी आर्थिक तत्व की विशेष महत्ता को ठुकराया नहीं जा सकता। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल में विश्वास करने वाले डॉ० लोहिया आर्थिक क्रान्ति की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। मार्क्स एवं एंजिल्स नें आर्थिक क्रान्ति की प्रधानता और अपरिहार्यता को स्वीकार करते हैं। मार्क्स एवं एंजिलस ने आर्थिक तत्व पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है, और इनमें कोई संदेह नहीं कि अनार्थिक कारणों से आर्थिक कारण समाज पर अधिक प्रभाव डालते हैं। इसलिए डॉ० लोहिया ने अमीरी-गरीबी के अन्तर को समग्र विषमताओं का मूल मानते हुए आठ आधारभूत आर्थिक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं:- (1) वर्ग-उन्मूलन (2) मूल्य-नीति (3) भूमि - नीति (4) भूमि का पुनर्वितरण (5) आर्थिक विकेन्द्रीकरण (6) अन्न-सेना व भू-सेना (7) राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण (8) खर्च पर सीमा।[1]

डॉ० लोहिया के आर्थिक चिंतन को उपर्युक्त आठ विन्दुओं के अन्तर्गत विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करते हुए देखें तो सहज इस निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि उनकी दृष्टि में विशेषतया भारत

और भारत जैसे अन्य पिछड़े व अल्प-विकसित राष्ट्र थे जिनका समाजवादी आर्थिक चिंतन विस्तृत, गहन और तर्क - संगत था।

आर्थिक हितों की असमानता का कारण वर्ग - निर्माण है। उत्पादन, विनिमय तथा वितरण पर एकाधिकार रखने वाले अन्ततोगत्वा शोषक बन जाते हैं। साथ ही दूसरा वर्ग शोषित बन जाता है। मार्क्स, ऐंजिल्स, बुखारिन आदि वर्गोत्पत्ति का कारण आर्थिक मानते हैं। डॉ० लोहिया इस विचार को एकांगी सत्य मानते हुए वर्ग - निर्माण के कारणों में सामाजिक तथा बौद्धिक कारण भी जोड़ते हैं। दौलत, बुद्धि, स्थान आदि के हिसाब से समाज में गिरोह बनते हैं जिन्हें वर्ग कहते हैं।[2] उनका ये मत सटीक तथा यथार्थ है। यही उनके चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक (बौद्धिक) व्यवस्थाओं को प्रत्येक समाज में भिन्न मानते हुए इस बात पर जोड़ देते हैं कि प्रत्येक समाज की वर्ग - व्यवस्था का गहन अध्ययन होना चाहिए और तदनुसार उस व्यवस्था में परिवर्तन हेतु अलग - अलग कदम एक साथ उठाने चाहिए। विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति उनकी दृष्टि में शोषक है। विशेषाधिकार जन्म से भी हासिल होते हैं और प्रयत्नों से भी प्राप्त किये जाते हैं। अपने देश में लोहिया तीन प्रकार के विशेषाधिकार की बात करते थे - जाति, सम्पत्ति और भाषा।

भारत में डॉ0 लोहिया ने वर्ग - व्यवस्था का गहन अध्ययन कर उसे अत्यन्त मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि एक वर्गयुक्त समाज में मुख्य वस्तु है - शोषण! जो शोषण कर सकते हैं, वे अधिक लाभ का अर्जन करते हैं। जो शोषण नहीं कर सकते उनका शोषण होता है। शोषणकर्ताओं का साधन विशेषाधिकार होता है। विशेषाधिकार एक ऐसा अवसर हे जो समाज में बहुत छोटे से हिस्से को मिलता है। भाषा संबंधी विशेषाधिकार से डॉ० लोहिया का तात्पर्य अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से है। आज धन और प्रतिष्ठा अंग्रेजी से जुड़ी हैं करोड़ों ये सोंचते हैं कि वे तो अंग्रेजी नहीं जानते, शासन कैसे चलायेंगे। इस प्रकार प्रजातांत्रिक राज्य में करोड़ों लोग हीन भावना से ग्रस्त हो गये हैं। भाषा के आधार पर वर्तमान में ही नहीं अपितु 1500 वर्षो से शोषक और शोषित वर्ग अस्तित्व में रहें हैं। डॉ० लोहिया ने स्पष्ट किया कि ''बुनियादी बात यह है कि गत 1500 सालों से हिन्दुस्तान की संस्कृति में अजीब फूट चली आ रही है। एक तरफ तो कुछ लोगों की सामन्ती - भाषा, सामन्ती - भूषा, सामनती - भोजन और सामन्ती लोगों की लोक - भाषा, लोक - भूषा, लोक - भोजन और लोक - भवन रहा है। उदाहरण के लिए किसी जमाने में संस्कृत सामन्ती भाषा, जबकि प्राकृत, अपभ्रंश और पाली लोक भाषाएँ, अरबी और फारसी सामन्ती भाषा जबकि हिन्दी, उर्दू, तमिल, बंगाली आदि लोक भाषाएँ रही हैं। आज अंग्रेजी सामन्ती भाषा है और हिन्दी, तमिल, तेलगू, मराटी वगैरह लोक - भाषाएँ।''

वर्ग निर्माण का दूसरा कारण जाति - संबंधी विशेषाधिकार है। भारतीय ग्रंथ इस बात के प्रमाण हैं कि जाति (वर्ग) का निर्माण कार्य-विभाजन के लिए किया गया था। उनमें छोटे - बड़े और ऊँच - नीच का कोई भेद भाव नहीं था। सहयोग के आधार पर सामाजिक विकास ही इस विभाजन का लक्ष्य था, किन्तु डॉ० लाहिया की समानता इससे बिल्कुल भिन्न है। उनका मत है कि विश्व के इतिहास में सबल और निर्बल के बीच युद्ध हुए। सबलों ने निर्बलों को पराजित कर उन्हें तबाह कर डाला, किन्तु भारतवर्ष की विशेषता यह रही कि विजयी वर्ग ने पराजित वर्ग को नष्ट न कर केवल उनके अधिकारों को सीमित किया और अपने जीवन का एक अंग उन्हें बना लिया। इस ''हारे का नाश करने के बजाय उसकी आमदनी को बाँध रखने के प्रयास से जाति की उत्पत्ति हुई।'' विजयी वर्गद्विज और पराजित वर्ग शूद्र कहलाया। जैसे - जैसे समय बीतता गया, द्विज - अद्विज को अधिकाधिक हीन बनाता गया। सारा का सारा शूद्र समुदाय निर्जीव, व्यक्तिहीन और उदास बनता चला गया। डॉ० लोहिया ने इस अन्तर पर विशेष ध्यान आकृष्ट करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि ''जाति

देश को तोड़ती है, वह आत्म संतुष्टि हेतु वर्ग – विशेष के बहुसंख्यक छोटे – छोटे पोखरे बनाती है। हर एक पोखर को अपने छोटे से घेरे की भलाई में ही दिलचस्पी रहती है। मूल्यों की एक विषय सीढ़ी ने हर एक जाति को कुछ दूसरी जातियों के ऊपर खड़ा कर दिया।''

वर्ग – निर्माण का विशेषाधिकार सम्पत्ति है। लोहिया आर्थिक विषमता को अन्य विषमताओं से अधिक महत्व देते थे, क्योंकि वर्ग उत्पत्ति का मुख्य कारण आर्थिक विषमता ही है। उन्होने यदि एक ओर आठ आने अथवा एक रूपया रोज–कमाने वाले के कष्टमय जीवन को सहानुभूतिपूर्वक देखा था।

संक्षेप में डॉ० लोहिया का आर्थिक चिन्तन मानवता के धरातल पर आधारित है। साथ ही उनका समाजवाद मानवीय आधार पर ही नहीं खड़ा है अपितु उसमें व्यक्ति व समाज दोनों की समन्वित चेष्टाएँ उभारने का यत्न किया किया गया हे। इस बात को दृष्टिगत रखते हुए उनके उपर्युक्त आर्थिक चिंतन पर विचार किया जाए तो निष्कर्ष यह निकलता है कि वे मानव को मानव बनाये रखने के पक्ष में भोग और योग के मध्यम मार्ग की अनुमति देना चाहते थे।

पाद – टिप्पणियाँ

1. मार्क्स, कार्ल एवं ऐंजिल्स : ''संकलित रचनाएँ'' भाग – 1 पृ0 – 55
2. डॉ० राममनोहर लोहिया : ''मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म'', 1963, पृ0 – 187
3. कृष्ण नन्दन ठाकुर : डॉ० राममनोहर लोहिया के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृ0 – 38

हिन्दी

मनीषी कथाकार व्यक्तित्त्वः आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

डॉ॰ नीलम कुमारी

एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰, हिन्दी विभाग, आदर्श इन्टरमीडिएड महाविद्यालय, सराय, वैशाली

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का नाम स्मरण करते ही यह सर्वतो भाव ज्ञात होता है कि वे एक विराट एवं विलक्षण साहित्यकार हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाई है एवं श्रीवृद्धि की है। देवी सरस्वती का तो वरदहस्त उनपर विशेष रूप से रहता आया है। आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के कथानानुसार- 'छायावाद में निराला, प्रसाद, पंत और महादेवी के बाद पाँचवा नाम आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का है।'[1] प्राप्त जानकारियों से यह ज्ञातव्य है कि हिन्दी में शास्त्री जी को लाने का पुनीत कार्य निराला ने ही किया है। जीवन के प्रारंभिक समय में आचार्यश्री संस्कृत में ही रचना करते रहते और कालिदास एवं भवभूति के बाद संस्कृत के साहित्य के विपुल भंडार को और भी भरते होते किन्तु, हिन्दी भाषियों के लिए यह एक सौभाग्य की बात है कि हिन्दी साहित्य जगत में कवि सम्राट निराला के उपरांत आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का आगमन हुआ है।

आचार्य श्री का साहित्य-संसार विराट है, जिसमें हिन्दी साहित्य की कोई भी विधा अछूती नहीं है। भाषा, संशलिष्ट एवं शैली में ताजगी है, शब्द संयोजन एवं सम्प्रेषण का संयोग अनुपम है। गया जिले के मैगरा ग्राम में सन् 1916 ई॰ के माघ द्वितीया को जन्मे जानकीवल्लभ शास्त्री निर्जन वन-मरूस्थल का यह प्रतिभा-पुरुष साहित्य संसार का छायावाद से लेकर प्रगतिवाद की हर लहर को उठते-गिरते देखा है। उन्होंने अपने आप को वादों के चक्रव्यूह से अलग रखकर अपनी राह अलग बनाई। आचार्य श्री ने जिस जीवन शैली का निर्माण, धारण एवं निर्वहन किया वह किसी भी साहित्यकार के लिए कल्पना का विषय हो सकता है। जिन्दगी के तमाम कठिनाईयों से रूबरू होते रहे शास्त्री जी को उन्हीं के शब्दों ने उन्हें संबल एवं दृढ़ विश्वास दिया है-''मेरे पथ में ने विराम रहा / कुछ दूर और, कुछ दूर और / करता मैं आठों याम रहा।''[2]

जिस लेखनी को सहेजकर हिन्दी व संस्कृत साहित्य ने अपनी जीवतंता पाई ऐसे उत्तर छायावादी मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री अपनी शब्द-साधना से आठ दशक से उन्होंने न सिर्फ काव्य-जगत पर गंभीर प्रभाव व भावी पीढ़ी के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ी है बल्कि इस कालजयी रचाकार ने अपनी रचना से निरंतर निश्छल प्रेम व स्नेह की गंगा प्रवाहित की है। शास्त्रीजी की काव्य-परम्परा का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि शास्त्रीजी अपनी शर्तों के शब्द-साधक है। सहज भाव से कही गई उनकी बातें उनकी उत्कृष्टता का सही मापदण्ड है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जीवन पर्यन्त विभिन्न विधाओं में लिखते रहे, लिखने का अंदाज उनका अपना था, उन्होंने किसी अन्य की कृति का अनुकरण नहीं किया। आचार्य श्री का खुद का

मानना है कि –''हमारे अन्तर्रात्मा से जो चीज निकलती है वही असली चीज है, वहीं रस का आस्वादन भी होता है और कहानी या कोई भी विधा केवल वाणी का विधान नहीं हैं, वह वाणी की तपस्या और साधना का ललित संघर्ष भी है।''[3] शास्त्री जी ने पचास से अधिक कहानियाँ लिखी है इसलिए उनका कहानीकार रूप भी काफी विस्तीर्ण है। प्राप्त रचनाओं से ज्ञातव्य है कि उनकी कहानियाँ चौथे और पाँचवे दशक में लिखी गई थी, जो उनके रचनात्मक जीवन का प्रथम चरण प्रतीत होता है। इनकी कहानियों का गद्य एक अलग कोटि का है, जो परिवेश और चरित्र से जुड़कर चलता है और जिसका सम्बन्ध भावना और यथार्थ दोनों से है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने कहानी के उद्देश्य के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि– ''कहानी का उद्देश्य न तो मनोरंजन ही है और न शिक्षा ही। उसका उद्देश्य है स्वाभाविक रीति से सौन्दर्य और आनन्द को प्रतिफलित करना।''[4] शास्त्रीजी की कहानियों की कथाएँ काल्पनिकता से कोसो दूर और वास्तविक जीवन की घटनाओं से जुड़ी हुई है उनकी कहानियों में व्यथा अँगराई लेते हुए नजर आती है सुख का स्वर नहीं सुनाई देता है उनके अनुसार ''चूँकि चिता की लपटे हैं, उनमें खस की खुशबू सम्भव नहीं।''[5] पुनः उन्होंने अपनी कहानियों में अपनायी जाने वाली शैली के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि–''मेरी शैली अच्छी है या बुरी पता नहीं। मगर वह किसी की नकल नहीं है, इतनी सी असलियत मैं जानता हूँ।''[6] शास्त्री जी के द्वारा लिखित उनकी कहानियों का संकलन चार पुस्तकों में किया गया है, वे पुस्तकें हैं –'कानन', 'अपर्णा', 'लीलाकमल' और 'बाँसो का झुरमुट'।

'कानन' आचार्य श्री का प्रथम कहानी संग्रह है। इसका प्रकाशन वर्ष 1940 ई॰ है। यह पुस्तक आचार्य श्री ने अपनी छोटी बहन स्व॰ सुमित्रा की शेष-स्मृति के नाम समर्पित किया है। इस संग्रह में कुल ग्यारह कहानियों का संग्रह किया गया है। इस पुस्तक की अधिकांश कहानियाँ स्त्री और पुरुष के प्रेम पर आधारित है तथा उनके मिलने एवं बिछुड़ने में प्राप्त असफलताओं के आधार पर कथा का विकास दर्शाया गया है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री कृत 'अपर्णा' कहानी-संग्रह का प्रथम प्रकाशन सन् 1941 ई॰ में हुआ था। इस संग्रह को आचार्य श्री ने अपनी प्रथम पत्नी स्व॰ श्रीमती चन्द्रकला देवी को श्रद्धा सुमन स्वरूप समर्पित किया है। इस कथा-संग्रह में आचार्य श्री ने कुल दस कहानियों का संकलन किया है। इस कथा-संग्रह से प्रभावित होकर महाकवि निराला ने लिखा है –''मैंने शास्त्राचार्य पं॰ जानकीवल्लभ जी की लिखी 'अपर्णा' पुस्तक देखी। कहानियाँ है, रोचक, सरल, काव्यमयी। गद्य में जानकीवल्लभ शास्त्री ने चार-चाँद लगा दिए हैं। हिन्दी उनके हाथ में कली की तरह दल खोलती जा रही है। पुस्तक भाव और भाषा दोनों की दृष्टि में यथेष्ट बन पड़ी है इसका अधिक प्रचार हिन्दी के सँवारने का साधन होगा।''[7]

'लीलाकमल' कहानी-संग्रह आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा लिखित एक संयुक्त रचना है जिसमें कहानियों के साथ-साथ एंकाकियों का भी संकलन हुआ है। इस कहानी संग्रह के अंत में 'वर्षा मंगल' नाम की कविताओं का काव्यानुवाद भी अंकित हुआ है। इस कथा-संग्रह में आचार्य श्री ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता पर चोट करते हुए स्त्री जीवन की व्यथा पर गहरी संवेदना व्यक्त की है। इस पुस्तक में कुल सात कहानियाँ तीन एकांकी एवं एक कविता का काव्यानुवाद संकलित है। इस कथा-संग्रह का प्रकाशन वर्ष 1955 ई॰ में हुआ था।

'बाँसो का झुरमुट' आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा 1941 ई॰ में लिखी गई उनकी प्रारंभिक कहानियों का एक संग्रह है प्रकाशन की दृष्टिकोण से यह आचार्य जी की अन्तिम कृति मानी जाती है। इस कथा-संग्रह में सन् 1935 से 1945 ई॰ के मध्य लिखी गई कुल ग्यारह कहानियों का संकलन किया गया है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने अपने प्रथम तीनों कथा-संग्रहों की प्रथम कहानी को

एवं चतुर्थ तथा अन्तिम कथा-संग्रह की अन्तिम कहानी को विशिष्टता देकर प्रत्येक संग्रह का नामकरण भी उसी कहानी के शीर्षक पर किया है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी की कहानियों के भावों एवं कलात्मक लेखनी से प्रसन्नचित्त होकर महाकवि निराला ने लिखा है-''श्री जानकीवल्लभ शास्त्री शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक है। अपनी प्रतिभा, विद्वता, लेखन-कौशल और दिव्य-व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझपर अपनी गहरी छाप डाली है। हिन्दी के साहित्यिक उत्थान में बिहार की इस प्रतिभा को मानना पड़ता है। जानकीवल्लभ शास्त्री यहाँ के और समस्त हिन्दी भाषी प्रांतों के प्रतिभाशालियों में एक है। सेच तो यह है कि वे सामयिक हिन्दी काव्य-धारा और सामयिक प्रकाशन शैली के एक सुन्दर प्रतिनिधि है।''[8]

आचार्यश्री के साहित्य-सृजन का मूल्यांकन करना समुद्र को तैरकर पार करने जैसा असंभव दुस्साहस प्रतीत होता है। उनका विराट व्यक्तित्व जो किसी अर्थ में नदी के तट पर खड़े उस विशालकाय जहाज के समान प्रतीत होता है जो अपने जीवन की चिन्ता किए बिना नदी के प्रवाह को निहारता और गति देता रहता है। जानकीवल्लभ शास्त्री केवल तन से ही नहीं बल्कि मन से भी हिमालय की ऊँचाइयों के समान ऊपर उठे हुए थे। उनके विषय में जानने के लिए हम जितनी गहराई में जाएँ वह कम ही लगता है। कभी-कभार उनकी रचनाओं में जल पड़ने वाली सूर्य की सुनहरी किरणों से निकली इन्द्रधनुषी झलक झिलमिलाने लगती है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री सफलता के शीर्ष शिखर पर चमकने वाले एक ऐसे मणिरत्न के समान है जो संगीत के महान साधक एवं जीवन के चढ़ते-उतरते समय चक्र के प्रत्यक्ष दर्शक एवं उपन्यास, कहानी, संस्मरण, गीतिनाश्यों के सिद्ध रचनाकार हैं। साहित्य-सिद्धान्त समीक्षा एवं प्राच्य भारतीय साहित्य जैसी खूबियाँ इनके दिल से निकलने वाली ऐसी-प्रेरणा किरण हैं जिन्हें महसूस तो हम करते है परन्तु उन्हें व्यक्त करने के लिए हमारे पास शब्दों की कमी पड़ जाती है। तत्पश्चात् अतीत और वर्तमान का स्मरण कर उनके जीवन की वेदना फूट पड़ती है-''मेरी बेल प्यार की मुस्कानों और दुलार के आँसूओं से कभी नहीं सींची गई। चढ़ी तो काँटों पर, मुरझाई तो वीराने में''[9]

संदर्भः

1. बेला स्मृति-विशेषांक, पृ॰ 146
2. बेला महावाणी अमृत-पर्व, पृ॰ 110
3. बेला पत्रिका, जुलाई-अगस्त-2009, पृ॰ 2
4. आचार्य कवि श्री जानकीवल्लभ शास्त्री, व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ॰ 78
5. वही, पृ॰ 78
6. वही, पृ॰ 78
7. आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का कथा-साहित्य, पृ॰ 86
8. बेला महावाणी अमृत-पर्व, पृ॰ 64
9. आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, हंस बलाका, पृ॰ 35

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005: एक समीक्षा

सुनील कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सूचना का अधिकार अर्थात राईट टू इन्फॉरमेशन। सूचना का अधिकार का तात्पर्य है, सूचना पाने का अधिकार, जो सूचना अधिकार कानून लागू करने वाला राष्ट्र अपने नागरिकों को प्रदान करता है। सूचना अधिकार के द्वारा राष्ट्र अपने नागरिकों को अपनी कार्य और शासन प्रणाली को सार्वजनिक करता है।

लोकतंत्र में देश की जनता अपनी चुनी हुए व्यक्ति को शासन करने का अवसर प्रदान करती है और यह अपेक्षा करती है कि सरकार पूरी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करेगी। लेकिन कालान्तर में अधिकांश राष्ट्रों ने अपने दायित्वों का गला घोटते हुए पारदर्शिता और ईमानदारी की बोटियाँ नोंचने में कोई कसर नहीं छोड़ी और भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े कीर्तिमान कायम करने को एक भी मौका अपने हाथ से गवाना नहीं भूले। भ्रष्टाचार के इन कीर्तिमानों को स्थापित करने के लिए हर वो कार्य किया जो जनविरोधी और अलोकतांत्रिक हैं। सरकारे यह भूल जाती है कि जनता ने उन्हें चुना है और जनता ही देश की असली मालिक है एवं सरकार उनकी चुने हुई नौकर। इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है, कि जो सरकार उनकी सेवा है, वह क्या कर रही है? प्रत्येक नागरिक सरकार को किसी ने किसी माध्यम से टेक्स देती है। यहां तक एक सुई से लेकर एक माचिस तक का टैक्स अदा करती है। सड़क पर भीख मांगने वाला भिखारी भी जब बाजार से कोई सामान खरीदता है, तो बिक्री कर, उत्पाद कर इत्यादि टैक्स अदा करता है। इसी प्रकार देश का प्रत्येक नागरिक टैक्स अदा करता है और यही टैक्स देश के विकास और व्यवस्था की आधारशिला को निरन्तर स्थिर रखता है। इसलिए जनता को यह जानने का पूरा हक है कि उसके द्वारा दिया गया, पैसा कब, कहाँ, और किस प्रकार खर्च किया जा रहा है? इसके लिए यह जरूरी है कि सूचना को जनता के समक्ष रखने एवं जनता को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया जाए, जो एक कानून द्वारा ही सम्भव है। सूचना का अधिकार अर्थात राईट टू इन्फॉरमेशन। सूचना का अधिकार का तात्पर्य है, सूचना पाने का अधिकार, जो सूचना अधिकार कानून लागू करने वाला राष्ट्र अपने नागरिकों को प्रदान करता है। सूचना अधिकार के द्वारा राष्ट्र अपने नागरिकों को अपनी कार्य और शासन प्रणाली को सार्वजनिक करता है।

लोकतंत्र में देश की जनता अपनी चुनी हुए व्यक्ति को शासन करने का अवसर प्रदान करती है और यह अपेक्षा करती है कि सरकार पूरी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करेगी। लेकिन कालान्तर में अधिकांश राष्ट्रों ने अपने दायित्वों का गला घोटते हुए पारदर्शिता

और ईमानदारी की बोटियाँ नोंचने में कोई कसर नहीं छोड़ी और भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े कीर्तिमान कायम करने को एक भी मौका अपने हाथ से गवाना नहीं भूले। भ्रष्टाचार के इन कीर्तिमानों को स्थापित करने के लिए हर वो कार्य किया जो जनविरोधी और अलोकतांत्रिक हैं। सरकारें यह भूल जाती है कि जनता ने उन्हें चुना है और जनता ही देश की असली मालिक है एवं सरकार उनकी चुने हुई नौकर। इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है, कि जो सरकार उनकी सेवा है, वह क्या कर रही है? प्रत्येक नागरिक सरकार को किसी ने किसी माध्यम से टेक्स देती है। यहां तक एक सुई से लेकर एक माचिस तक का टैक्स अदा करती है। सड़क पर भीख मांगने वाला भिखारी भी जब बाजार से कोई सामान खरीदता है, तो बिक्री कर, उत्पाद कर इत्यादि टैक्स अदा करता है। इसी प्रकार देश का प्रत्येक नागरिक टैक्स अदा करता है और यही टैक्स देश के विकास और व्यवस्था की आधारशिला को निरन्तर स्थिर रखता है। इसलिए जनता को यह जानने का पूरा हक है कि उसके द्वारा दिया गया, पैसा कब, कहाँ, और किस प्रकार खर्च किया जा रहा है? इसके लिए यह जरूरी है कि सूचना को जनता के समक्ष रखने एवं जनता को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया जाए, जो एक कानून द्वारा ही सम्भव है। अंग्रजों ने भारत पर लगभग 250 वर्षो तक शासन किया और इस दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारत में शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 बनया, जिसके अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार हो गया कि वह किसी भी सूचना को गोपनीय कर सकेगी।

सन् 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने बाद 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ, लेकिन संविधान निर्माताओ ने संविधान में इसका कोई भी वर्णन नहीं किया और न ही अंग्रेजो का बनाया हुआ शासकीय गापनीयता अधिनियम 1923 का संशोधन किया। आने वाली सरकारों ने गोपनीयता अधिनियम 1923 की धारा 5 व 6 के प्रावधानों का लाभ उठकार जनता से सूचनाओं को छुपाती रही। सूचना के अधिकार के प्रति कुछ सजगता वर्ष 1975 के शुरूआत में "उत्तर प्रदेश सरकार बनाम राज नारायण" से हुई। मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में हुई, जिसमें न्यायालय ने अपने आदेश में लोक प्राधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कार्यो का व्यौरा जनता को प्रदान करने का व्यवस्था किया। इस निर्णय ने नागरिको को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दायरा बढ़ाकर सूचना के अधिकार को शामिल कर दिया। वर्ष 1982 में द्वितीय प्रेस आयोग ने शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 की विवादस्पद धारा 5 को निरस्त करने की सिफारिश की थी, क्योंकि इसमें कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया था कि 'गुप्त' क्या है और 'शासकीय गुप्त बात' क्या है? इसलिए परिभाषा के अभाव में यह सरकार के निर्णय पर निर्भर था, कि कौन सी बात को गोपनीय माना जाए और किस बात को सार्वजनिक किया जाए। बाद के वर्षो में साल 2006 में 'विरप्पा मोइली' की अध्यक्षता में गठित 'द्वितीय प्रशासनिक आयोग' ने इस कानून को निरस्त करने का सिफारिश किया। सूचना के अधिकार की मांग राजस्थान से प्रारम्भ हुई। राज्य में सूचना के अधिकार के लिए 1990 के दशक में जनान्दोलन की शुरूआत हुई, जिसमें मजदूर किसान शक्ति संगठन (एम.के.एस.एस.) द्वारा अरूणा राय की अगुवाई में भ्रष्टाचार के भांडाफोड़ के लिए जनसुनवाई कार्यक्रम के रूप में हुई। 1989 में कांग्रेस की सरकार गिरने के बाद बीपी सिंह की सरकार सत्ता में आई, जिसने सूचना का अधिकार कानून बनाने का वायदा किया। 3 दिसम्बर 1989 को अपने पहले संदेश में तत्कालीन प्रधानमंत्री बीपी सिंह ने संविधान में संशोधन करके सूचना का अधिकार कानून बनाने तथा शासकीय गोपनीयता अधिनियम में संशोधन करने की घोषणा की। किन्तु बीपी सिह की सरकार तमाम कोशिसे करने के बावजूद भी इसे लागू नहीं कर सकी और यह सरकार भी ज्यादा दिन तक न टिक सकी।

वर्ष 1997 में केन्द्र सरकार ने एच.डी शौरी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित करके मई 1997 में सूचना की स्वतंत्रता का प्रारूप प्रस्तुत किया, किन्तु शौरी कमेटी के इस प्रारूप को संयुक्त मोर्चे की दो सरकारों ने दबाए रखा। वर्ष 2002 में संसद ने 'सूचना की स्वतंत्रता विधेयक (फ्रिडम ऑफ इन्फॉरमेशन बिल) पारित किया। इसे जनवरी 2003 में राष्ट्रपति की मंजूरी मिली, लेकिन इसकी नियमावली बनाने के नाम पर इसे लागू नहीं किया गया। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.) की सरकार ने न्युनतम साझा कार्यक्रम में किए गए अपने वायदो तथा पारदर्शिता युक्त शासन व्यवस्था एवं भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाने के लिए 12 मई 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 संसद में पारित किया, जिसे 15 जून 2005 को राष्ट्रपति की अनुमति मिली और अन्ततः 12 अक्टूबर 2005 को यह कानून जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में लागू किया गया। इसी के साथ सूचना की स्वतंत्रता विधेयक 2002 को निरस्त कर दिया गया। इस कानून के राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने से पूर्व नौ राज्यों ने पहले से लागू कर रखा था, जिनमें तमिलनाडु और गोवा ने 1997, कर्नाटक ने 2000, दिल्ली 2001, असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र ने 2002, तथा जम्मू-कश्मीर ने 2004 में लागू कर चुके थे। सूचना का तात्पर्यः रिकार्ड, दस्तावेज, ज्ञापन, ई:मेल, विचार, सलाह, प्रेस विज्ञप्तियाँ, परिपत्र, आदेश, लांग पुस्तिका, ठेके सहित कोई भी उपलब्ध सामग्री, निजी निकायो से सम्बन्धित तथा किसी लोक प्राधिकरण द्वारा उस समय के प्रचलित कानून के अन्तर्गत प्राप्त किया जा सकता है।

सूचना अधिकार का अर्थः इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु आते है-

1. कार्यो, दस्तावेजों, रिकार्डो का निरीक्षण।
2. दस्तावेज या रिकार्डो की प्रस्तावना। सारांश, नोट्स व प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त करना।
3. सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना।
4. प्रिंट आउट, डिस्क, "लॉपी, टेप, वीडियो कैसेटो के रूप में या कोई अन्य इलेक्ट्रानिक रूप में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सूचना का अधिकार अधिनियम् 2005 के प्रमुख प्रावधानः
5. समस्त सरकारी विभाग, पब्लिक सेक्टर यूनिट, किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता से चल रहीं गैर सरकारी संस्थाएं व शिक्षण संस्थान आदि विभाग इसमें शामिल हैं। पूर्णतः से निजी संस्थाएं इस कानून के दायरे में नहीं हैं लेकिन यदि किसी कानून के तहत कोई सरकारी विभाग किसी निजी संस्था से कोई जानकारी मांग सकता है तो उस विभाग के माध्यम से वह सूचना मांगी जा सकती है।
6. प्रत्येक सरकारी विभाग में एक या एक से अधिक जनसूचना अधिकारी बनाए गए है, जो सूचना के अधिकार के तहत आवेदन स्वीकार करते हैं, मांगी गई सूचनाएं एकत्र करते हैं और उसे आवेदनकर्ता को उपलब्ध कराते हैं।
7. जनसूचना अधिकारी की दायित्व है कि वह 30 दिन अथवा जीवन व स्वतंत्रता के मामले में 48 घण्टे के अन्दर (कुछ मामलों में 45 दिन तक) मांगी गई सूचना उपलब्ध कराए।
8. यदि जनसूचना अधिकारी आवेदन लेने से मना करता है, तय समय सीमा में सूचना नहीं उपलब्ध कराता है अथवा गलत या भ्रामक जानकारी देता है तो देरी के लिए 250 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से 25000 तक का जुर्माना उसके वेतन में से काटा जा सकता है। साथ ही उसे सूचना भी देनी होगी।
9. लोक सूचना अधिकारी को अधिकार नहीं है कि वह आपसे सूचना मांगने का कारण नहीं पूछ सकता।

10. सूचना मांगने के लिए आवेदन फीस देनी होगी (केन्द्र सरकार ने आवेदन के साथ 10 रुपए की फीस तय की है। लेकिन कुछ राज्यों में यह अधिक है, बीपीएल कार्डधारकों को आवेदन शुल्क मे छुट प्राप्त है।
11. दस्तावेजों की प्रति लेने के लिए भी फीस देनी होगी। केन्द्र सरकार ने यह फीस 2 रुपए प्रति पृष्ठ रखी है लेकिन कुछ राज्यों में यह अधिक है, अगर सूचना तय समय सीमा में नहीं उपलब्ध कराई गई है तो सूचना मुफ्त दी जायेगी।
12. यदि कोई लोक सूचना अधिकारी यह समझता है कि मांगी गई सूचना उसके विभाग से सम्बंधित नहीं है तो यह उसका कर्तव्य है कि उस आवेदन को पांच दिन के अन्दर सम्बंधित विभाग को भेजे और आवेदक को भी सूचित करे। ऐसी स्थिति में सूचना मिलने की समय सीमा 30 की जगह 35 दिन होगी।
13. लोक सूचना अधिकारी यदि आवेदन लेने से इंकार करता है। अथवा परेशान करता है। तो उसकी शिकायत सीधे सूचना आयोग से की जा सकती है। सूचना के अधिकार के तहत मांगी गई सूचनाओं को अस्वीकार करने, अपूर्ण, भ्रम में डालने वाली या गलत सूचना देने अथवा सूचना के लिए अधिक फीस मांगने के खिलाफ केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग के पास शिकायत कर सकते है।
14. जनसूचना अधिकारी कुछ मामलों में सूचना देने से मना कर सकता है। जिन मामलों से सम्बंधित सूचना नहीं दी जा सकती उनका विवरण सूचना के अधिकार कानून की धारा 8 में दिया गया है। लेकिन यदि मांगी गई सूचना जनहित में है तो धारा 8 में मना की गई सूचना भी दी जा सकती है। जो सूचना संसद या विधानसभा को देने से मना नहीं किया जा सकता उसे किसी आम आदमी को भी देने से मना नहीं किया जा सकता।
15. यदि लोक सूचना अधिकारी निर्धारित समय-सीमा के भीतर सूचना नहीं देते है या धारा 8 का गलत इस्तेमाल करते हुए सूचना देने से मना करता है, या दी गई सूचना से सन्तुष्ट नहीं होने की स्थिति में 30 दिनों के भीतर सम्बंधित जनसूचना अधिकारी के वरिष्ठ अधिकारी यानि प्रथम अपील अधिकारी के समक्ष प्रथम अपील की जा सकती है।
16. यदि आप प्रथम अपील से भी सन्तुष्ट नहीं हैं तो दूसरी अपील 60 दिनों के भीतर केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग (जिससे सम्बंधित हो) के पास करनी होती है। विश्व पांच देशों के सूचना के अधिकार का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए पांच देशों स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत का चयन किया गया और इन देशों के कानून, लागू किए वर्ष, शुल्क, सूचना देने की समयावधि, अपील या शिकायत प्राधिकारी, जारी करने का माध्यम, प्रतिबन्धित करने का माध्यम आदि का तुलना सारणी के माध्यम से किया गया है।

विश्व में पांच देश स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको और भारत के सूचना का अधिकार कानून का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत है- विश्व में सबसे पहले स्वीडन ने सूचना का अधिकार कानून 1766 में लागू किया, जबकि कनाडा ने 1982, फ्रांस ने 1978, मैक्सिको ने 2002 तथा भारत ने 2005 में लागू किया।

1. विश्व में स्वीडन पहला ऐसा देश है, जिसके संविधान में सूचना की स्वतंत्रता प्रदान की है, इस मामले में कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत क संविधान उतनी आजादी प्रदान नहीं

करता। जबकि स्वीडन के संविधान ने 250 वर्ष पूर्व सूचना की स्वतंत्रता की वकालत की है।

2. सूचना मांगन वाले को सूचना प्रदान करने की प्रक्रिया स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत में अलग-अलग है जिसमें स्वीडन सूचना मांगने वाले को तत्काल और निशुल्क सूचना देने का प्रावधान है।
3. सूचना प्रदान करने लिए फ्रांस और भारत में 1 माह का समय निर्धारित किया गया है, हालांकि भारत ने जीवन और स्वतंत्रता के मामले में 48 घण्टे का समय दिया गया है, किन्तु स्वीडन अपने नागरिको को तत्काल सूचना उपलब्ध कराता है, जबकि कनाडा 15 दिन तथा मैक्सिको 20 दिन में सूचना प्रदान कर देता है।
4. सूचना न मिलने पर अपील प्रक्रिया भी लगभग एक ही समान है। स्वीडन में सूचना न मिलने पर न्यायालय में जाया जाता है। कनाडा तथा भारत में सूचना आयुक्त जबकि फ्रांस में संवैधानिक अधिकारी एवं मैक्सिको में 'द नेशनल ऑन एक्सेस टू पब्लिक इनफॉरमेशन' अपील और शिकायतों का निपटारा करता है।
5. स्वीडन किसी भी माध्यम द्वारा तत्काल सूचना उपलब्ध कराता है जिनमें वेबसाइट पर भी सूचना जारी किया जाता है। कनाडा और फ्रांस अपने नागरिको को किसी भी रूप में सूचना दे सकता है, जबकि मैक्सिको इलेक्ट्रॉनिक रूप से सूचनाओं का सार्वजनिक करता है तथा भारत प्रति व्यक्ति को सूचना उपलब्ध कराता है।
6. गोपनीयता के मामले में स्वीडन ने गोपनीयता एवं पब्लिक रिकार्ड एक्ट 2002, कनाडा ने सुरक्षा एवं अन्य देशों से सम्बन्धित सूचनाएँ मैनेजमंट ऑफ गवर्नमेण्ट इन्फॉरमेशन होल्डिंग 2003, फ्रांस ने डाटा प्रोटेक्शन एक्ट 1978 तथा भारत ने राष्ट्रीय, आंतरिक व बाह्य सुरक्षा तथा अधिनियम की धारा 8 में उल्लिखित प्रावधानों से सम्बन्धित सूचनाएँ देने पर रोक है।

निष्कर्ष

सूचना का अधिकार कानून आज विश्व के 80 से देशों के लोकतंत्र की शोभा बढ़ा रही है। जिन देशों ने सूचना के अधिकार को महत्ता दी है बेशक उनमें से स्वीडन को भूलाया नहीं जा सकता। अगर साफ शब्दों में कहा जाए तो स्वीडन सूचना अधिकार कानून की जननी है, उससे भी महान स्वीडन का संविधान है, जिसने पूरी दुनिया में पुराना संविधान होने का दावा किया, जिसमें सूचना का अधिाकार को अपने दामन समेटे हुए लोकतंत्र को परिभाषित किया गया है। अन्य देशों ने जहाँ सूचना देने के लिए समयसीमा निर्धारित कर रखी है, वहीं स्वीडन ने सूचना तत्काल और निशुल्क दिए जाने की पैरवी की है।

मैक्सिको ने जहां खुद ही अपने नगारिको को सूचना लेने और सरकार को सूचना स्वत: प्रकाशित करने का निर्देश दिया है, जिसने लोगो का आजादी का एक नया पंख लगा दिया है। स्वत: सूचना जारी करने का निर्देश तो भारत की सरकार ने भी दिया है, लेकिन किसी भी राज्य और केन्द्र के विभाग ने इसकी कोई पहल नहीं की। भारत में लोक सेवको, राजनेताओं और नौकरशाहो ने इस कानून को बकवास कहकर बंद करने की मांग उठाते रहते है। खुद पूर्व प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने इस कानून के दायरे को कम करने और गोपनीयता बढ़ाने की वकालत की है। भारत में इसकी स्थिति यहां तक पहुंच चुकी है कि खुद सरकार ही इस कानून को लेकर गम्भीर नहीं नजर आती।

वर्तमान प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक कार्यक्रम के दौरान कहा कि 'आरटीआई किसी को खाने के लिए नहीं देता' ऐसे बयानों से सरकार की मंशा जग जाहिर हो चुकी है। सूचना आयुक्तों की नियुक्ति भी निष्पक्षता से नहीं किया जाता। पूर्व नौकरशाहों और अपने चहेतो को इस कानून का मुहाफ़िज के रूप में सूचना आयुक्त बनना भ्रष्टाचार और दोहरी नीति का उदाहरण है। भ्रष्टाचार की मुखालिफत और पारदर्शिता के हामी भरने वाले सियासी लोग और सियासी दल आरटीआई के दायरे में आने का विरोध कर चुके है और सत्ताधारी व विपक्षी दल सभी मिलकर एकजुट कर इस कानून के दायरे में न आने के लिए एक मंच पर नजर आते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैसवाल श्रीचन्द, मीडिया(केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की त्रिमासिक मासिक पत्रिका), प्रकाशक: केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली, प्रवेशांक/अप्रैल-जून 2006
2. भसीन अनीश, जानिए मानवाधिकारों को, प्रकाशक: प्रभात प्रकाशन, 2011
3. फाडिघ्या डा0 बी0एल0, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2013
4. सिंह जेपी, समाजशास्त्र: अवधारणा एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, 2013

ब्रिटिश भारत में छापखाना (प्रेस) एवं इसका प्रभाव

कुमारी रीना

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

जनवरी 1780 में भारत में प्रथम अखबार साप्ताहिक 'बंगाल गजट' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। जिसे इसके संस्थापक जे.ए. हिकी के नाम पर 'हिकी गजट' भी कहा जाता है। 1784 में 'कलकत्ता गजट' का प्रकाशन हुआ जो बंगाल सरकार के आधिकारिक प्रवक्ता की तरह था। 'समाचार दर्पण' भारतीय भाषाओं में प्रथम अखबार था जिसका प्रकाशन 1818 में बंगला भाषा में प्रारंभ हुआ। इसके प्रकाशन में प्रसिद्ध श्रीरामपुर मिशनरी के विलियम वार्ड, विलियम केरी तथा जोशुआ मार्यमैन का महत्त्वपूर्ण योगदान था। प्रेस का विस्तार सन् 1835 से 1857 के बीच अन्य शहरों-दिल्ली, आगरा, ग्वालियर तथा लाहौर में हुआ, लेकिन 1857 के विद्रोह के प्रारंभ के 33 प्रतिशत प्रकाशनों में सिर्फ 6 बचे रह सके। भारतीय भाषाओं के प्रेस को लिट्टन के 1878 के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट पग ने कुचल दिया।

1870 में आम डाक सेवा व्यवस्था के प्रारंभ होने के कारण सभी दूरियों के लिए एक समान डाक दर का निर्धारण हुआ। ऊर्जा चलित छपाई के प्रेस का आविष्कार इस काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी। सर्वप्रथम 'स्टेट्समैन' ने घूर्णी मशीन छपाई का आयात किया। 1866 में ही 'रायटर' का कार्यालय भारत में स्थापित हो गया। 'एसोसिएटिड प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना इस काल की अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, हाँलाकि ए.पी.आई. के विचार पूर्वाग्रह से प्रेरित थे। कांग्रेस का गठन पत्रकारिता के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। बंबई में 'इलस्ट्रेटेड वीकली' (1878) की स्थापना हुयी तथा कलकत्ता में 'कैपिटल' (1888)के प्रकाशन का प्रारंभ व्यावसायिक एवं वित्तीय साप्ताहिक के रूप में हुआ। प्रेस का और भी बीसवीं शताब्दी में विस्तार हुआ।

1913 में फिरोजशाह मेहता की प्रेरणा से 'बॉम्बे क्रोनिकल' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। 'लीडर' का प्रकाशन पंडित मदन मोहन मालवीय ने इलाहाबाद से शुरू किया। यह नरम दल का प्रवक्ता सिद्ध हुआ। होम रूल आंदोलन को लोकप्रिय बनाने के लिए एनी बेसेंट ने 'मद्रास स्टैंडर्ड' का प्रकाशन प्रारंभ किया तथा बाद में उसका नाम 'न्यू इंडिया' रखा। 1918 में बी.एस. श्रीनिवास शास्त्री के संपादन में 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। मोती लाल नेहरू ने 1919 में 'इंडीपेंडेंट' की स्थापना की जो सिर्फ चार वर्षों तक चला। 1919 में के.एम. पणिक्कर के संपादन में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। बाद में यह स्वराज पार्टी का आधिकारिक पत्र बन गया। गांधी का

भी भारत में पत्रकारिता के विकास में योगदान रहा है। दक्षिण अफ्रीका में उन्होनें 'इंडियन ओपीनियन' तथा भारत में 'यंग इंडिया' (अंग्रेज़ी साप्ताहिक) तथा 'नवजीवन' (गुजराती साप्ताहिक) का प्रकाशन किया। 1920 में हिन्दी दैनिक 'आज' की स्थापना हुयी जो कांग्रेस के कार्यक्रमों का समर्थक था।

1927 में भारत की प्रथम राष्ट्रीय समाचार एजेंसी, 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना हुई। एनी बेसेंट, एम.आर. जयकर, पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास, जी.डी. बिड़ला तथा बालंचद हीराचंद ने इसे वित्तीय सहयोग प्रदान किया तथा एस. सदानंद इसके व्यवस्था निदेशक थे। अनेक राष्ट्रवादी समाचार पत्रों की स्थापना सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय हुई।

1933 में 'इंडियन एक्सप्रेस' तथा 'दीनमणि' (तमिल) की मद्रास में स्थापना हुई। मुस्लिम लीग के समर्थन में 'स्टार ऑफ इंडिया' का प्रकाशन कलकत्ता में प्रारंभ हुआ जबकि जिन्ना ने 'डॉन' की स्थापना की। 1930 के अंत में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के समकक्ष हिन्दी 'हिन्दुस्तान' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ तथा साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' का प्रकाशन बंबई में 1941 में प्रारंभ हुआ। सन् 1882 से 1907 तक कोई अलग प्रेस विधेयक नहीं लाया गया तथा राजद्रोह का दमन भारतीय दंड संहिता की धारा 124ए के तहत किया गया।

1908 में समाचार पत्र (अपराध के लिए प्रोत्साहन) विधेयक पारित हुआ। सन् 1910 के भारतीय प्रेस विधेयक का उद्देश्य प्रैस को वैध विवादों के अंतर्गत सीमित रखना था। कई प्रेसों तथा समाचार पत्रों का प्रकाशन सन् 1908 एवं 1910 के विधेयकों के कारण बंद हो गया। प्रेस की स्वतंत्रता पर 1930 के भारतीय प्रेस अध्यादेश ने और भी अंकुश लगा दिया क्योंकि अब अपराध की परिभाषा और भी व्यापक कर दी गयी थी। किसी भी प्रकार के कांग्रेसी प्रचार के प्रकाशन पर सन् 1931 के भारतीय प्रेस (आपातकालीन अधिकार) विधेयक ने प्रतिबंध लगा दिया। इसकी समाप्ति स्वतंत्रता के बाद हुई।

मुख्यत: श्रीरामपुर के मिशनरियों तथा पोर्ट विलियम कॉलेज के सहयोग से आधुनिक बांग्ला साहित्य आगे बढ़ा और विकसित हुआ। 1778 में नाथानील बी. हालहेड ने बांग्ला व्याकरण प्रकाशित की। 1801 में विलियम कैरे ने बाईबिल का अनुवाद बांग्ला में किया। इस प्रकार बांग्ला काव्य का विकास 19वीं शताब्दी में संस्कृत, अरबी और फारसी शब्दों के मिलने से हुआ। पहला बांग्ला काव्य रामराम बसु द्वारा लिखित 'राजा परातादित्य चरित' से हुआ जिसका प्रकाशन 1802 में हुआ था। बाद में इसी लेखक ने एक अन्य पुस्तक 'लिपि माला' का संकलन किया। मृत्युंजय विद्यालंकार ने 1802 में 'बातीसा सिंहासन' लिखा। इसी लेखक ने तीन अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें–'हितोपदेश', 'राजबाली', 'वेदांत-चंद्रिका' तथा प्रबोध-चंद्रिका लिखी। 1815 में राजा राममोहन राय ने अपनी पुस्तक वेदांत ग्रंथ को प्रकाशित किया। 1815 और 1830 के बीच राममोहन राय ने बांग्ला में तीस किताबें लिखी। उन्होंने कुछ उपनिषदों का बांग्ला अनुवाद भी किया। 'भगवद्गीता' का बांग्ला में अनुवाद इनकी ही देन है। बंकिम चंद्र, शरत चंद्र चटर्जी, रवींद्रनाथ टैगोर, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, प्यारीचाँद मित्रा तथा टेक चंद्र ठाकुर ने बांग्ला काव्य को अपनी कीर्ति से काफी उन्नत बनाया। इसके पश्चात् बांग्ला काव्य धीरे-धीरे पूर्णता की ओर अग्रसर होता गया। आधुनिक बांग्ला साहित्य के जन्मदाता ईश्वर चंद्र विद्यासागर (1820-91) माने जाते हैं। 1854 में इन्होंने 'शंकुतला', 1860 में 'सीता बनवास' तथा 1869 में 'भ्रांति विलास' काव्य की संरचना की। निम्नलिखित बांग्ला साहित्य के लेखक तथा

नाटककार थे–चारु चंद्र बनर्जी, इंदिरा देवी, अनुरूपा देवी, निरूपमा देवी, सुरिंद्र मोहन मुखर्जी, राखाल दास बनर्जी, गोकुल चंद्र नाग, सिलजा नंद मुखर्जी, विभूतिभूषण बनर्जी, रविंद्र नाथ पैत्र, राजशेखर बसु, प्रबोध कुमार सान्याल, सीता देवी और शांता देवी।

संदर्भ

रमेश नन्दन: भारतीय पत्रकारिता का इतिहास, 2008
संजीव सिंह: ब्रिटिश भारत में प्रेस, 2009
हरिमोहन: आधुनिक जनसंचार और हिन्दी, 2006.
जय प्रकाश पाण्डेय: आधुनिक जनसंचार माध्यम में हिन्दी, 2015.
कृष्ण कुमार रत्तु: आधुनिक मीडिया एवं दृष्टि, 2012
महेन्द्र मलहोत्रा: आधुनिक मीडिया एवम् समाचार, 2012

वैश्वीकरण की राजनीति और भारत

अंजनी कुमार घोष

सह प्राध्यापक, स्नातकोत्तर राजनीतिशास्त्र विभाग, एस एस कॉलेज, जहानाबाद, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ और उसके नेतृत्व में पूर्वी यूरोपीय देशों में साम्यवाद के अधीन सर्वाधिकारवादी सरकारों की स्थापना हुई। इसके बाद पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच एक लम्बा शीत युद्ध चला। परिणामस्वरूप विश्व में अनेक ऐसी घटनाएँ घटी जिससे पूरा विश्व प्रभावित हुआ, परंतु बीसवीं सदी के अंतिम दशक में 'ग्लासनोत्म' और 'पेरेस्त्रेइका' की नीति के कारण सोवियत साम्यवादी व्यवस्था का विघटन हुआ और दो ध्रवीय से एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था बना। राज्य नियंत्रित आयोजनागत विकास के स्थन पर माँग और पूर्ति से संचालित बाजारी अर्थव्यवस्था को अपनाया गया। आर्थिक नीतियों में एक दूसरे के कट्टर विरोधी पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी का एकीकरण हो गया। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली से मीलों दूर साम्यवादी चीन ने छद्म तरीके से पूँजीवादी नीतियों को अपना लिया। सोवियत संघ के विघटन के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व की एकमात्र महाशक्ति के रूप ऊभर कर सामने आया। अमेरीका के नेतृत्व में 'विश्वबैंक', 'अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष' तथा 'गैट' के स्थान पर आस्तित्व में आए W.T.O (अंतरराष्ट्रीय व्यापार संगठन) ने आर्थिक क्षेत्र में जिस नीति को अपनाने के लिए तृतीय विश्व के देशों पर दबाब डाला उसे L.P.G अर्थात् Liberalization (उदारीकरण), Privatization (नीजीकरण) तथा Globalization (वैश्वीकरण) की नीति कहा जाता है।

उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियाँ एक दूसरे के साथ इतना अवगुठित है कि उन्हें पूरी तरह से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। वैश्वीकरण दो धारी तलवार है। विकास की संभावनाएँ दिखाती है तो विनाश के भी इसमें पर्याप्त तत्व मौजूद हैं। आदित्य निगम ने इसे 'उपनिवेश्वाद का नया दौर' की संज्ञा दी है।[1] न्यूयार्क टाईम्स के विदेशी मामलों के विशेषज्ञ टॉम्स एल0 फिडमैन का कहना है कि भूमंडलीकरण का अर्थ है- अमरीकीकरण अर्थात बीग मैक्स से मिकी माउस तक का विश्व के पैमाने पर विस्तार करना।[2] वाशिंगटन आमराय में यद्यपि इस बात को नकारते हैं, किंतु फ्रांसीस फुकुयामा स्पष्ट कहते है-

> *''मैं समझता हूँ कि भूमंडलकरण अमरीकीकरण ही है और यही कारण है कि कुछ लोग इसे पसंद नहीं करते।''*[3]

शाब्दिक रूप से वैश्वीकरण का तात्पर्य विभिन्न देशों द्वारा अपनायी जानेवाली उन आर्थिक नीतियों से है, जिनमें उतपत्ति के साघनों श्रम पूँजी, टेक्नालॉजी, कच्चा माल तथा विचारों के आदान-प्रदान में किसी प्रकार की कानूनी बाधा न हो अर्थात् वैश्वीकरण के अंतर्गत एक देश स्वयं को शेष विश्व के साथ मुक्त भाव से जोड़ने का प्रयास करता हो।

भारत में वैश्वीकरण को अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के पथ पर ले जाने के लिए नये ईंधन 'L.P.G.' के प्रमुख घटक के रूप में वर्ष 1991-92 में उस समय अपनाया गया जब वर्ष 1990-91 में उत्पन्न आर्थिक संकट, जो मुख्य रूप से इराक-अमरीकी हमले से कच्चे तेल की अंतरराष्ट्रीय कीमतों में आये उछाल से भारत के आयात बिल के कई गुना बढ़ जाने का परिणाम था। इससे उबरने के लिए अपनायी गयी नीतियों में नियंत्रणों को हटाया गया, विनियमों को ढ़ीला किया गया, विदेशी निवेशकों को भारत में निवेश करने के लिए उन्हें न केवल आमंत्रित किया गया बल्कि उन्हें वे समस्त सुविधाएँ प्रदान की गयी, जिनकी वे माँग करते चले आ रहे थे। घरेलू उद्यमियों को भी अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गयी। सरकारी नियंत्रण अर्थात् लाइसेंस एवं इंस्पेक्टर राज को समाप्त किया गया। आर्थिक क्षेत्र के उन्मुक्त वातावरण में उद्यमियों तथा निवेशकों को खुले दिल से कार्य करने का अवसर प्रदान किया गया। निजीकरण के नाम पर सार्वजनिक उपक्रमों को निजी क्षेत्र के उन्मुक्त वातावरण में उद्यमियों तथा निवेशकों को खुले दिल से कार्य करने का अवसर प्रदान किया गया। निजीकरण के नाम पर सार्वजनिक उपक्रमों को निजी क्षेत्र में हस्तांतरित किये जाने की नीति अपनायी गयी। वैश्वीकरण को हर मर्ज की दवा बताते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था को शेष विश्व से सक्रिय रूप में जोड़े जाने की नीति अपनायी गई। विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी के बिना रोके-टोके के आने के सारे मार्ग खोल दिए गए। वैश्वीकरण के समर्थकों ने बढ़-चढ़ कर यह दावा किया कि इससे न केवल विकासशील देशों के आर्थिक विकास में तेजी आएगी, बल्कि बेरोजगारी को नियंत्रित करते हुए विश्व निर्धनता को दूर करने में मदद मिलेगी।

निजीकरण के प्रारंभिक दौर में सरकार ने घोषणा की कि घाटे में चल रहे सार्वजनिक उपक्रमों को ही बेचा जाएगा। तत्कालीन केन्द्रीय वित्तमंत्री डा0 मनमोहन सिंह ने वर्ष 1993-94 का बजट पेश करते हुए कहा ''इसमें किसी को भी संदेह नहीं होना चाहिए कि तमाम प्रयासों के बावजूद कुछ सार्वजनिक उपक्रम लगातार घाटे में चल रहे हैं, ऐसे सार्वजनिक उपक्रमों को निजी क्षेत्र में हस्तांतरित करना सरकार की प्राथमिकता होगी।''[4] वर्ष 1997-98 के बजट भाषण मे तत्कालीन वित्त मंत्री पी0 चिदम्बरम ने कहा था- ''संयुक्त मोर्चा सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की ऐसी कम्पनियों की पहचान करेगी जिन्हें तुलनात्मक रूप से लाभ प्राप्त है, ऐसी कम्पनियों को सहायता देकर वैश्विक महारथी बनाया जाएगा।''[5] लेकिन पिछले अनुभवों को देखा जाय, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार ने उन उपक्रमों को भी बेचा है जो लाभ अर्जित कर रही थी। जैसे- 'बालकों', 'विदेश संचार निगम लिमिटेड', 'सी0एम0सी0', आई0बी0पी0 आदि।

विश्व में वैश्वीकरण और उनके समर्थकों की वार्षिक बैठक की स्थली डावोस, स्वीट्जरलैंड का एक शहर ही नहीं बल्कि वैश्वीकरण का प्रतीक बन गया है। वह यह मानता है कि विश्व में पूँजी का संचरण मक्त रहें, राष्ट्रराज्यों की सीमा के प्रतिबंध सांस्कृतिक धार्मिक अथवा नस्ली आग्रह इन सबसे परे पूँजी का बहाव अपना स्वरूप अपनी धारा का रूख खुद तय करेगा और इसके उपासक किसी देश, जाति या धर्म की छाप से अलग, निरंतर धुमंतू विश्व नागरिक होगें। परंतु यह दर्शन कइयों को अस्वीकार है। इसलिए भूमंडलीकरण के समर्थकों और विरोधियों के बीच भारत समेत पूरी दुनिया में दावोस की वार्षिक बैठक सड़कों से लेकर मीडिया तक में दो अतिवादी और परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाएँ पैदा करती है। एक ओर सैम्युल हंटिंगडन जैसे वे लोग है जिनके अनुसार ''वैश्वीकरण राज्य के बजाय सिर्फ बाजार के प्रति निष्ठा माँगता है, और बाजार के यायावर उपासक सम्पन्नता की होड़ में लगकर उदात्त राष्ट्रीय भावनाएँ और उनसे निकली देश विरादरी या परिवारिक जिम्मेदारियाँ

भूल रहें है, वे खुद को विश्व नागरिक मानते हैं, किसी देश विशेष का नागरिक नहीं।''[6] अत: अगर उनके इर्द-गिर्द बाजार से केट लोगों किी विपन्न भीड़ हो तो वे उससे विचलित नहीं होते। ऐसी सोच के चलते दुनियाँ में सम्पन्न और विपत्र देशों और उन देशों के भीतर भी पूँजीवाद के बीच खतरनाक, गुप्त और गहरी खाइयाँ बनती जा रही है। यदि हम न चेते तो एक दिन इनकी हलचलों से ऐसा भीषण जलजला आएगा, जो विश्वभर में सम्पन्नता की इन सभी मायानगरियों को एक साथ देखते-देखते मिट्टी मे मिला देगा। जब ऐसा होगा तो दुनियाभर में सिर्फ बाजार ही नहीं राज-समाज और नीति-निर्माण सभी बुरी तरह प्रभावित हो जाएँगें, आश्चर्य नहीं, कि डर और शंका का लाभी उठाकर साम्राज्यवादी तानाशाह सत्ता हाथ में ले लें। अभी हाल में अमरीकी और अन्य विकसित देशों में आर्थिक मंदी आने से तथा आउट सोर्सिग से जो बेरोजगारी बढती है तथा भारत चीन में नए और पुराने ढर्रे के रोजगारों में लगे लोगों के बीच जैसी विषमता दिख रही है, उसे वैश्वीकरण विरोधी घड़ा आनेवाली इसी अफरा-तफरी का पूर्वानुमान मान रहा है।

वैश्वीकरण के समर्थक कहते हैं कि हटिंगउन जैसे बाल की खाल खींचने वाले लोग बेकार घबरा रहे हैं। देशों की सांस्कृति और नागरिकों की मानसिकता तथा जीवनशैली दो अलग-अलग बातें हैं। यह ठीक है कि वैश्वीकरण से देशों की सांस्कृतिक अस्मिता सुरक्षित नहीं है क्योंकि उसे सीानीय तत्व ही प्रत्येक देश में अलग-अलग गढ़ते हैं। और गढ़ते रहेगें। भूमंडलीकरण लोगों में एक नयी तरह की मानसिकता और भिन्न तरह की जीवनशैली रच रहा है। इस सोच और जीवन शैली का स्थानीय संस्कृति से टकराव होना कोई जरूरी नहीं है। आखिर वैश्वीकरण भी तो ढ़ाई सौ वर्ष पुरानी राष्ट्रराज्य की परम्परा के विकास से ही ऊपजा है उसके प्रतिनिधियों की जीवनशैली या उनके विचार उसी मूल परम्परा के दुश्मन भला कैसे बन सकते है। वैश्वीकरण से तो इच्छुक देशों को उपलब्ध हो सकने वाले बाजार पूँजी निवेश संभावनाएँ और मुनाफे की मात्रा अकल्पनीय तौर से बढ़ेगी। वे यहाँ चीन का उदाहरण देते हैं। आज वहाँ हो रहा पूँजी निवेश, विश्व के सबसे सम्पन्न देश अमरीका से भी अधिक है। भारत में भी इससे लाखों नौकरियाँ और बड़े साझा उपक्रम बने हैं, तथा वर्षों बाद हमारी सिसकती-खिसकती विकास दर में भी तेजी दिख रही है। इसलिए पूँजी, श्रम और उत्पादों के मुक्त संचरण से डर कैसा? हमें तो इसका हाथ बढ़ाकर स्वागत करना चाहिए।[7]

स्थूल अर्थो में ये तमाम बातें सुनने में तो सही लगती है, लेकिन सूक्ष्म अर्थों में हम देखते है। तो इन तर्कों में कई तरह की खामियाँ नजर आती हैं। एक दर्शन के रूप में मुक्त बाजार चाहें जितना ही व्यापक और सूक्ष्मदर्शी क्यों न हों, यह मानना ही पड़ेगा कि उसके जमीन पर उतारनेवाला मनुष्य स्वभाव आज भी अनिश्चित और परिवर्त्तनशीन भी है। इसलिए हम कई बार देखते हैं कि पूँजी, श्रम और उत्पादों का स्पष्ट किताबी मान्यताओं या दो-टूक अदालती आदेशों के आधार पर दुनिया में संचरण उतना नहीं होता जितना कि धर्म, जाति और नस्ल से जुड़ी सांस्कृतिक मान्यताओं और सत्तारूढ़ राजनैतिक पार्टियों के हितों के आधार पर। इसलिए भूमंडलीकरण का सही और ईमानदार मूल्यांकन करने के लिए हम सिर्फ दार्शनिक वक्तव्यों एवं तर्कों के सहारे बहुत दूर तक नहीं जा सकते हैं- दरअसल 21वीं सदी के इस विराट दर्शन और उसके फलादेशों की पड़ताल दुनिया के विभिन्न देशों की व्यवस्था ओर उसके अंतरविरोधी के साथ करनी पड़ेगी। हमे स्वीकार करना पड़ेगा, कि कई बार अपने देशों की नीतियाँ बनाते वक्त लोकतांत्रिक पूँजीवाद समर्थक सरकारें भी अपने फैसले कर्तव्यवश कम और पार्टी हित में अधिक लेती हैं। पूँजी की आवक-जावक के लिए फाटक खोलते और बंद करते हुए अमरीका या यूरोप या पड़ोसी पाकिस्तान की सरकार जो तर्क देती है, वे

इसलिए कभी तर्कसंगत तो कमी अनर्गल भी प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विकासशील देशों में रोजगार देने का दावा करती है जबकि अमरीका की लगभग आधी आबादी आज भी बेरोजगार है, कितना बड़ा फरेब है, और भूमंडलीकरण की राजनीति का सच भी। ऐसे अवसर पर गाँधी जी की यह उक्ति याद आती है कि ''दुनिया की जनसंख्या चाहे कितनी भी क्यों न हो धरती माता सबका पेट भी सकती है परंतु एक लालची का पेट नहीं भर सकती है।''[8] इस तरह वैश्वीकरण की राजनीति के संबंध मे रामविलास शर्मा की यह पंक्ति सत्य प्रतीत होती है कि:-

''मुझको हर बात का जवाब न दो,
प्यास पानी की है, शराब न दो।
जिसको पढ़कर हम गिरे इतना,
कम से कम अब तो वह किताब न दो।''

देश के भीतर भी विभिन्न प्रकार के अलाभकारी सार्वजनिक उपक्रम लगाने, बेचने या बंद करने के फैसले कभी राष्ट्रहित की चिंता से उपजते है तो कभी किसी गुप्त स्वार्थों की पूर्ति और गठजोड़ के पक्ष मे पेश किया जा रहा एक-एक छलावा से होते हैं। इसलिए मुक्त मंडी और उससे जुड़ी मानसिकता कितनी उचित या अनुचित है इसका फैसला हम ताबड़तोड़ दिए जा रहे आत्यंतिक किस्म के लोकप्रिय धारणाओं के बूते नहीं कर सकेगें। क्योंकि फैसला स्याह या सफेद नहीं हो सकता।

लेखक टॉम्स मान ने कहा था, कि हमारे समय में मानव नियति अपने को राजनीति के माध्यम से व्यक्त करती है। भारत में भूमंडलीकरण भी राज्य और राजनीति से दो स्तरों पर जुड़ कर हमारे सामने आया है। एक घटना के स्तर पर और दूसरा राजकीय स्तर पर एक तरह से तो इससे भारत का भला हुआ है। क्योंकि एक बार व्यक्तिगत इच्छा या गठजोड़ की जरूरतों के चलते नई आर्थिक नीतियाँ चल पड़ी तो उनके प्रभाव ने सभी पार्टियों को इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि अपनी पारम्परिक नियतिवाद कपमंडूकता को छोड़कर वे अपनी स्थिति और नीतियों की निर्गम परीक्षा करें। वे खुद को अपनी क्षमताओं अक्षमताओं के आइने में देखें और बाहर आकर शेष संसार के बाजारों से उनके राज समाज से चुनौतीभरा साक्षात्कार करें, तभी वह सत्ता में टिक सकती है। दरअसल राजनीति राज्य और समाज दोनो क्षेत्रों में भारतीय स्थिति को जटिल बना दिया है। हम सबको साहित्य और अकादमिक शोध रपटें ही नहीं बल्कि मुक्त बाजार भी आज इस बात पर विचलित और बाध्य कर रहा है, कि अपनी गरीबी की रेखा या मिश्रित अर्थव्यवस्था या प्रतिव्यक्ति आय संबंधी पुरानी भावुक अवधारणाओं को बदलें। एक तरफ हम मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी भाषा और उसके विश्व बाजार के महत्त्व को माने, दूसरी तरफ खुलते जा रहे देशी घरेलू बाजार की आम जनभावनाओं से अपने असली आर्थिक, राजनीतिक रिश्ते और सरोकार भी ठीक से समझें, और भाषाई दुराग्रह छोड़कर पैसा उन भाषाओं के विकास में पूँजी न्योतें, लगायें, जो बाजार-व्यापार फैलाने में मददगार हो। जीवनशैली तथा अध्ययन के क्षेत्रों में अपनी परम्परा से लगभग उखड़े अनेक भारतीय पूँजीपतियों, अहिन्दीभाषी, बुद्धिजीवियों और राजनैतिक दलों के आगे वैश्वीकरण दो टूक प्रश्न पूछ रहा है। क्या वे भारतीय भाषाओं के अध्ययन को अपने लिए पूरी इतना जरूरी है तो क्या वे अपने पुराने सोच से उबर कर हिन्दी जैसी व्यापक भाषा से अंतरगता बनायेगें? कड़ी बौद्धिक तथा भौतिक चुनौतियों का सामना हमारे राज-समाज और बुद्धिजीवियों ने अक्सर उस कछुए की तरह किया है जो चुनौती सामने आने पर अपने खोल मे सिर-पूँछ छुपा कर अपने को स्वत: सम्पूर्ण और सुरक्षित मानने

का भ्रम पाल बैठते है। जब भाषाओं पर सवाल उठता है तो हम अनेकता में एकता के अथवा हिन्दी हटाओ, अंग्रेजी को सेतू बनाओ या त्रिभाषा जैसे एक गड़बड़ फार्मूले की धूँध छोड़ देते हैं। निजी बनाम सार्वजनिक क्षेत्र की बहस उठी तो हमारे नेता दो टूक राय देने के बजाय गठजोड़ के घटको से खर्चीला और अनुत्पादक समझौता कर लेते हैं। पर ऐसा अवसरवाद नई डगर पर हमें बहुत दूर नहीं ले जा सकेगा। विश्वमंडी में जितनी दूर हम आ गए हैं, वहाँ आकर हमें अपना कच्छप अवतार छोड़ना होगा। कुएँ से निकले बिना हम कूपकंडको के लिए दूसरा कुँआ नहीं बना सकते। हमारे ज्यादातर अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और आर्थिक पत्रकारिता करने वालों का नकली चेहरा समाजवाद और मार्क्सवाद की माला जपने के बाद भी अपने से अलग वर्गों से भाषा और रोजमर्रा के संदर्भों में कटी हुई है। बदलती हुई परिस्थितियों के साथ बदलने और समय के साथ चलने में खुद को असमर्थ पा कर ही प्रायः यह पूरा वर्ग

भूमंडलीकरण पर घायल शेर की तरह दहाड़ता रहा है या फिर अंदर ही अंदर अपनी समृद्धि की गुप्त गाटियॉ बिछाकर वह इसका तर्क बिना समर्थन कर रहा है। उनकी तुलना में जमीनी स्तर के कामों और ग्रामीण स्तर की अनगढ़ भाषाई पत्रकारिता राज समाज की बदलती जरूरतों और पूँजी-संचरण की दिशा और खतरों से सचेत करने में खुद को कहीं अधिक व्यवहारिक, सक्षम और ईमानदार प्रमाणित कर रही है। रातोरात अमरीकी या ब्रिटिश लहजे की कामचलाऊ अंग्रेजी और कम्प्यूटर गणना पद्धतियाँ अपना कर नई तरह की नौकरियों से अपना भविष्य सवारने में और साथ ही भाषाई माध्यम से देश की राजनीति समझने और बाँचने में यह वर्ग देरी नहीं लगा रहा उनकी तुलना में उनसे कहीं ज्यादा पढ़े लिखे उच्च मध्य वर्ग के लोग अभी भी असली भारतीय इतिहास के कोहरे और अंतर्द्वनदों के अन्भ्यस्त है। अपने स्वार्थों के बुते वे वैश्वीकरण से या तो उत्कट प्रेम करते हैं या वेपनाह धृणा। इसे गहरायी से समझने की कोशिश वे प्रायः नहीं करते।

युगसंधि की इस हलचल भरी बेला में देखने और समझने लायक सबसे बड़ी जरूरत यह है कि राष्ट्र-राज्य का मूल जनहितकारी स्वरूप बाजार के अनियंत्रित दवाबों से एक सीमा से अधिक विकृत न हो, और जनप्रतिनिधियों शासकों के पास हर वक्त हर हाल में स्वार्थपरकता और हिंसक प्रवृतियों पर लगाम साधने लायक न्यूनतम क्षमता और इच्छा शक्ति बची रहे। यह जरूरत है, ताकि सभ्य समाज को मत्सय न्याय से बचाया जा सके।

इसके बिना अर्निबाध पूँजी बहाब को लम्बे अरसे तक कायम नहीं रखा जा सकता। इसके लिए हमारे पूँजीपतियों प्रबंधन विशेषज्ञों और आर्थिक नीति-निर्धारकों को देशी राजनीति के प्रति अपना चुहलभरा अवहेलना भाव त्याग कर अपने राष्ट्र-राज्य के कायदे-कानूनों को पूरा आदर और महत्व देना होगा। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि देशों के भीतर पूँजी के इस महासागर में अभी भी उठ सकने वाले झंझावातों और सुनामियों के प्रकोप से अपने उद्यमियों और श्रमिकों को यथासंभाव रक्षा कर सकने योग्य राजकीय संस्थान मजबूती से कायम रहे। इसके लिए राजनेतओं और पूँजीपतियों, दोनों को अपनी नजरें सिर्फ पूँजी की धारा से हटाकर देश के भीतर बन रही परिस्थितियों पर भी केन्द्रित करनी होगी। उन्हें अपने घरेलू उपक्रमों की कार्यक्षमता उसके श्रमिकों की हुनरमंदी और निवेश तीनों का लगातार नवीनीकरण करना होगा, भले ही कई बार यह करना खर्च क्यों नहीं बढ़ाता हो। अंत में, चटपट कमाए मुनाफे से छकी सरकारों तथा कारपोरेट जगत को अपने राजमिडास जैसे लालच और अहंकार को नियंत्रित करना ही नहीं सीखना होगा, दुर्दिन के लिए पर्याप्त बचा कर न

रखने और बिना सोचें समझे कमाया पैसा बर्बाद करने की नवधनाढ्य प्रवृतियों से भी छुटकारा पाना होगा क्योंकि:-

''अब आँधियां ही करेंगी रोशनी का फैसला,
जिस दीये में तेल होगा जितना, वह करेगा प्रकाश उतना।''

संदर्भ सूची

1. आधुनिकता के आइने मे दलित पृ0 397 प्रकाशक वाणी प्रकाशण नई दिल्ली, 2005
2. सांस्कृतिक समुच्चय पृ0 52 वार्षिकी - 2005
3. सांस्कृतिक समुच्चय पृ0 57, 58 वार्षिकी - 2005
4. हिन्दुस्तान दैनिक 1 मार्च 1993
5. हिन्दुस्तान दैनिक 2 मार्च 1997
6. दलित साहित्य एवं चिंतन का दलित समाज के उत्थान में योगदान पृ0-82 यू0जी0सी0 लघु शोध प्रबंध, शोधप्रज्ञ- डा0 शिववन्द्र
7. हिन्दुस्तान दैनिक सितम्बर 2005
8. विचार वल्लरी पृ0 25 कुमार बुक डिपो, अशोक राजपथ, पटना।

संस्कृत

महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० प्रसून दत्त सिंह

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा

भवभूति के तीनों रूपकों में उनके परिवार के विषय में चर्चाएँ हैं। महावीरचरित की प्रस्तावना में सुत्रधार, नाटक के रचयिता का परिचय देते हुए कहता है कि दक्षिणपथ में पद्मपुर नामक नगर में तैत्तिरीय शाखा के काश्यपगोत्री, पंक्तिपावन, पंचाग्नि के उपासक, अंगीकृत के निर्वाहक, सोमपान करने वाले, 'उदुम्बर' इस उपाधि के धारण करने वाले, ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण रहते हैं। उसी वंश में वाजपेय यज्ञ करने वाले, कीर्तनीय नाम वाले, पवित्र यश वाले महाकवि भट्ट गोपाल के पंचमपौत्र, पवित्र कीर्ति नीलकंठ तथा जतुकर्णी के पुत्र श्रीकण्ठ इस उपाधि से समन्विय, व्याकरण, मीमांसा और तर्कशास्त्र के आचार्य कवि भवभूति हमारे मित्र हैं, यह आप भी जानें। महर्षियों में अंगिरा के सदृश एवं परमहंसों में प्रधान अन्वर्थनामा ज्ञाननिधि उनके गुरू थे। भवभूति को सूत्रधार श्रीत्रियपुत्र भी कहता है।

उत्तररामचरित की प्रस्तावना में भवभूति के विषय में संक्षिप्त किन्तु महावीरचरित सें साम्य रखता हुआा तथ्य मिलता है। केवल उनके गुरू के नाम की चर्चा नहीं है।

मालतीमाधव में जो परिचर्चा है वह महावीरचरित की तरह ही है किन्तु इसमें विशेष बात यह है कि कवि का नटों से मैत्री-भाव माना गया है तथा कहा गया है कि उन्होने स्वयं गुण-बहुला इस कृति को हमारे सूत्रधार के हाथों में समर्पित किया है। इसके साथ ही कवि की अपनी घोषणा होती है कि जो व्यक्ति हमारे प्रति या हमारे कृतियों के प्रति अवज्ञा का भाव रखते हैं, वे अत्यंत तुच्छ या सीमित बुद्धिवाले होते हैं, उनके लिए हमारा यह रूपक-प्रणयन रूप प्रयास भी नहीं है। मेरा कोई समानधर्मा-समानगुणवाला अतएव मेरी रचनाओं का मर्म जाननेवाला व्यक्ति अवश्य ही उत्पन्न होगा, क्योकि यह काल असीमित है और यह पृथ्वी भी अत्यंत विस्तीर्ण है। कवि अपने गुणों को महनीय मानता है क्योंकि अपने गुणों के अनुरूप नाम वाले भगवान ज्ञाननिधि उसके गुरू हैं।

महावीरचरित और मालतीमाधव के उल्लेखों में से एक अन्तर दृष्टिगत होता है। महावीरचरित में महाकवे पञ्चमः सुगृहीतनाम्नों भट्टगोपालस्य पौत्रः यह निर्देश मिलता हैं, जबकि मालतीमाधव में महाकवेः पंचमः यह नहीं उद्धृत है। टीकीकारों ने महाकवेः को भट्टगोपालस्य का विशेषण बताया है जबकि पंञ्चमः को पौत्र का, किन्तु एक साथ नहीं रखकर दोनों को दूर-दूर रखना उचित प्रतीत नहीं होता। यदि यह अर्थ होता कि महाकवि और अन्वर्थ नामवाले भट्टगोपाल के पंचम पौत्र, तो कवि ने ऐसा लिखा होता कि महाकवेंः सुगृहीमनाम्नों भट्टगोपालस्य पंचमः पौत्र, जबकि उन्होने लिखा है - तत्र भवतो वाजपेयमाजिनो महाकवेः सुगृहीमनाम्नों भट्टगोपालस्य पंचमः पौत्र इससे दस अर्थ की अधिक संभावना होती है कि महाकवि नामक व्यक्ति से संशश्रेणी में पांचवे भवभूति रहे होंगे।इस तरह भट्टगोपाल में से दो श्रेणी ऊपर महाकवि नाम के भवभूति के पूर्वज रहे होंगे।

तीनों रूपकों में प्राप्त संकेतों से यह स्पस्ट होता है कि भवभूति का जन्म तैत्तिरीयशाखा के, काश्यपगोत्र के श्रोत्रिय पंक्तिपावन, पंचाग्नि के उपासक, उद्म्बर उपाधि को धारण करने वाले तथा वाजपेय यज्ञ करनेवाले ब्रह्मणों के श्रेष्ठ कुल में हुआ था। अपनी उपस्थिति से पंक्ति में बैठनेवालों का पवित्र करनेवाले ब्राह्मण को पंक्तिपावन की जाता था। ऐसे ब्राह्मण वेदांगों में निष्णात होते थे, ज्येष्ठ साम पढे होते थे, नचिकेम अग्नि में होम के संपादक होते थें, जो पंचाग्नि रखते थे, त्रिसुपर्णा पढे रहते थे, वेदाध्ययन के उपरानत समावर्तन स्नान किये रहते थे तथा ब्रह्म-विवाह वाली संस्कृतमाला की सन्तान होते थे।

मनु ने वेदज्ञ, सहस्त्र गायों का दान करनेवाले एवं सौ वर्ष का अवस्था वाले ब्राह्मण को पंक्तिपावन कहा है। इस तरह यह स्पष्ट होता है कि भवभूति पंक्तिपावन ब्राह्मण थे। वे प्रख्यात क्षत्रिय ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुए थे, जिस कुल में वाजपेय यज्ञ भी किए गए थे। इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल था। पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माँ का नाम जतुकर्णी। भवभुति ने सवयं भी कहा है कि पूर्वज तत्वनिर्णय के लिए निरन्तर शास्त्र-श्रवण श्रेष्ठ कर्म यथा यज्ञादि-अनुष्ठान एवं तड़ाग आदि के निर्माण के लिए धनों का, संतान के लिए पत्नी तथा तपस्या के लिए आयु का आदर करते थे।[1]

इनके अपने ही नाम के संबंध में टीकाकारों ने विवाद खड़ा कर दिया है। कुछ लोग श्रीकण्ठ इनका वास्तविक नाम तथा भवभूति को उपाधि मानते हैं। जगद्धर श्रीकण्ठ को भवभूति का वास्तविक नाम मानते हैं, और भवभूति को उपाधि श्री सरस्वती कण्ठे यस्य स श्रीकण्ठः। तद्वाचक पदलान्छनं चिन्ह यस्य सः नाम्न श्रीकण्ठः प्रसिद्ध या भवभूतिरित्यर्थः।[2]

घनश्याम ने भी श्रीकण्ठ को दनका नाम माना है, जबकि भवभूति को उपाधि श्रीकण्ठ नामा साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः दतिश्लोक निर्माणवेलागुणावशादाननदमरिते न राज्ञैव भवभूतिरिति ख्यायितः कविः।[3] वीरराघव[4], त्रिपुरारि[5], भी श्रीकण्ठ को ही भवभूति का उचित नाम मानते हैं। ये विद्वान श्रीकण्ठ को इनका वास्तिविक नाम बतलाते हैं और भवभूति को उपाधि। श्रीकण्ठ इति पदं याब्दों लान्छनं नाम यस्य सः अथवा श्रीकण्ठस्थ शिवस्य पदे पादावेव लांछनं यस्य इति श्रीकण्ठः। इनके अनुसार साम्बापुनातु भवभूति पवित्रमूर्तिः जथा गिरिजायाः कुचौवन्दे भवभूतिसिताननौ, इन उद्धरणें से स्पष्ट होता हैकि भवभूति यह उपाधि विद्वत समाज द्वारा प्रदत्त थी, किन्तु अन्य विद्वान ऐसा नहीं मानते काणे ने उचित सम्मति प्रकट की है कि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में भवभूति को छोड़कर श्रीकण्ठ नाम नहीं आया है।

अतः भवभूति ही उनका वास्तविक नाम था।[6] भवभूति के कण्ठ में वाग्देवी विराजमान रहती थीं अतः उनके लिए श्रीकण्ठ यह विशेषण प्रयुक्त हुआा था।[7] श्रीकण्ठ इस उपाधि से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे संस्कृत पद्यों का सुन्दर गायन करते रहें होंगे तथा विद्या को कण्ठस्थ करने का उन्हे अपूर्व अभ्यास रहा होगा। जो लोग श्रीकण्ठ नाम के लिए यह तर्क देते हैं कि पिता का नीलकण्ठ होने से पुत्र का नाम श्रीकण्ठ ही सम्यक प्रतीत होता है, वे यह भूल जाते हैं कि नीलकण्ठ के पिता का नाम भट्टगोपाल था और उने भी पहले उनके पितामह का नाम महाकवि था। वसतुतः भवभूति को ही उनका वास्तविक नाम मानना उपयुक्त है, सवयं भवभमति के द्वारा मालतीमाधव में भवभमतिनामा इस निर्देश से भी यही विचार संगत प्रतीत होता है। वाक्पतिराज, राजशेखर, कलहण,

गोवर्धनाचार्य आदि ने भी अपने ग्रन्थों में भवभूति इस नाम की चर्चा की है। दीपशिखा कालिदास, आतपत्रभरवि, घष्टामाघ, आदि उपाधियों से उकत कवि नहीं प्रचलित रहें हैं, प्रत्युत् उपाधिविहिन नामों से ही वे प्रसिद्ध रहें हैं, अतः भवभूति यह महाकवि की उपाधि थी, यह कहना सर्वथा उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। वसतुतः श्रीकण्ठ ही उनकी उपाधि रही होगी या घर के लोगों के लिए प्रचलित उपनाम रहा होगा। भवभूति के संबंध में तथा उम्बेक का उभेद निरूपण या पार्थक्य निरूपण इस संबंध में श्री काणे तथा मिराशी ने विस्तृत विवेचन से इसे स्पष्ट किया है कि दोनों व्यक्तित्व के नाम थे, अतः प्रकृत में उस पर विचार नहीं किया जाता।[8]

भवभूति ने अपने गुय का नाम महावीरचरित और मालतीमाधव में ज्ञाननिधि बतलाया है। महावीरचरित में एक स्थान पर प्रकारान्तर से उन्होंने अपने गुरू ज्ञाननिधि की चर्चा की है - किसेकदेशेन महाज्ञाननिधेर्माहात्म्यम पहि्यते।[9] अपने गुरू को उन्होंने अंगिरा ऋषि के समान तथा परमहंसो में अग्रगण्य एवं यथार्थनामा बतलाया है जिससे स्पष्ट होता है कि वस्तुतः ज्ञानविज्ञान के निधि थे। स्वयं भवभूति का ज्ञान अत्यन्त विशद् था। स्वयं वे विदर्भभूमि में जन्में थे जो सरस्वती के पुत्रों की भूमि था।[10]

मालतीमाधव की प्रस्तावना में उन्होने स्वयं ही कहा है कि वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग इन समग्र शास्त्रों का अध्ययन-ऩल उनके रूपकों में प्रतिबिम्बित होता है। वाणी की प्रौढ़ि और उदारता तथा अर्थ का गौरव, इन दोनों को उनके पाण्डित्य और वैदग्ध्य के सम्मिलन ने अपूर्व प्रणाली से इन रूपकों में विनियोजित किया है।[11] मालतीमाधव का सूत्रधार इसमें श्रृंगार आदि विभिन्न रसें के सफल निबन्धन, पात्रों का यथार्थ प्रत्यंकन तथा विभिन्न कलाओं का निबन्धन पाता है।[12] कवि ने अपने इस प्रकरण को सर्वातिशायी बतलाया है।[13]

स्वयं वागधिष्ठात्री देवी उनकी वश्या हैं - वशंवदा।[14] प्रकृत में उनकी व्युत्पत्ति के संबंध में विस्तार अनपेक्षित है, अतः संकेत मात्र दिया गया है। केवल एक तथ्य का उनके जीवन के संबंध में विवेचन आवश्यक है और वह है भवभूति का समग्र जीवन अभावों तथानिराशाओं से परिपूर्ण होना। उनके रूपकों में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्हे अपने जीवन में दचित अभिव्यक्ति नहीं मिली। यही कारण है किउन्होंने अपने से पूर्ववर्ती किसी कवि का उल्लेख नहीं किया। केवल आदिकवि के प्रति उन्होंने सम्मान का भाव प्रदर्शित किया है।

कालिदास ऐसे अप्रतिम प्रतिमासम्पन्न कवि का भवभूति द्वारा अनुल्लेख समाज के प्रति उनके आक्रोश का सूचक है। जब दूसरे आदर नहीं करें तो व्यक्ति सवयं ही अपनी वस्तु का मूल्य लोगों को समझाना चाहता है। ये ब्रह्माणतियं देवी वाग्वाश्येवानुवर्तत, मुम्नां रसानां गहनः प्रयोगः,अस्ति वा कुतसिचदेवभूतं महादुभूतं विचित्ररमणीयोज्जवलं प्रकरणम् वे नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नःआदि अभिव्यक्तियाँ इसी को संकेतित करती हैं। परंच कवि को विश्वास है कि उसका समानधर्मा अवश्य होगा, जो उसकी रचनाओं के मर्म को समझेगा।

संदर्भः-

1. मालतीमाधव, 1/5.
2. वही, पृष्ठ 8 टीका से उद्धृत।
3. उत्तररामचरितम्, काणे, पृष्ठ 2.

4. श्रीकण्ठपदलांछनं पितृकृतनामेदम्। ख्र भवभूतिर्नाम साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः इति श्लोकरचनासन्तुष्टेन राज्ञा भवभूतिरिति ख्यापितः। किंचास्मैकवये ईश्वर एवं भिक्षारू पेणागत्य भूतिं दतवानिति वदन्ति। एवं च भवाद्मगवतो मूर्तियस्येति भवभूतिरित्यन्यर्थ इत्याहुः।
   - वीरराघव, महावीरचरित पर।
5. भवभूतिरिति व्यवहारे तसयैव नामान्तरम्।
   - त्रिपुरारि मालतीमाधव पर।
6. U.R.C., introduction, Kane, p.2.
7. लोकातिगकविशक्तिदर्शनाद्वाग्देवी नित्यकालमस्य कण्ठे वसतीति मत्वा तदानीन्तनैः भवभूतेः श्रीकण्ठ इति विशेषणं परिकल्पितम्।
   - महाकवि भवभूति, पृष्ठ 7.
8. द्रष्टव्य U.R.C., Introd, kane and Bhavbhuti, Mirashui.
9. महा0, पृष्ठ 74.
10. सोयिं सुभुपुरी विदर्भविषयः सारस्वतीजन्ममूः।।
    - वाल रा0 ए0, 10/74.
11. मालतीमाधव, 1/7.
12. वही, 1/4.
13. अस्ति वा कुतनिश्चदेवंभूतं महाद्भुत विचित्ररमणीय प्रकरणम्
14. उत्तर 0, 1/2.

संस्कृत

हमारे संस्कृति में संस्कार

मनीष कुमार भारती

शोध छात्र, संस्कृत, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

किसी भी देश एवं राष्ट्र का प्राण उसके संस्कृति होती है क्योंकि यदि कोई उसकी अपनी संस्कृति नहीं तो संसार में उसका अस्तित्व ही क्या? पसन्तुसंस्कृति का क्या अर्थ है भारतीयों से आर्य संस्कृति है यह नही बतलाया जाता है। लोग अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का अर्थ कहते है। संस्कृति परन्तु संस्कृति भाषा का शब्द है। इसलिए संस्कृति शब्द से अर्थ संस्कृत व्याकरण के अनुसार ही होना चाहिए। 'सम' उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से भूषण अर्थ में सुट् का आगत करके क्तिन् प्रत्यय करने से संस्कृति शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है। भूषण भूत सम्यक् कृति इसलिए भूषणभूत सम्यक् कृतियों का सत्पूर्ण क्षेत्र संस्कृति का क्षेत्र है।

पशु पक्षी कीट पतंगादि भोग योनियों में जीव की चेष्टायेंक रने में समर्थ होता है। इसलिए सम्यक् चेष्टा या कृति संस्कृति का प्रयोग मनुष्य के संबंध में ही किया जा सकता है। इसलिए मनुष्य की भूषण भूत सम्यक कृति या चेष्टा ही संस्कृति है।

जिन चेष्टाओं के द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख शांति प्राप्त करे वे चेष्टायें ही उसके लिए भूषण भूत सम्यक् चेष्टायें कही जा सकती है अथवा मनुष्य की आधि भैतिक आधि दैविक और अध्यामित्क उन्नति के अनुकूल चेष्टायें ही उनकी भूषण भूत सम्यक् चेष्टाऐ है या मनुष्य की व्यैक्तिक सामाजिक आर्थिक राजनैतिक धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में लौकिक-परलौकिक अभ्यूदय के अनुकूल देहेन्द्रय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की चेष्टा ही उसके भूषणभूत सम्यक् चेष्टा या संस्कृति है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य के लौकिक-पारलौकिक सर्वाभियुद्य के अनुकूल आचार-विचार हों संस्कृति है

किसी जाति के लिए लौकिक-पारलौकिक विश्वास का आधार उस जाति का दर्शन शास्त्र होता है। दर्शन शास्त्र सत्यासत्य विवेचनात्मक ज्ञान परख होता है। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, इस नाना नाम रूपमय जगत का सच्चा स्वरूप क्या है इसका कर्ता कौन है। वह जड़ है या चेतन और परम सुख शांति का क्या स्वरूप है आदि का समाधान दर्शन शास्त्र से होता है। कोई जाति अपने दर्शन शास्त्र के अनुसार इहलोक और परलोक का जो स्वरूप निर्णय करती है उसी के अनुरूप लौकिक-पारलौकिक उन्नित का मार्ग प्रदर्शक उस जाति का आचार शास्त्र होता है। आचार शास्त्र या धर्म शास्त्र विधि निरोधात्मक कर्तव्य संबंधी आज्ञा प्रदायक कर्म परक होता है। किसी जाति का धर्म शास्त्र अपने दर्शन शास्त्र प्रतिपादित लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय में सहायक जिन कर्मो या आचार विचारों का विधान करता है। वे कर्म ही उस जाति के लिए कर्त्तव्य होते है और उन्ही के द्वारा वह जाति अपनी लौकिक-पारलौकिक उन्नित मानती है। उससे स्पष्ट है कि किसी जाति के धर्म शास्त्र

द्वारा प्रतिपादित आचार-विचार ही उस जाति की संस्कृति का सवरूप होता है। अर्थात संस्कृति का आधार धर्म शास्त्र या धर्म ग्रन्थ ही है।

मनुष्य को अल्पशक्ति और सीमित सामर्थ से अनन्त शक्ति और अपरिमित सामर्थ की ओर अथवा जीव भाव से ईश भाव या ब्रह्म भाव की ओर स्वाभाविक रूप से अग्रसर करने वाले इस वर्णाश्रम व्यवस्था का आर्य संस्कृति के प्रत्येक बातें रहस्यपूर्ण विशेषतामय है। आर्य संस्कृति वर्ण संकर्ता में समाज एवं राष्ट्र का विकाश देखती है। आर्य संस्कृति का वैदिक इतिहास बतलाया है कि 432000 वर्ष का कलयुग होता है। इसके द्विगुण, त्रिगुण एवं चतुरगुण, क्रमशः द्वापर त्रेत और सतयुग होते है। चारों युग मिलकर एक महायुग कहलाता है और 71 महायुगों का एक मनवंतर होता है। एक मनवंतर में काल प्रमापक मनु और देवाराज इन्द्रादि बड़े-बड़े देव पदाधिकारी बदल जाते है। और उनके स्थान पर नये पदाधिकारी आ जाते है। ऐसे 14 मनवंतरों का एक कल्प होता है वर्तमान कल्प के प्रारम्भ में वैवस्वत मनु नामक मनु भृगुअंगिरा आदि ऋषिगण उत्पन्न हुए थे। और उनके द्वारा गोत्र तथा प्रवरों की सृष्टी हुई थी उस समय से लेकर आजतक आर्य जाति में गोत्र और प्रवरों का यथाक्रम अखण्ड संबंध चला आ रहा है। इस प्रकार गोत्र प्रवर के संबंध सं आर्य संस्कृति में जाति के आधार पर विवाहादि संबंध द्वारा रज वीर्य की शुद्धि ही हिन्दू जाति के चिरंजीवी होने का प्रधान कारण है। वृद्ध पूजा हिन्दू संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यम् वृद्धोपसेविनः

चत्वारि तस्य वर्धान्ते, आयुर्विद्या यशोबलम्।।

नारी को शक्ति का प्रतीक मानकर उसकी पूजा करना आर्य जाति में ही स्वीकार किया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्तेतत्र देवताः।

आर्य संस्कृति में घृणा के लिए स्थान नहीं है 'शूनिचैव श्वपाकेच पंडिमा समदर्शिनः' का सिद्धांत माना जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना आर्य संस्कृति में ही है। इसलिए हम स्पष्ट कह सकते हैं कि 'चतुष्पादपूर्ण' एवं 'चतुवर्ग फलप्रद' अपनी पहली विशेषताओं के कारण ही आर्य संस्कृति सर्वकल्याणकारी अमर और विश्व की सम्पूर्ण संस्कृतियों की जननी है।

कुछ सवदेशी एवं विदेशी आलोचक पंगवों ने नारी के प्रति सम्मान की वैसी भावना नहीं दर्शायी है जितनी सद्भाव सम्मान एवं समादर आर्य संस्कृति में नारियों के लिए है। आर्य संस्कृति में ना ओर नारी का जितना सर्वांगिन विवेचन देखने को मिलता हैउतना अन्यत्र कहीं नहीं। मुसलमानों में तो औरतों को वासनापूर्ति का एक खिलौना मात्र समझा है, ईसाई भी स्त्रियों के साथ समान वर्ताव के बहाने उन्हें विलासिता की सामग्री मात्र समझते हैं।

इसके विपरीत आग्र संस्कृति में (आर्य धर्म में) नारी को अत्यंत सम्मानपूर्ण स्थान पर प्रतिष्टित किया गया है। जीवन मार्ग में प्रस्तुत होने वाले बालक को वेद सबसे पूर्व स्त्री का सम्मान करना सीखाता है।

संस्कृत

काशी का धार्मिक जीवन

राधिका कुमारी

शोधार्थी, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

काशी के इतिहास को देखने से पता चलता है कि यहाँ वैदिक विश्वासों के साथ-साथ नाग और यक्ष की पूजा का भी प्रभाव था। उस युग में भी शिव पूजा अवश्य प्रचलित होगी, पर इसका विस्तार गुप्त-युग में अधिक बढ़ा। काशी बौध-धर्म का भी एक प्रधान क्षेत्र बना रहा, पर पुरातात्विक अवशेंषों के आधार पर यही का जा सकता है कि वह सारनाथ तक ही सीमित था, वाराणसी क्षेत्र में तो शैव धर्म का ही बोलबाला था।[1]

सातवीं सदी में यवान चवाड़ ने भी यह बाल परिलक्षत की। अनेक धर्मो का अड्डा रहते हुए भी वाराणसी शैव धर्म की ही केन्द्र थी और अब भी है। पौराणिक साहित्य भी बानारस के शिवलिगों की महिमा से भरा पड़ा है। समय की गति के अनुसार जैसे-जैसे काशी का इतिहास आगे बढ़ता है, वैसे - वैसे शिवलिंगों की संख्या भी बढ़ती जाती है तथा चित्र-विचित्र वेश वाले योगियों और सन्यासियों की भी।[2]

काशी पुरी के जन्मारंभ से ही धार्मिक विशेषता भी उसके साथ जुड़ गया थी। यहाँ पहले यक्षों की पूजा होती थी काशी में कई तरह के पूजा स्थान अभी तक है, जिन्हें वीर या चौड़ा कहते हैं। जहुरावीर और बुल्लावीर प्रसिद्ध है, जो भारहुत से मिली हुई चुलकोका यक्षियों के ढ़ंग पर छोटे और बड़े बीर संज्ञा वाले देवता थे। काशी विश्वविद्याालय में भी बीरों के कई चौरे अभी तक लगते हैं। मत्स्यपुराण की एक कथा के अनुसार काशी के हरिकेश यक्ष ने शिव की अखंड भक्ति करके काशी में स्थायी रूप से बसने का वरदान प्राप्त किया।[3] तब से उसने शिव-पूजा का प्रचार और यक्ष-पूजा की पुरानी परंपरा को शिव- पूजा ने आत्मसात का लिया और उसी के अनुसार काशीपुरी का धार्मिक विकास होने लगा। इसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि काशी के धुल-कोट के भीतर अनेक शिवस्थानों की जींव पड़ी, जिनका उल्लेख काशी खण्ड एवं तीर्थकल्पतरू ग्रंथ में पाया जाता है। राजघाट की खुदाई में जो मिट्टी की मुहर मिली है, उसने पहली बार काशी के प्राचीन इतिहास की, लगभग एक सहस्त्र वर्श (200 ई० पू० से 800 ई0 पू० तक) की समाग्री का उद्घाटन किया है। पुराणों में आये हुए कुछ शिवलिंगों के अस्तित्व का समर्थन पुरातत्व की समाग्री से हो रहा है।

काशी का धार्मिक महात्म्य बहुत अधिक है। पुराणों में ऐसा उल्लेख आया है कि ब्रह्महत्या का अपराधी अविमुक्त में प्रवेश करने मात्र से ही पापमुक्त हो जाता है और यदि वहाँ मृत्यु को प्राप्त करता है तो उसे मोक्ष मिलता है। अविमुक्त में प्रवेश करते ही सभी प्रकार के प्राणियों के पूर्वजन्मों के हजारों पाप क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं। धर्म में आसक्ति रखनेवाला व्यक्ति काशी में मृत्यु होने पर पुनः संसार को नहीं देखता। संसार में योग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, किन्तु अविमुक्त में योगी को मोक्ष सिद्ध हो जाता है।[4] कुद स्थलों पर वाराणसी तथा वहां की नदियों के संबंध में रहस्यात्मक संकेत भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ 'असी' को 'इड़ा', 'वरणा' को 'पिंगला',

अविमुक्त को 'सुषुम्ना' तथा इन तीनों के सम्मिलित स्वरूप को काशी कहा गया है।[5] परंतु लिंगपुराण का इससे भिन्न मत है। वहाँ असी, वरणा और गंगा को क्रमशः पिंगला, इडा तथा सुषुम्ना कहा गया है।

पुराणों में कहा गया है कि काशी क्षेत्र के एक - एक पग में एक - एक तीर्थ की पवित्रता है।[6] काशी की तिलमात्र भूमि भी शिलिंग से अछूती नहीं है। जेसे काशीखण्ड के दसवें अध्याय में ही 64 लिंगों का वर्णन है। ह्वेनसांग के अनुसार उसके समय में काशी में सो मन्दिर थे और एक मन्दिर में भगवान महेश्वर की 100 फीट ताँबे की मूर्ति थी। किन्तु दुर्भाग्यवश विधर्मियों द्वारा काशी के सहस्त्रों मन्दिर विध्वस्त कर दिए गए और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया गया। औरंगजेब ने तो काशी का नाम महम्मदाबाद रख दिया था। परन्तु यह नाम चला नहीं और काशी में मन्दिर फिर बनने लगे।

भगवान विश्वनाथ काशी के रक्षक हैं और उनका मन्दिर सर्वप्रमुख है। ऐसा विधान है कि प्रत्येक काशीवासी नित्य गंगा स्नान करके विश्वनाथ का दर्शन करना चाहिए। पर औरंगजेब के बाद लगभग 100 वर्षो तक यह व्यवस्था नहीं रही। शिवलिंग को तीर्थयात्रियों के सुविधानुसार यत्र - तत्र स्थानांतरित किया जाता रहा।[7] वर्तमान मन्दिर अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रानी अहल्याबाई होल्कर द्वारा निर्मित हुआ। अस्पृश्यता का जहाँ तक प्रश्न है, प्रतिदिन प्रातः ब्रह्मबेला में मणिकार्णिका घाट पर गंगा स्नान करके प्राणियों द्वारा ग्रहण की गयी अशुद्धियों को धो डालते हैं।[8]

कुछ पुराणों के अनुसार काशी में रहकर तनिक भी पाप नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके लिए बड़ेही कठोर दंड का विधान है। तीर्थस्थान होने के कारण यहाँ पूर्वजों अथवा पितरों का श्राद्ध और पिंडदान किया जा सकता है। किन्तु तपस्वियों द्वारा काशी में मठों का निर्माण अधिक प्रशंसनीय है। साथ ही, यह भी कहा जाता है कि प्रत्येक काशीवासी को प्रतिदिन मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके विश्वेश्वर का दर्शन करना चाहिए। किसी अन्य स्थल पर किए गये पाप काशी आने पर नष्ट हो जातें हैं, किन्तु काशी में किए गए पाप दारूण यातनादायक होते हैं। जो काशी में रहकर पाप करता है, वह पिशाच हो जाता है। वहाँ इस अवस्था में सैकड़ों वर्षो तक रहकर परमज्ञान को प्राप्त होता है, तदुपरांत उसे मोक्ष मिलता है।[9] काशी मे रहकर जो पाप उन्हें यमयातना सहनी पड़ती है, चाहे वह काशी में मरें या अन्यत्र। जो काशी में रहकर पाप करते हैं वे कालभैरव द्वारा दण्डित होते हैं। काशी में पाप करके कहीं अन्यत्र कहीं अन्यत्र मरते हैं, वे राम नामक शिव के गण द्वारा सर्वप्रथम यातना सहते हैं, तत्पश्चात् वे कालभैरव द्वारा दिये गये दण्ड को सहस्त्रों वर्षो तक भोगते हैं। फिर वे नश्वर योनी में प्रविष्ट होते हैं और काशी में मरकर निर्वाण (मोक्ष या संसार से मुक्ति) पाते हैं।

1. (क) डॉ मोतीचनद्र - काशी का इतिहास, पृ0 27
   (ख) पं0 कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, पृ0 32
2. डॉ मोतीचनद्र - दो शब्द, काशी का इतिहास, पृ0 10, तृ सं0 2003
3. मतस्यपुराण, 180/6-20.
4. मतस्यपुराण, 185/15-16.
5. स्कन्धपुराण, काशीखण्ड, 515
6. स्कन्धपुराण, काशीखण्ड, 59, 118
7. त्रिस्थलीसेतु, पृ0 208
8. त्रिस्थलीसेतु, पृ0 183
9. त्रिस्थलीसेतु, पृ0 168

संस्कृत

द्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप

आशुतोश कुमार

शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

1. प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता

प्रमाणों की गणना में प्रत्यक्ष प्रमाण को ही सर्वप्रथम परिगणित किया जाता है। 'प्रत्यक्ष' पद 'प्रति' (सामने अथवा समीप अथवा-सम्बन्धित और अक्ष (नेत्रा) के संयोग से व्युत्पन्न होता है। जिसका तात्पर्य है- तात्कालिक ज्ञान। समस्त भारतीय शडास्तिक एवं त्रिविध नास्तिक दर्शन सम्प्रदाय प्रत्यक्ष प्रमाण के अस्तित्व को निर्बाध रूप से स्वीकार करते हैं। बाह्य जगत् में स्थित विषयों का ज्ञान प्राप्त करने में प्रत्यक्ष प्रमाण प्रथम साधन हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण वास्तविकता के उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है (जो प्रत्यक्ष योग्य है) जिसका ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। इसलिए मधव तीनों प्रमाणों में (प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द) प्रत्यक्ष प्रमाण को सर्वाधिक प्रमाणिक और निश्चयात्मक मानते हैं।[1] अत: प्रमाण मीमांसा में भी सर्वप्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण का ही निरूपण किया गया है। जिस कारण इसे ज्येष्ठ प्रमाण भी कहा जाता है।[2]

अनुमान प्रमाण अथवा शब्द प्रमाण बिना प्रत्यक्ष प्रमाण के स्वार्थ सिद्धि ही नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अनुमान प्रमाण के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण आवश्यक है, अन्यथा पर्वत पर वह्नि की सिद्धि ही असम्भव हो जायेगी। उसी प्रकार शब्द प्रमाण के लिए प्रत्यक्षेन्द्रिय श्रोत ही परमावश्यक होता है।

2. प्रत्यक्ष पद के विभिन्न अर्थ

भारतीय दर्शन परम्परा में 'प्रत्यक्ष' पद तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है -प्रथम अर्थ है - प्रत्यक्ष ज्ञान का साधन जिसका आश्रय न्यायसूत्रादि परम्परा लेता है और जिसको द्वैत वेदान्त भी मानता है। द्वितीय अर्थ है- प्रत्यक्ष से उत्पन्न ज्ञान अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमा। इसका आश्रय द्वैत वेदान्त और परवर्ती नैयायिक लेते हैं। तृतीय अर्थ है- ज्ञान का विषय। जिस प्रकार आत्मा है। इसका ग्रहण भी द्वैत वेदान्त सिद्धान्त में परिलक्षित होता है।

उपर्युक्त तीनों अर्थों का समेलित रूप ही प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जिस प्रकार द्वैत वेदान्त के अनुसार 'निर्दोषार्थेन्द्रियसन्निकर्ष: प्रत्यक्षम्' अर्थात् दोष से रहित इन्द्रिय और विषय का सन्निकर्ष प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

3. द्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप

प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा प्रायश: उन विषयों का ज्ञान होता है, जो वर्तमान काल में उपस्थित होते हैं, आसन्न होते हैं एवं जिनका अस्तित्व पूर्णरूप से अव्यवहित होता है[3]। प्रत्यक्ष ज्ञान के साधनों को

दो प्रकार से परिभाषित किया जाता है, जो प्राचीन नैयायिकों से प्रभावित है। प्राचीन नैयायिक करण को 'व्यापारवद् असाधारणकारणम्'[4] रूप से स्वीकार करते हैं, इसी रूप को स्वीकार करके मधव ने प्रत्यक्ष को इस रूप में परिभाषित किया- 'अदुष्टमिन्द्रियम् प्रत्यक्षम्'[5] अर्थात् दोष रहित इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। किन्तु इस रूप के पश्चात् नैयायिकों ने केवल 'असाधारणकारणम्'[6] रूप में करण को परिभाषित किया, जिससे द्वैत वेदान्त में भी प्रत्यक्ष को 'निर्दोषार्थेन्द्रियसन्निकर्षः प्रत्यक्षम्'[7] अर्थात् अर्थ और इन्द्रिय के दोष रहित संयोग (सन्निकर्ष) को प्रत्यक्ष रूप में परिभाषित किया गया है। न्याय सम्प्रदाय के समान ही द्वैत वेदान्त सम्प्रदाय भी इन्द्रियार्थासन्निकर्ष को प्रत्यक्ष प्रमाण के लिए आवश्यक अङ्गरूप में स्वीकर करता है।[8] क्योंकि जयतीर्थ के अनुसार 'पूर्णतः निर्दोष (दोष से रहित) अर्थों के सन्निकर्ष (संयोग) से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकता है।'[9] अन्यथा प्रमा की उत्पत्ति ही नहीं होगी। इसी कारण जयतीर्थ ने 'प्रमाणपद्धति' में अर्थविषयक दोषों का भी परिगणन किया है। जिनके कारण प्रत्यक्ष ज्ञान प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। वे दोष इस प्रकार है- अतिदूरत्व, अतिसामीप्य, सूक्ष्मता, व्यवधान, समानद्रव्याभिघात, अनभिव्यक्तत्व, सादृश्य इत्यादि।[10] जयतीर्थ इन्द्रियादि को दूषित करने वाले कारणों का निरूपण भी करते हैं। यथा - पाण्डुरोग, बुखार, सर्दी-जुकाम, लकवादि जैसी व्याधियाँ इन्द्रिय को दूषित या दोष ग्रसित कर देती है। उपर्युक्त दोषों का राहित्य होने पर ही शडिन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से सन्निकृष्ट होकर प्रत्यक्ष प्रमा को उत्पन्न करती है। अतिदूरत्वादि अष्टविध दोषों का उल्लेख ईश्वरकृष्ण ने भी सांख्यकारिका में किया है।[11] सम्भवतः द्वैत वेदान्त सम्मत प्रत्यक्ष प्रक्रिया को दूषित करने वाले दोषों का निरूपण सांख्यकारिका से उद्धृत किया गया हो। द्वैत वेदान्ती मानते हैं कि उपर्युक्त दोष से युक्त इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह ज्ञान (यथार्थ) न होकर प्रमा के स्थान पर संशय अथवा विपर्ययादि (विपरीत या मिथ्या) ज्ञान[12] होता है।[13]

4. प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया में आवश्यक तत्त्व

द्वैत वेदान्ती इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष को अधिक विस्तारित और विश्लेषित नहीं करते, जिस प्रकार न्याय दर्शन संयोग, समवाय समवेतादि को करता है। द्वैत वेदान्ती अर्थ और इन्द्रिय के मधय केवल संयोग सबंध को ही मानते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक इन्द्रिय तेजस से उत्पन्न होती है। जिस कारण इन्द्रियों में इतनी क्षमता होती है, कि वह अपने-अपने विषयों को प्रकाशित या व्यक्त कर सकती है। के.टी.पाण्डुरङ्गी के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया में इन्द्रियों के द्वारा चार तत्त्वों (विषयों) की आवश्यकता होती है।[14]जो इस प्रकार है -

1. प्रमातृ (साक्षिन्)
2. मनस्
3. इन्द्रिय
4. विषय (अर्थ)

इस प्रक्रिया में 'मनस्' की क्रियाशीलता अति आवश्यक है। किन्तु प्रत्यक्ष के यथार्थ होने के लिए किसी भी प्रकार के दोष का अभाव होना चाहिए। इन्द्रियाँ, विषय, अवान्तर व्यापार इत्यादि सभी दोष रहित होने चाहिए।

प्रमाणपद्धति में सर्वप्रथम इन्द्रियों का विश्लेषण किया गया है। जयतीर्थ के अनुसार इन्द्रियों से ज्ञानन्द्रियों का ही ज्ञान होता है।[15] द्वैत वेदान्त के अनुसार ज्ञानेन्द्रियाँ सात हैं। इनमें पाँच चाक्षुष्, घ्राणज, रासन, श्रोत एवं त्वक् इन्द्रियाँ हैं। जिनका स्वरूप अन्य भारतीय दर्शनों के समान ही है। शडिन्द्रिय अन्तःमन है और सप्तम साक्षी इन्द्रिय है। जिसकी परिकल्पना भारतीय दर्शन में नवीन है।

4.1 द्वैत वेदान्त में सप्त ज्ञानेन्द्रियों का द्विविध विभाजन

जयतीर्थ ने उपर्युक्त सात ज्ञानेन्द्रियों को दो वर्गों में विभाजित किया है- 1. प्रमातृ स्वरूप एवं 2. प्राकृत स्वरूप।[16]

1. प्रमातृ स्वरूप (साक्षी) - साक्षी एक विशुद्ध या परिशुद्ध इन्द्रिय है, जो वस्तुतः प्रमातृ स्वरूप है। साक्षी साक्षात् रूप (साक्षात्द्रष्टरि इति, यस्तु तदस्य अस्ति इत्यर्थे विहितः "इनि" इति प्रत्ययः स अत्र साक्षात्करोति इत्यर्थे विहितः इति तथा च साक्षात्करोति इति साक्षी) से ज्ञान को स्वरूपतः जान लेता है। द्वैत वेदान्त के अनुसार साक्षी एक प्रमाता का कार्य भी करता है और एक साधन का कार्य भी करता है।[17] पदार्थों का साक्षात् या प्रत्यक्ष जीव ही कर सकता है, वह जब स्वयं को विषयी बना लेता है, तब ज्ञेय भी साक्षी होता है। द्वैत वेदान्त के ज्ञान का सिद्धान्त प्राकृतेन्द्रिय से होने वाले प्रत्यक्ष और प्रमातृ स्वरूप प्रत्यक्ष पर आधारित है। द्वैत वेदान्त की मान्यता है कि ज्ञान की प्राप्ति प्राकृतेन्द्रिय एवं मनस् के द्वारा विषय के साथ संयोग से होती है और ज्ञान की प्रमाणिकता सदैव उसकी उत्पादिका इन्द्रियों की शुद्धता पर निर्भर करती है, किन्तु जो ज्ञान साक्षी इन्द्रिय या प्रमातृ स्वरूप के द्वारा होता है, वह कभी अयथार्थ और दोषयुक्त नहीं होता।[18] अतः प्रमातृ रूप से ज्ञात ज्ञान की प्रामाणिकता की परीक्षा भी आवश्यक नहीं है।

2. प्राकृत (शड्ज्ञानेन्द्रियाँ) - प्रकृति, अहंकारतत्त्व एवं पञ्च महाभूतादि से उद्भूत होने से शड्विध ज्ञानेन्द्रियां प्राकृत कहलाती है।[19] यहाँ द्वैत वेदान्त ने सांख्य दर्शन के तत्त्वों को ही प्राकृतेन्द्रिय रूपेण ग्रहण किया है। द्वैत वेदान्त में घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत एवं मनस् भेद से शड्ज्ञानेन्द्रियों का विवेचन हुआ है।[20] जिनके माध्यम से प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया सम्भव होती है। द्वैत वेदान्ती का मानना है कि ज्ञान कभी भी विषय से रहित नहीं होता है। कई बार ज्ञान ही ज्ञेय के रूप में उपस्थित होता है। विषय से रहित ज्ञान को स्वीकार करने से स्वसिद्धान्तविरोध दोष का भाव हो जाता है। जो उचित नहीं है। अद्वैत और विशिष्टाद्वैत में निर्विकल्पक ज्ञान सम्भव है। किन्तु द्वैत वेदान्त निर्विकल्पक को नहीं मानता है।

जयतीर्थ दो प्रकार के ज्ञान की चर्चा करता है- स्वरूप ज्ञान अर्थात् जिसका कारण साक्षी है और वृत्तिज्ञान अर्थात् जिसका कारण अन्य शड्ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। स्वरूप ज्ञान स्वयं में चेतन स्वरूप है, जिसका विश्लेषण किया जा चुका है। वृत्तिज्ञान मनस् के अधिकार में और मनस् से परिष्कृत भी होता है। यह स्वरूप ज्ञान के समान ही ज्ञान रूप है। वृत्ति ज्ञान के लिए मनस् का विषय से संयोग होना आवश्यक होता है, संयोग के पश्चात् मनस् अपने सामर्थ्य से विषय का ज्ञान उत्पन्न करता है। वृत्तिज्ञान कभी यथार्थ होता है और कभी अयथार्थ भी हो सकता है, क्योंकि यह तज्जनक इन्द्रियों की शुद्धता पर निर्भर करता है। वृत्तिज्ञान कारण दोष के कारण अयथार्थ हो सकता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की दोष युक्त आंखों के कारण 'सीप' रजत रूप में प्रतिभासित होता है।

चक्षुरादि पञ्चज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न विषय एवं उनका स्वरूप द्वैत वेदान्त में अन्य भारतीय दर्शनों के समान ही मान्य है। जिस कारण इनका निरूपण नहीं किया गया है, किन्तु विषय के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इनका न्याय सम्प्रदाय सम्मत संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है -

2.1 घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध हैं। गन्ध दो प्रकार का माना गया है - सुरभि (सुगन्ध) एवं असुरभि (दुर्गन्ध)

2.2 रसनेन्द्रिय का विषय रस है। वह सभी शड्रसों का स्वादन करता है। रस के शड्विध प्रकार इस प्रकार है- मधुर, अम्ल (खट्टा), लवण, कटु, कषाय एवं तिक्त।

2.3 एवं 2.4 चक्षुर्त्वगेन्द्रियों का विषय आकार, रूपवान्द्रव्य, कुछ गुण, कर्म एवं जाति है। त्वक् इसके अतिरिक्त वायु एवं स्पर्श का अनुभव भी कर सकता है। रूप के सात प्रकार बताये गए हैं- शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश एवं चित्र। स्पर्श भी तीन प्रकार का माना गया है - शीत, उष्ण एवं अनुष्णाशीत।

2.5 शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है। किसी भी प्रकार के शब्द अथवा ध्वनि का प्रत्यक्ष श्रोत्रेन्द्रिय ही कर सकता है। शब्द द्विविध प्रकार का होता है- ध्वनिरूप एवं वर्णरूप।

उपर्युक्त पञ्चज्ञानेन्द्रियों के पाण्डुरोग, बुखार, सर्दी-जुकाम, लकवादि जैसी व्याधियाँ एवं दृग्दोष मोतियाबिन्दादि होने से ग्रसित होने से विषय का मनस् से संयोग सम्बन्ध अधिष्ठित या स्थापित नहीं हो पाता है। मन और इन्द्रियों का सम्यक् संयोग न होने के कारण वह विषय का ग्रहण नहीं कर पाती। जिससे प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है या ज्ञान अयथार्थ हो जाता है।

2.6 मनस्[21] बाह्येन्द्रिय रूप से उपर्युक्त इन्द्रियों के विषयों का प्रत्यक्ष करता है। किन्तु मन में कतिपय अवाञ्छित दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो मानसिक प्रत्यक्ष में बाधा पहुंचाते हैं या प्रत्यक्ष को मिथ्या कर देते हैं। जिस प्रकार भावावेग, आसक्तियाँ, रागादि दोष इत्यादि मन का दोष गृहित कर लेते हैं, जो प्रत्यक्ष में बाधा पहुंचाते है। इन दोषों से रहित होकर ही मन यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है और करवा सकता है।

5. द्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष प्रमाण भेद का निरूपण

प्रमाण लक्षण में साक्षिषडिन्द्रिय भेद से प्रत्यक्ष प्रमाण सप्तविध प्रकारक माना गया है, जिसका निरूपण किया जा चुका है-

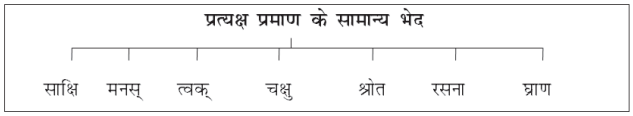

जयतीर्थ ने अन्य सभी दर्शनों से व्यतिरिक्त प्रत्यक्ष के चार विशिष्ट भेद भी स्वीकार किये हैं[22]-1. ईश्वर प्रत्यक्ष, 2. लक्ष्मी प्रत्यक्ष, 3. योगी प्रत्यक्ष एवं 4. अयोगि प्रत्यक्ष।

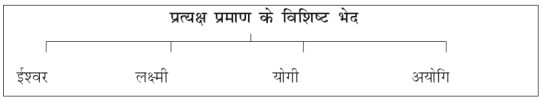

प्रधानता एवं प्रामाणिकता के आधार पर क्रम से प्रत्यक्ष भेदों का नामोल्लेख किया गया है। इन चारों भेदों में ईश्वर प्रत्यक्ष एवं लक्ष्मी प्रत्यक्ष ही केवल स्वरूपेद्रियात्मक है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इनके ज्ञान की प्रामाणिकता पर किसी प्रकार का दोष या शङ्का नहीं हो सकती है। क्योंकि उनका ज्ञान यथार्थ होता है। द्वैत वेदान्त के दो तत्त्वों -'स्वतन्त्र एवं परतन्त्र' के सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर और लक्ष्मी प्रत्यक्ष स्वतन्त्र रूप हैं। अत: इनका ज्ञान किसी आश्रय या प्रक्रिया की अपेक्षा नहीं रखता है। इनका विषय भी इनके समान सामान्य न होकर विशिष्ट ही होता है।

दूसरी ओर स्वरूप एवं प्राकृत भेद से योगि प्रत्यक्ष एवं अयोगि प्रत्यक्ष का निरूपण किया गया है। जयतीर्थ ने 'प्रमाणलक्षण' ग्रन्थ का टीका में कहा है कि योगी जनों का ज्ञान वस्तु के स्वभाव

को देश-काल से व्यवहित होकर अर्थ रूप में ग्रहण कर सकता है, जबकि अयोगिजनों का ज्ञान देश और काल से अव्यवहित अर्थ को ही विषय बना सकता हैं।[23] इसलिए स्वरूपेन्द्रिय से ज्ञात ज्ञान यथार्थ होता है एवं प्राकृतेन्द्रिय से ज्ञान में यथार्थ या अयथार्थ दोनों भावों का समावेश होता है। प्राकृत ज्ञान सभी स्थानों एवं कालों में सर्वथा एक समान नहीं हो सकता है। यथार्थ ज्ञान के प्राकृत इन्द्रिय के लिए दोष या विकार से रहित होना आवश्यक है। इसी दोष के स्तर के कारण प्रकारान्तर से प्राकृत या बाह्येन्द्रिय का त्रिविध विभाजन किया गया है।[24]

प्रमाणपद्धति के टीकाकार विट्ठलनाथ के अनुसार जीवों का विभाजन आत्मातिरिक्त कुछ नहीं है। विट्ठलनाथ का कहना है कि दैव, मुक्ति योग्य जीव से सम्बन्धित बाह्येन्द्रिय है। आसुर, तमोयोग्य जीव से सम्बन्धित बाह्येन्द्रिय है और मध्यम, मध्यम जीव से सम्बन्धित बाह्येन्द्रिय है। इसका आशय यह हुआ कि जीवों के प्रकारों के आधार पर यह विभाजन किया गया है।[25] जयतीर्थ के अनुसार दैवेन्द्रिय द्वारा प्राप्त किये ज्ञान में यथार्थता की अधिक संभावना रहती है, आसुरेन्द्रिय के द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान में मिथ्यात्व की सम्भावना रहती है, जबकि मध्यमेन्द्रिय के द्वारा प्राप्त किये गए ज्ञान में यथार्थ और अयथार्थ दोनों रूपों का भाव होता है। बाह्येन्द्रियों में उत्तम और श्रेष्ठ होने से दैवेन्द्रिय का प्रथम नामोद्देश हुआ, इसी क्रम से आसुरेन्द्रिय का दैव के पश्चात् और मध्यम का अन्त में निर्देश किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाह्येन्द्रिय के त्रिविध विभाजन जीवों की प्रवृत्ति पर आधारित है, किन्तु ज्ञान की प्रामाणिकता उनके अन्तर्गत पाये जाने वाली गुणों की अधिकता पर आश्रित है। सत्व, रजस् तमस तीनों गुणों में से जिसकी अधिकता होती है। जीव उसी के अनुसार प्रवृत्त होता है। सत्त्वगुण की प्रधानता होने पर ज्ञान के यथार्थ होने की सम्भावना अधिक है, क्योंकि जीव शान्तचित एवं एकाग्र होकरज्ञान विषय को जानने का प्रयास करता है और तमोगुण की प्रधानता मिथ्यात्व की सम्भावना दर्शाती है। क्योंकि वह अशान्त और एकाग्रता से रहित होकर विषय के ज्ञान की प्राप्ति का प्रयास करता है। अत: जिस प्रकार के गुण से जीव युक्त होता है, उसका ज्ञान भी उसी के गुण से प्रभावित होता है।

द्वैत मत में न्याय सम्मत शोढा सन्निकर्ष असिद्ध है। क्योंकि केवल संयोग सम्बन्ध और इन्द्रिय की साक्षात् रश्मि सामर्थ्य इन्द्रियार्य सन्निकर्ष कर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकती है। संयोग संबंध को स्वीकार करने से लाघव की प्राप्ति होती है।[26] इसका आशय यह है कि सभी 'इन्द्रियों की रश्मि के साक्षात् प्रकाश से वे अपने विषयों को उद्भावित कर उनसे साक्षात् सन्निकर्ष कर सकती है'[27] क्योंकि इन्द्रियों का घटादि के समान ही रूपादि से भी साक्षात् सन्निकर्ष होता है।

6. प्रत्यक्ष प्रमाण का फल

भारतीय दर्शन की परम्परा में प्रत्यक्ष के फल या अभिधेयार्थ के विषय में भी मतवैभिन्य प्राप्त होता है। कतिपय दार्शनिक प्रत्यक्ष प्रमाण के अभिधेयार्थ के रूप में हानोपादानोपेक्षा बुद्धि को ही स्वीकार करते हैं; किन्तु जयतीर्थ इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि द्वैत वेदान्त में हानोपादानोपेक्षा बुद्धि अपेक्षा या फल अनुमान प्रमाण में ही सम्भव हो सकता है। 'हानोपादानोपेक्षा बुद्धि' उसे कहते हैं, जब पूर्व अनुभूत अनुभव से यह निश्चय हो जाये कि कोई वस्तु अनिष्टकारी है अथवा लाभकारी, उसी के अनुरूप मनुष्य प्रवृत्त होता है। कदली फलादि के द्वारा इष्ट साधन के अनुमान के अनन्तर उपादान बुद्धि उत्पन्न होती है। इस कारण जयतीर्थ के अनुसार प्रत्यक्ष का फल विशिष्ट विषय का साक्षात्कार है, न कि हानोपादानोपेक्षा बुद्धि।[28]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मूल ग्रन्थ
    * *अनुव्याख्या* (ब्रह्मसूत्र) : मध्वाचार्य, सर्वमूल ग्रन्थ, (सम्पादक) आर.एस.पंचमुखी, धारवाड, 1980
    * *तर्कताण्डव* : व्यासतीर्थ, (सम्पादक) श्रीनिवासाचार्य एवं वी. माध्वाचार्य, ओरियन्टल संस्कृत पुस्तकालय सीरीज़-74, भाग 1-4 मद्रास, 1934-42
    * *तर्कताण्डव* : व्यासतीर्थ, (सम्पादक) के.टी.पाण्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टड़ीज एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलौर, खण्ड 1-2, 2003
    * *तर्कभाषा* : केशवमिश्र, (व्याख्याकार), बदरीनाथ शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1976
    * *तर्कसंग्रह* : अन्नमभट्ट, तर्कसंग्रह दीपिका सहित, (सम्पादक) अठल्ये एवं बोडास, भण्डाकर ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीटयूट, पूना 1974
    * *तत्त्वोद्योत* : द्रष्टव्य *दश प्रकरणानि*
    * *दश प्रकरणानि* : आन्नदतीर्थ, (सम्पादक) लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, (चार भागों में- प्रमाणलक्षण), बैंगलोर, 1969
    * *न्यायसुधा* : जयतीर्थ, श्रीगुरुसार्वभौम संस्कृत विद्यापीठ, श्रीराघवेन्द्रस्वामीमठ, मन्त्रालय, तिरुपति, 15 भाग, 2003-07
    * *न्यायसुधा* : जयतीर्थ, शट् टीकाओं सहित (सम्पादक) के.टी. पान्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टड़ीज एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलोर, 1991
    * *प्रमाणचन्द्रिका* : शलारिशेषाचार्य, (अनुवादक) सुशील कुमार, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1980
    * *प्रमाणपद्धति* : जयतीर्थ, टीका द्वय सहित (सम्पादक) आर.एस. पंचमुखी, धारवाड, 1982
    * *प्रमाणपद्धति* : जयतीर्थ,आठ टीकाओं सहित (सम्पादक) के.टी. पान्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टडीज एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलौर, 1991
    * *प्रमाणलक्षण* : द्रष्टव्य *दश प्रकरणानि*
    * *वादावली* : जयतीर्थ, राघवेन्द्र विरचित वादावलीभावदीपिका, श्रीनिवासतीर्थ विरचित वादावलीप्रकाश एवं कृष्णाचार्य विरचित वादावलीटिप्पणी टीका सहित, (सम्पादक) सत्यध्यानाचार्य कट्टी, द्वैत वेदान्त अध्ययन संशोधन प्रतिस्थान, बैंगलुरू, 2001
    * *विष्णुतत्त्वविनिर्णय* : आनन्दतीर्थ, (सम्पादक) के.टी.पान्डुरंगी, द्वैत वेदान्त स्टड़ीज एण्ड शोध फाउन्डेशन, बैंगलोर, 1991
    * *सांख्यकारिका* : ईश्वरकृष्ण, (व्याख्याकार) ब्रजमोहन चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1988
    * *सांख्यसूत्र* : विज्ञानभिक्षु कृत भाष्य सहित (सम्पादक) रमाशंकर भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1977
2. सहायक ग्रन्थ
    * पाण्डुरङ्गी, के.टी. : द्वैत वेदान्त दर्शन ऑफ माध्व, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1995

Footnote

[1] 'न हि दृष्टेबलवत्किञ्चित् प्रमाणम्', *तत्त्वोद्योत*, पृष्ठ 31.

[2] 'प्रत्यक्षस्य सर्वप्रमाणेषु ज्येष्ठत्वात्', *सांख्यतत्त्वकौमुदी*, कारिका 5, पृष्ठ 42.

[3] प्रायेणासन्नाव्यवहितवर्तमानकतिपय पदार्थग्राहकं प्रत्यक्षम्', *प्रमाणचंद्रिका*, पञ्चठ 45.

[4] *विष्णुतत्त्वविनिर्णय*, पृष्ठ 360.

[5] *तर्कभाषा*, पृष्ठ 62.

[6] *तर्कसंग्रह*, पृष्ठ 99.

[7] (i) *दृशप्रकरणानि*, पृष्ठ 33. (ii) *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 36.

[8] *न्यायसुधा*, पृष्ठ 47.

[9] 'निर्दोषार्थेन्द्रियसन्निकर्षः प्रत्यक्षम्', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 36.

[10] 'अतिदूरत्वमतिसामीप्यं सौक्ष्म्यं व्यवधानं समानद्रव्याभिघातोऽनभिव्यक्तत्वं सादृश्यं चेत्यादयः', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 36.

[11] 'अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्। सौक्ष्मयाद् व्यवधानादभिभवात्समाना भिहाराच्च।।', *सांख्यकारिका*, कारिका-7, पृष्ठ 11.

[12] संशयविपर्ययादि का निरूपण पिछले अध्याय में प्रतिपादित किया जा चुका है।

[13] (i) एतेषु दोषेषु सत्सु..... संशयादिकमुत्पद्यते, *प्रमाणचंद्रिका*, पृष्ठ 49.
(ii) तेषु सत्सु क्वचिज्ज्ञानमेव...क्वचिद्विपरीतज्ञानमुत्पद्यते', *प्रमाणपद्धति* , प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 124.

[14] *द्वैत वेदान्त दर्शन ऑफ श्रीमध्वाचार्य*, के.टी.पाण्डुरङ्गी, पृष्ठ 41-42.

[15] 'इन्द्रियेशब्देन ज्ञानेन्द्रियं गृह्यते', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 126.

[16] 'तद् द्विविधम्। प्रमातष्टस्वरूपं प्राकृतञ्चेति', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पञ्चठ 126.

[17] 'चेतनस्वरूपेन्द्रियं साक्षीत्युच्यते', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पञ्चठ 126.

[18] 'मानसे दर्ष्टाने दोज्ञाः स्युर्न वै साक्षिदर्ष्टाने', *अनुव्याख्या*, 3.4.43 एवं *वादावली*, पञ्चठ 307.

[19] 'प्रकृतिपरिणामहंकारपञ्चमहाभूतांशै रूपचितं प्राकृतमित्युच्यते; उपरीवत्, राघवेन्द्रटीका, पृष्ठ 12.

[20] 'प्राकृतं षडविधम्...श्रोतमनो भेदात्', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 128.

[21] 'मनस्तु बाह्येन्द्रियाधिष्ठानेनैते..... रागादयः', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 128.

[22] 'ईश्वरप्रत्यक्षं लक्ष्मीप्रत्यक्षं, योगीप्रत्यक्षमयोगिप्रत्यक्षं चेति', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 142.

[23] *प्रमाणलक्षण*, पृष्ठ 126.

[24] 'बाह्येन्द्रियं त्रिविधम्...दैवमासुरं मध्यममितिः', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 145.

[25] 'आत्मातिरिक्तं नेन्द्रियमित्यर्थः ...बाह्येन्द्रियमित्यर्थः', *प्रमाणपद्धति*, विट्ठलनाथ टीका, पृष्ठ 150.

[26] 'संयोगोप्येक एव लाघवात्', *तर्कताण्डव*, समवायवादः, पृष्ठ 477

[27] 'अतः सर्वेन्द्रियाणां स्वस्वविषयैः ...रश्मिद्वारा सन्निकर्षः', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद. पृष्ठ 145.

[28] 'अतो विशिष्टविषयसाक्षात्कार एव प्रत्यक्षस्य फलमितिः', *प्रमाणपद्धति*, प्रत्यक्ष परिच्छेद, पृष्ठ 155.

श्रीहरिनामामृत व्याकरण में वर्णित संज्ञाओं का वैशिष्ट्य

चित्रा भारद्वाज

शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जीवगोस्वामी प्रणीत श्रीहरिनामामृत व्याकरण भक्ति परक शैली का एक उत्कृष्ट व्याकरण ग्रन्थ है। इसकी शैली में जो भक्ति भावना एवं शब्द लालित्य है उसका निरूपण संज्ञाओं में परिलक्षित होता है। जिसका विवेचन प्रकृत शोध पत्र में किया गया है।

1. वर्णक्रमः अधिकांश वैयाकरण अपने व्याकरण को प्रारम्भ करने से पूर्व निजतन्त्रोपयोगी वर्णसमुदाय अथवा अक्षर समान्नाय का निर्देश करके तत्पश्चात् अपने व्याकरण के प्रतिपाद्य विषय का आरम्भ करते हैं।[1] इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए जीवगोस्वामी ने सर्वप्रथम वर्णोपदेश करते हुए वर्णो की उत्पत्ति नारायण से स्वीकार की है - "नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः।" श्रीहरिनामामृत व्याकरण लेखक के भक्ति भाव के चरमोत्कर्ष का प्रतीक है। इसी कारण इसमें वर्णित संज्ञाएँ प्रभु नाम संकीर्तन की भावना से प्रेरित है।

2. सर्वेश्वरः पाणिनीय प्रत्याहार 'अच्' द्वारा स्वरों का परिगणन होता है। इन्हीं स्वरों के लिए जीवगोस्वामी ने "सर्वेश्वर" संज्ञा का प्रयोग किया है। "सर्वेश्वर" का अर्थ टीकाकारों ने स्पष्ट किया। जिसे अर्थ सामान्जस्य की दृष्टि से देखा जा सकता है। स्वरों के बिना वर्ण उच्चारण संभव नहीं है। वर्ण उच्चारण के लिए स्वरों के आधीन है।[2] इसी कारणवश स्वरों को "सर्वेश्वर" से संज्ञापित किया गया है। सभी स्थावरजंगमादि का ईश्वर, सर्वेश्वर कहलाता है। तथा इस सर्वेश्वर से तात्पर्य स्वयं भगवान् कृष्ण है, जो कि सभी प्रकार से स्वतन्त्र है एवं सभी अन्य पदार्थ उनके आधीन है।[3] इसी अर्थ से जीवगोस्वामी ने स्वरों को "सर्वेश्वर" माना है।

3. दशावतार : "दशावतार" अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ का द्योतक है।[4] "दशावतार" शब्द से मत्स्य कूर्मादि दस अवतारों का ग्रहण होता है।[5] जीवगोस्वामी ने पाणिनीय "अक्" प्रत्याहार से पठित वर्णों के लिए "दशावतार" संज्ञाकरण किया है।

4. एकात्मक : "सवर्ण" संज्ञक वर्णों के लिए जीवगोस्वामी ने "एकात्मक" संज्ञा का प्रयोग किया है।[6] "एकात्मक" से अभिप्राय "ब्रह्मभावापन्न-जीव" है, अथवा हरिहर की अद्वैतता का भी "एकात्मक" शब्द वाचक है।[7] एकात्मक संज्ञक वर्णों में अ, आ तथा इ, ई आदि का ग्रहण किया जाता है।

5. वामन : विष्णु का वामन अवतार अतिप्रसिद्ध है। इस अवतार में उनकी लम्बाई अत्यधिक छोटी है। उसी आधार पर जीवगोस्वामी ने उन स्वरों की जिनके उच्चारण में कम बल व्यय होता है, 'वामन' संज्ञा कही है।[8] पाणिनि इसी को "हस्व" कहते हैं।

6. त्रिविक्रम : "एकात्मक" वर्ण में पर "त्रिविक्रम" संज्ञक होता है।[9] इसे पाणिनि ने "दीर्घ" संज्ञक है। जीवगोस्वामी के "त्रिविक्रम" संज्ञाकरण के औचित्य को टीकाकार श्री गोपीचरण दास ने पुष्ट करते हुए कहा है कि वामन अवतार की तीन पग भूमि की याचना जब राजा ने मान ली तत्पश्चात् भगवान् जो विशाल रूप धारण करते हैं तब "त्रिविक्रमत्व" होता है।[10]

7. महापुरुष : "महापुरुष" वर्णों का प्रयोग दूराह्वान, गान और रोने में होता है। "महापुरुष" संज्ञक शब्दों की पाणिनीय व्याकरण में "प्लुत" संज्ञा मानी गयी है। "महापुरुष" शब्द के द्वारा सर्व लक्षणान्वित पुरुष का कथन होता है तथा इस प्रकार का पुरुष भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता है।[11]

8. ईश्वर : श्रीहरिनामामृत व्याकरण में अ-आ से वर्जित सर्वेश्वर (स्वर) संज्ञक वर्णों की "ईश्वर" संज्ञा प्रदत्त है।[12] इस प्रकार ईश्वर संज्ञक वर्ण है - इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ। अन्य व्याकरण यथा पाणिनीय तथा मुग्धबोध व्याकरण में इसे "इच्" प्रत्याहार द्वारा द्योतित किया गया है। "ईश्वर" शब्द के द्वारा मायानियन्ता भगवान् का उच्चारण होता है - ऐसा टीकाकार का मत है।[13]

9. ईश : "दशावतार" वर्णों में से अ-आ से अतिरिक्त अन्य की "ईश" संज्ञा जीवगोस्वामी ने कही है।[14] इस "ईश" संज्ञा के अन्तर्गत इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, का परिगणन होता है। "ईश" शब्द से माया मुग्ध जीव-निकाय-नियामक भगवान् का ज्ञान होता है।[15] यदि अर्थ तारतम्य की दृष्टि से विवेचन किया जाए तो "ईश" शब्द एवं उसमें ग्रहीत वर्णों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है। सम्भवत: जीवगोस्वामी की भक्ति भावना ही इस प्रकार के संज्ञाकरण का एकमात्र कारण हो सकता है।

10. अनन्त : पाणिनीय "अण्" प्रत्याहार में परिगणित अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, के लिए जीवगोस्वामी ने "अनन्त" शब्द कहा है।[16] इस "अनन्त" शब्द से तात्पर्य हरि के शयन सहस्त्र फण वाले शेष नाग है।[17] सम्भवत: इसका अभिप्राय यह है कि ये स्वर या अण् अनन्त है, क्योंकि इनकी सहायता के बिना किसी वर्ण को उच्चारित नहीं किया जा सकता।

11. चतु: सन - "इण्" प्रत्याहार में इ-ई उ-ऊ ग्रहीत है। इन्हीं को जीवगोस्वामी ने "चतु:सन" कहा है।[18] "चतु:सन" शब्द के द्वारा सनक-सनातन-सनन्दन-सनतकुमार का ग्रहण होता है।[19] चतु:सन में पठित वर्णों की संख्या भी चार होने से किञ्चित् सार्थकता दृष्टिगत होती है।

12. चतुर्भूज : "उ-ऊ, ऋ-ॠ" वर्णों को जीवगोस्वामी ने "चतुर्भूज" संज्ञक कहा है।[20] "चतुर्भूज" शब्द "नारायण" का ही वाचक है।[21]

13. चतुर्व्यूह : "ए-ऐ-ओ-औ" वर्णों के लिए "चतुर्व्यूह" शब्द प्रयुक्त किया गया है।[22] चतुर्व्यूह शब्द से वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न, अनिरुद्ध का द्योतन होता है।[23] सम्भवत: जीव-गोस्वामी की पद्धति है कि जहाँ चार वर्णों का ग्रहण होता है वहाँ वह संख्या साम्य की दृष्टि से संज्ञा का प्रयोग करते हैं।

14. विष्णुचक्र : बिन्दु स्वरूप वर्ण अर्थात् अनुस्वार के लिए "विष्णुचक्र" प्रयोग किया गया है।[24] "विष्णुचक्र" में शब्द से "सुदर्शन चक्र" का ज्ञान होता है।[25]

15. विष्णुजन : व्यञ्जनों की जीवगोस्वामी ने विष्णुजन संज्ञा कही है।[26] पाणिनि ने इसी के लिए "हल्" प्रत्याहार का प्रयोग किया है। विष्णुजन संज्ञाकरण की सार्थकता सिद्ध करने के लिए टीकाकार का कथन है कि जंगम सभी जन उस विष्णु के आधीन हैं, इसी कारणवश उसे सर्वेश्वर कहा गया है, तथा, सर्वेश्वर संज्ञक वर्णों के कादि विष्णु जन वर्ण के आधीन होते हैं।[27]

16. वल : य तथा व से वर्जित व्यञ्जनों के लिए "वल" संज्ञा प्रयुक्त है।[28] यह 'वल' शब्द बलराम का वाचक है।[29]

17. विष्णुवर्ग : विष्णुवर्ग शब्द के द्वारा जीवगोस्वामी ने कवर्ग, चवर्ग आदि वर्गों को परिगणित किया है।[30] "विष्णुवर्ग" शब्द द्वारा सत्यलोक से उपर वैकुण्ठ के अधीश्वर या अधिष्ठाता का द्योतन होता है।[31] यद्यपि अर्थ साम्य तो यहाँ जीवगोस्वामी का ध्येय नहीं है तथापि "विष्णुवर्ग" शब्द के "वर्ग" शब्द की उपस्थिति के कारण वर्णों के वर्ग को इंगित करने के लिए जीवगोस्वामी को यही शब्द समीचीन प्रतीत हुआ होगा।

18. हरिकमल, हरिखड्ग, हरिगदा, हरिघोष : जीवगोस्वामी ने वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्णों के लिए क्रमशः हरिकमल, हरिखड्ग, हरिगदा, हरिघोष संज्ञा परिगणित की है।[32] इन सभी संज्ञाओं में भक्तिभावना तो स्पष्टतः परिलक्षित होती ही है किन्तु इसके अतिरिक्त सम्भवतः ऐसा प्रतीत होता है कि जीवगोस्वामी ने वर्णों की उपस्थिति पर भी बल दिया है यथा - क, ट, त, प के लिए "हरिकमल" में प्रयुक्त "क" प्रथम वर्ण से ग्रहीत है उसी प्रकार "हरिखड्ग" में प्रयुक्त "ख", हरिगदा में "ग" का ग्रहण तथा हरिघोष में "घ" का ग्रहण। सम्भवतः जीवगोस्वामी ने यहाँ वर्णों के साम्य को विचार में रखकर ही यह संज्ञाकरण किया है।

19. उपेन्द्र : "उपसर्ग" के लिए जीवगोस्वामी के द्वारा "उपेन्द्र" संज्ञा का प्रयोग किया गया कृत है।[33]

20. राम : वर्ण स्वरूप के अवबोधन के लिए "राम" शब्द का प्रयोग जीवगोस्वामी ने किया है।[34] राम शब्द के प्रयोग के औचित्य को टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि "राम" शब्द द्वारा श्रीरघुनन्दन का सीतैकभार्यत्व विख्यात रूप निरूपित है तथा इसी कारण "राम" शब्द के द्वारा एक ही वर्ण का परिग्रहण हुआ है।[35]

21. विरिञ्चि : जीवगोस्वामी आदेश के लिए "विरिञ्चि" शब्द का ग्रहण करते हैं।[36] विरिञ्चि से अभिप्राय "ब्रह्मा" है। विरिञ्चि (ब्रह्म) एक वस्तु का ग्रहण कर अन्य को बनाते हैं। तथाहि जो विधि का प्रवर्तन करे वह आदेश "विरिञ्चि" कहलाता है।[37]

22. विष्णु : आगम के लिए श्रीहरिनामामृत व्याकरण में "विष्णु" संज्ञा प्रयुक्त हुई है।[38] आगम सर्वदा मध्य में उपस्थित होता है वैसे ही विष्णु की स्थिति ब्रह्म एवं रुद्र के तथा सृष्टि एवं संहार के मध्य में है। प्रकृति एवं प्रत्यय के मध्य में आविर्भूत होकर दोनों का पोषक बनने से "आगम" को "विष्णु" कहा गया है।[39]

23. हर : जीवगोस्वामी लोप को "हर" कहते हैं।[40] यहाँ अर्थ साम्य है कि हर वस्तुओं के नाश का हेतु होने से यहाँ वर्णादि के नाश के लिए प्रयुक्त किया गया है।[41]

निष्कर्ष

श्रीहरिनामामृत व्याकरण भक्ति के चरमोत्कर्ष को प्रदर्शित करता है। इसमें प्रयुक्त संज्ञाएँ भक्ति भावना से प्रेरित होकर विष्णु एवं तत्सम्बद्ध वस्तुओं को आधार बनाकर रची गयी है। कतिपय स्थलों पर तो संज्ञाओं के निर्धारण में कारण निहित है किन्तु अधिकांश संज्ञाएँ तो जीवगोस्वामी की भक्ति भाव को ही प्रकट करती है। इस प्रकार का संज्ञा प्रयोग प्रथम दृष्टिपात करने पर रोचक लगता है किन्तु जब इन संज्ञाओं का प्रयोग सूत्र में किया जाता है तब कुछ असहजता सी प्रतीत होती है। इसका कारण इन संज्ञाओं का अन्य व्याकरण में प्रयुक्त संज्ञाओं की अपेक्षा अक्षर गौरव है। इस प्रकार के अनावश्यक रूप से बड़े-बड़े सूत्रों से युक्त व्याकरण कण्ठस्थ करने, पढ़ने में कठिन होता है। इस

प्रकार की कोई भी कृति जबकि उससे सरल उपलब्ध हो काल का ग्रास बन जाती है। इसी कारण श्री हरिनामामृत व्याकरण लगभग 450 वर्षों में ही अपने आकर्षण को खो बैठा है तथा वैष्णव सम्प्रदाय में भी कुछ ही स्थलों पर इसका प्रचार-प्रसार है।

Footnotes

[1] वृत्ति समवायार्थ उपदेशः। ....वृत्ति समवायार्थो वर्णानामुपदेशे कर्त्तव्य का पुनर्वतिः? शास्त्रप्रवृत्तिः। अथः क समवायः? वर्णानामनुपूर्व्येण सन्निवेशः। अथ कः उपदेशेः उच्चारणम् - पश्पशाह्निकम् महाभाष्यम्।

[2] कादीनामुच्चारणंचैषामधीनमिति सर्वेश्वराः - बालतोषणी टीका, सू०सं० 2, पृ० 9

[3] कादीनां वर्णानामुच्चारणंचैषां वर्णानामधीनं भवतीति हेतुः सर्वेश्वरा उच्यन्ते। सर्वेषां स्थावरजंगमादी नामिश्वरः, सर्वेश्वरशब्देन सर्वावतारि-स्वयं भगवान् कृष्ण उच्यते इति भगवन्नामता प्रसिद्धि, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०स० 2, पृ० 9

[4] दश दशावताराः - सू०सं० 3, हरि०व्या०, पृ० 9

[5] अत्र सर्वेश्वरेषु दशावतारशब्देन मत्स्यकूर्मादय उच्यन्ते, इति हेतु र्भगवन्नामता। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 3, पृ० 9

[6] तेषां द्वौ द्वावेकात्मकौ, सू०सं० 4, हरि०व्या०, पृ० 9

[7] एकात्मकशब्देन ब्रह्मभावापन्न-जीव उच्यते। अथवा हरिहराद्वैतता एकात्मकशब्दस्य भगवन्नामता। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 4, पृ० 9-10

[8] त्रिबिक्रमापेक्षया बलेरध्वरगतस्य भगवतः प्रथमतो ह्रस्व-विग्रहप्रकटनेनैव वामनत्वं प्रसिद्धम्। इति भगवन्नामता। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं०, पृ० 10

[9] परस्त्रिबिक्रमः, सू०सं० 6, हरि०व्या०, पृ० 10

[10] वामनापेक्षया पश्चाद्वलेः सकाशात् त्रिपाद-भूमि-याचनेन भगवतो बृहद्वपुः प्रदर्शनात् त्रिविक्रमत्वम्, इत्यस्य भगवन्नामता-6, तद्धितोछीपनी टीका, पृ० 10

[11] महापुरुषशब्देन सर्वसल्लक्षणान्वित पुरुष उच्यते, स भगवानेव नान्योऽतोऽस्य भगवन्नामता। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 7, पृ० 10

[12] अ-आ - वर्जिताः सर्वेश्वरा-ईश्वराः। सू०सं० 8, हरि०व्या०, पृ० 11

[13] ईश्वर शब्देन मायानियन्ता भगवानुच्यते इत्यस्य भगवन्नामता। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 8, पृ० 11

[14] दशावतारा ईशाः। सू०सं० 9, हरि०व्या०, पृ० 11

[15] ईश शब्देन मायामुग्ध जीव - निकाय नियामको भगवान् उच्यते, अतोऽस्य भगवन्नामता। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 9, पृ० 11

[16] अ-आ-इ-ई-उ-ऊ अनन्ताः। सू०सं० 10, हरि०व्या०, पृ० 11

[17] अनन्तशब्देन सहस्त्र फणः शेष उच्यते, इत्यस्य भगवन्नामता, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 10, पृ० 11

[18] इ-ई-उ-ऊ चतुः सनाः, सू०सं० 11, हरि०व्या०, पृ० 11

[19] चतुःसन शब्देन सनक-सनातन-सनन्दन सनत् कुमारा उच्यन्ते, इति भगवन्नामता, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 11, पृ० 11

[20] उ-ऊ ऋ-ॠ चतुर्भूजाः, सू०सं० 12, हरि०व्या०, पृ० 11

[21] चत्वारो भुजा येषां ते "चतुर्भुजाः" चतुर्भुज शब्देन नारायण उच्यते, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 12, पृ० 11

[22] ए-ऐ-ओ-औ-चतुर्व्यूहाः, सू०सं० 13, हरि०व्या०, पृ० 12

[23] चतुर्व्यूह शब्देन वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धा उच्यन्ते, इति भगवन्नामता, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 13, पृ० 12

[24] अं इति विष्णुचक्रम्, सू०सं० 14, हरि०व्या०, पृ० 12

[25] विष्णोश्चक्रं-विष्णुचक्रं, विष्णुचक्रशब्देन सुदर्शनाख्यमस्त्रमुच्यते, इति भगवन्नामता, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 14, पृ० 12

[26] कादयो विष्णुजनाः, सू०सं० 17, हरि०व्या०, पृ० 13

[27] विष्णोर्यथा सर्वव्यापकतया धर्मेण आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ताः स्थावरजंगमादयः सर्वे जनास्तस्य विष्णोरधीना सन्ति, तथैव सर्वेश्वरस्य सर्वेश्वरसंज्ञवर्णस्य कादयो विष्णुजना वर्णा अधीना भवन्ति, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 17, पृ० 13

[28] यव वर्जितास्तु वलाः, सू०सं० 18, हरि०व्या०, पृ० 13

[29] यव वर्जिता विष्णुजनाः "वल" - नामानो भवन्ति। बल शब्दो बल राम वाची, इति भगवन्नामता, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 18, पृ० 13

[30] ते मान्ताः पञ्च पञ्च विष्णुवर्गाः, सू०सं० 19, हरि०व्या०, पृ० 13

[31] विष्णुवर्ग शब्देन सत्यलोकोपरिवैकुण्ठाद्यधीश्वरादय उच्यन्ते, इति भगवन्नामता, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 19, पृ० 13

[32] (i) क-च-ट-त-पा हरिकमलानि सू०सं० 21, (ii) ख-छ-ठ-थ-फा - हरिखड्गः, सू०सं० 22, हरि०व्या०, पृ० 14(iii) ग-ज-ड-द-वा हरिगदा, सू०सं० 23, हरि०व्या०, पृ० 14, (iv) घ-झ-ढ-ध-भा हरिघोषाः, सू०सं० 24 हरि०व्या०, पृ० 14

[33] उपेन्द्रात् क्वचित् विष्णुपदादौ च, सू०सं० 36, हरि०व्या०, पृ० 17

[34] वर्णस्वरूपे रामः, सू०सं० 37, हरि०व्या०, पृ० 17

[35] तस्य रामस्य रामशब्दाभिधेयस्य श्रीरघुनन्दनस्य एकपरिग्रहताख्याते: श्रीसीतैकभार्यत्वख्यातेरित्यर्थः। अथ चायं राम शब्दः एकमेव वर्णं परिगृहातीति। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 37, पृ० 17

[36] आदेशो विरञ्चिः, सू०सं० 39, हरि०व्या०, पृ० 18

[37] तथाहि यथा विरिञ्चिरेकं वस्तु गृहीत्वा अन्यत् करोति तथा यो विधिः प्रवर्तते स आदेशो विरिञ्चिरुच्यते इत्यर्थः। तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 39, पृ० 18

[38] आगमो विष्णु, सू०सं० 40, हरि०व्या०, पृ० 19

[39] मध्यत इति ब्रह्मरुद्रयोः सृष्टिसंहारयोर्वा मध्ये इत्यर्थः। तथा प्रकृति प्रत्ययोर्मध्ये आविर्भूय द्वयोः पोषको भूत्वा यो विधिः प्रवर्तते स विष्णुरुच्यते, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 40, पृ० 19

[40] लोपो हरः, सू०सं० 41, हरि०व्या०, पृ० 19

[41] हरो यथा वस्तूनां नाश हेतुर्भवति तथा वर्णादीनां नाश हेतुरिति शेषं समानम्, तद्धितोद्दीपनी टीका, सू०सं० 42, पृ० 19

संस्कृत

वैदिकसाहित्ये विवाहसंस्कारस्य वैशिश्ट्यम्

डॉ महेन्द्र पाण्डेय

वेद विभाग, सं.सं.वि.वि, वाराणसी

विवाहसंस्कार: जीवनदर्शनस्य संस्कार:। इयमेव सृष्टे: मूलसंस्कृति:। राष्ट्रियताया: संस्कृतिद्व: प्राचीनतमास्ति। वस्तुत: सर्वेऽपि संस्कारा: वैदिक संस्कृत्यात्मीकृत्य विद्यन्ते। सम्पूर्णस्य धर्मस्य संस्कारस्य च मूलत्वेन वेदा एवोपन्यस्ता:। यतोहि चतुर्णामाश्रमाणां धर्मार्थकाममोक्षाणां च मूलं वेद एव। कथितमस्ति ''सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति'' इति स्मृतिवचनानुसारं सर्वमिदं पुरोदृश्यमानं स्थावरजंगमात्मकं जगत् यतो जायते तत् सर्वं कार्यकारणजातम्। जगत्सर्जने अनेकविधं तत्त्वं निमित्तोपादान कारणत्त्वेन विराट् पुरुषात् निष्पद्यते इति वेदेषु निरूपितं वर्तते। एतज्ज्ञायते यत् पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाश पंचतत्त्वेभ्य: सृष्टे: संरचनाभवत्। एतेभ्य: पंचतत्त्वेभ्य: नि:सृत सूक्ष्मांशै: मानवशरीरं निर्मितं जातम्। मानवशरीरे आत्मा नित्यं शाश्वतमिति सर्वे जानन्ति, कथितमपि ''**आत्मैवेदमग्रमासीत्पुरुषविधा**''।[1] स्त्रीपुंमांसौ एव पुरुष: सैव प्रजापति:। इयमेव सृष्टि:विवाह इत्यनेनावगम्यते। यतोहि प्राक्काले सृष्टे: पूर्वं आत्मा एव केवलं एकाकी रभते तदा भीतो आत्मा द्वितीयमैच्छत् द्वैधारूपोऽभवत्। तदा सृष्टिरभवत्। सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्य सोऽहमस्मी तस्मादेकाकी विभेति सहायमिक्षाचक्रे यद् मदन्यन्नास्ति स द्वितीयमैच्छत् स है तावनाप यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परीष्वक्तौ, द्वैधा परापत्तत:, पतिश्च पत्नीचाभवतां तस्मादिदमधामिति, ततो मनुष्या: अजायन्त। अत: अयमेव विवाह नाम्ना स्वीक्रियते मुख्योऽयं संस्कार:। विशेषेण उह्यते धर्मो यस्मिन् संस्कारे स अथवा विशेषेण वहनमिति विवाह संस्कार:। अत्र संस्कार नाम संस्कृयते अनेन श्रौतेन स्मार्तेन वा पुरुष इति। सर्वेऽपि संस्कारा: धर्मे आरूढ इति। ''**धारणात् धर्म:**'' इत्यनेन संस्काराणां धारणेनैव धर्मसु प्रवृत्ति: भवति। स द्विविध: प्रवृत्तिधर्म:, निवृत्तिधर्मश्चेति अभ्युदय फलक प्रवृत्तिधर्म: यस्मिन् वेदोक्त कर्मकाण्डं नि:श्रेयसं फलं निवृत्तिधर्मे कथित:। आचार्य हारितेन कथितं द्विविध एव संस्कारो भवति बाह्यो दैवश्च गर्भाधानादि स्मार्त्तो बाह्य:, पाकयज्ञ: हविर्यज्ञाश्चेति दैव:। संस्कार विषये बाह्यसंस्कारस्य गौरवमिति ज्ञायते- बाह्येन संस्कारेण संस्कृतम् ऋषीणां सलोकतां गच्छति। वस्तुत: विवाह संस्कार: विश्वस्तरीय: संस्कार: यतो हि ''अग्निषोमात्मकं जगत्'' अत्र अग्निषोमयो: एव सृष्टि: सैव यज्ञ: । सैव स्त्रीपुंसौ इति। वेदेऽपि प्रमाणीक्रियते

''यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमान: सचन्त यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति देवा:।।[2]

स पुरुष यज्ञेन सर्वमसृजत्। अस्मिन् प्रसंगे शतपथब्राह्मणे प्रतिपादितम्-

योषा वा आप:, वृषा अग्नि:, गृहा वै गार्हपत्य: तदगृहेश्वेवैतन्मिथुनन्प्रजानन् क्रियते। अपि च गृहमेव वास्तु स्त्री इत्यर्थ:, यथा ऋग्वेदे -

'' जायेदस्तं'' स्मृतिषु ''गृहिणी गृहमुच्यते।
तत: गृहपतिना संयुक्तेभ्य:।।'[3]

तदावास इह लक्षणया गार्हपत्यमुच्यते। तत्र ''गृहा वै प्रतिष्ठा'' आधुनिकेऽपि वैदिक विवाह संस्कारे गार्हपत्यस्य महन्महत्त्वं वर्तते। इह संसारे यद् दृश्यते सैव स्त्री-पुरुष एव सैव सृष्टेः सहधर्मिणी इति। ऋग्वेदे कथितमस्ति-

''अग्निः सूर्यस्थापकः ज्योतिश्चक्रस्तम्भकश्च अतोऽयं भवति सृष्टिकर्ता।[4]

तथा च यावज्जीवेषु प्राणाग्निः तावदेव देहधारणं तस्माद्विश्व देवोऽग्निः ज्ञातं यत् अग्नितापं विना असम्भवा वनस्पयुपपत्तीरिति विज्ञानक्रिया सिद्धः। अतो विश्वविधायकः अग्निषोमः = स्त्रीपुंसौ विवाह संस्कार इत्यर्थावगम्यते। स्त्रीपुंसौ विषये शतपथब्राह्मणं प्रमाणयति। **''द्वन्द्वं वै वीर्यं''**[5] अत्र वीर्यं = विक्रमं, पुत्रः इत्यवगम्यते। मम इदं वीर्यं असन्तनोतु इति। ब्राह्मणं कथितं -**अथो अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी।**[6] विवाह संस्कार विषये बौधायनः जायमानो वै ब्राह्मस्त्रिभिऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति। अतः विवाहः गृहस्थाश्रमस्य मुख्योऽधारः प्रमाणत्वेन गृहीतः। **एथेन्स इति नगरे शासकेन आदेशितः तु सर्वेऽपि वैवाहिकाः स्युः**[7]**।**

तथा च स्त्रीपुंसौ इति अरणिद्वयेन जनिष्यमाणस्य नाम अग्निरिति, तौ पुरुरवा -उर्वशी इत्यनेनावबोध्यते। अनयोः यज्ञस्य परिपूर्णतां एति। यज्ञस्य याषा वै वेदि इति। **अयज्ञो वा एष यो अपत्नीकः**[8] अतः आधुनिकेऽपि समाजे विवाहस्य महत्वं जीवनदर्शने उपलभ्यते। प्राक्कालादेव अस्माकं मध्ये अष्टौ विवाह भेदाः सन्ति।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचस्त्वष्टमः स्मृतः॥

तत्र प्रथमं अलंकृत्य कन्यामुदक पूर्वं दद्यादेश ब्राह्मविवाहः यथा-**ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृतः तज्ज पुनात्युभयतः पुरूषानैकविंशतिम्॥**[9]

देवार्ष विवाहौ-

"यज्ञस्य ऋत्विजे दैवं आदायार्षस्तु गोद्वयम्।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट्॥"

प्रजापत्यविवाहलक्षणम्-

"इत्युक्त्वा चरतो घर्म सह या दीयतेर्थिने।
स कायः पावयेतेज्जः षट् षड्वश्यान्सहात्मना॥"

आसुरगान्धर्वादि लक्षणानि-

"आसुरो द्रविणदानादन्धर्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणत्पैशाचः कन्यकाछलात्॥"

एतावता अष्टौ विवाहभेदाउक्ताः। विवाहस्य विषये यथा याज्ञवल्वः-

"लोकानन्त्यं दिवः प्रप्तिः पुत्रपौत्र प्रपौत्रकैः।
यस्मातस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्तव्याश्च सुरक्षिताः॥"[10]

अर्थात् इहसंसारे वंशस्याविच्छेदः लोकान यन्ति। दिवं प्राप्नुवन्ति पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रकैर्लोकान् गमयन्ति। एवं वंशार्दिभिः प्रेयाप्रेयमार्ग गच्छन्ति स्वर्गादिप्राप्तिरित्यन्वयः। यस्मात् स्त्रीभ्यः एतद्वयं भवति तस्मात् स्त्रियः वैवाहिकेन सेव्याः प्रजार्थम्। रक्षितव्याश्च धर्मार्थम्। यथा आपस्तम्वेन-**"धर्मप्रजासपत्तिः प्रयोजनं दारसंग्रहस्योक्तं धर्मप्रजासम्पन्नेषु दारेषु नान्यां कुर्वीत्"**

"धर्मे सर्वं प्रतिष्ठित" इत्यनेन वचनेन वैवाहिकसंस्कारोऽपि धर्मः अतः वैवाहिक परित्यज्य कोऽपि जीवाः अग्रसरं नैव गन्तुं शक्नुवन्ति। अतः विवाहसंस्कारः सृष्टेः मूलं इति विचारणीयम्। अनेन संस्कारेण शैनः शनैः वर्धमानो भवति। संस्कारोऽयं ज्योतिषशास्त्रप्रतिपाद्यमुहूर्तनक्षत्रादियुतं भवति। नक्षत्रग्रहस्यापि सृष्टौ स्वनिगुढतात्पर्यमिति।

ज्योतिषशास्त्रं कालविज्ञापकं शास्त्रमिति। मुहूर्तं शोधयित्वा क्रियमाणाः संस्कारादिक्रियाविशेषाः फलाय कल्प्यन्ते। शास्त्रमिदं यावद्धितं करोति न तावदन्यद् किमपि शास्त्रम्। शास्त्रमिदं खगोलस्याधारम्। वर्तमान समये भारते भारताद् बहिश्च वैज्ञानिकाः अध्ययनानुसन्धानानुसरेण विशेषण प्रवर्तन्ते।

विवाहस्य युवावस्थायां प्रमाणियति वेदः-

"तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्तत्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायनिध्मो घृतनिर्णिगिप्सु।।"[11]

अपि च

"वधुरियं पतिमिच्छन्त्येति य ई वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद् रथ आ च घोषात् पुरुसहस्रापरि वर्तयाते।।"[12]

विवाहसंस्कारविधिविषये वैदिकमन्त्रः, बहुधा प्रयोज्यन्ते ते च मन्त्रः वैज्ञानिक दृष्ट्या अनुसन्धेया इति। अपिच विवाहकाले बहुविधद्रव्याणामपि च प्रयोगः विधीयन्ते। तेषां महन्महत्वं वर्तते तेषां वरकन्ययोर्मध्ये वैशिष्टयेन वैज्ञानिकी प्रभावो संदृश्यते। यथा-

1) **द्वारपुजनम्**- जीवनदर्शनस्यारम्भकालः
2) **मधुपर्कम्**- मधुमिश्रेण पूरयन्त्युभयावयवरुद्धयै।। [13]
3) **घृतम्**- आयुर्वृद्धिः घृतं वै आयुः यथा- घृतंच वै मधु च प्रजापतिरासीत्। यतो मध्वासीत् ततः प्रजाः असृजत। यज्ञो वा आज्यम्।[14]
4) **जलम्**- जलं एव जीवम्- सर्वान् कामान् अवाप्नमिति।
5) **हरिद्रालेपनम्**- उभयोः सौन्दर्यकरणमारोग्यवर्धन वा।
6) **समंजनम्**- एकीकरणम् सहैकीभाव वा।
7) **गोत्रोच्चारः**- अनयोः गोत्रयोः गौत्रैक्यमिति।
8) **कन्यादानम्**- दानम् स्वस्वत्वनिवृतिपूर्वकं परस्त्वापादनं इति।
   अर्थात पितुर्गृहात् पतेर्गेहे गमनम्। धर्म प्रजासम्पत्यर्थम् यज्ञापत्यर्थम् ब्रह्मदेवर्षिपितृतृप्त्यथम्।
9) **ब्रह्मणवरणम्**- वरकन्ययोः पंचतत्वानां ब्राह्मणैः आच्छदनंमिति भावः।
10) **अस्मारोहणम्**-अश्वमेव जीवनदर्शने दाढ़र्यम्।
11) **सप्तपदो**- सप्तपदाक्रमणम्। यथा- इखे =अन्नाय, अर्जे =बलाय, धनपुष्ट्यै मयोभवाय= सौख्याय कल्याणाय च, पंचपशुभ्यो = पशु वै धनम् तेभ्यो, षड्-ऋतुभ्यो = षड् ऋतवः तेभ्यो आचरणमनुकुलमिति। सखे = मित्राय अर्थात् सदैव सहैकमिति।
12) **लाजाहोमः**- अत्र शमी पलाशमिश्रैर्लाजैः अग्नौ आहुतिर्भवति
   अर्थात् शमी= शन्त्वाय।[15]
   पलाशः = अनेन जूहुयात्रं भवति हूयते अनया सा! अथवा चन्द इव शैत्यम्। चन्द्रकाष्ठमिति।
13) **लाजाः** - आदित्यानां वा एतद् लाजा।[16]

अर्थात् सुखद:खेऽपि। लाजा इव समे कृत्वा अहोरात्रमादित्यमिव प्रकाशनीयम्।

ध्रुवीदर्शनम् = स्थैर्भावम्।

सुमंगली = सौभाग्यप्रतीकम्

एतावता विवाहसंस्कारस्य वैज्ञानिकत्वावैशिष्ट्यंश्रौतस्मार्तग्रन्थेषु विशिष्टं सम्मानमादरंचधितिष्ठति। विवाहसंस्कारस्य महत्वं अस्मिन् वेदमन्त्रे प्रस्फुटति-

"कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुविभति॥"[17]

अत्र उषादेव्या कुमारीरुपतयोपकल्पना वर्तते। यथा उषा स्वप्रकाशेन संसारं संस्कृतं करोति तथैव अस्माकं राष्ट्रऽपि कन्या वैवाहिकेन उभयोंर्वश वृद्धि प्रकाशयति। इति। **कृण्वन्तौ पुत्रनप्तृभिः इति शम्॥**

संदर्भ

[1] बृहदारण्यकोपनिष्ठाद् तृतीय ब्राह्मण

[2] शु0 वे0 31.16

[3] पा0 सू0 4/4/90

[4] ऋ0वे0 (4/153/3)

[5] शतपथब्रा0 प्रथम् काण्डे

[6] शतपथब्रा0 प्रथम् काण्डे

[7] वै0सा0 इतिहासे ए हिस्ट्री पृ05

[8] तै0ब्रा0

[9] याज्ञस्मृति: आचारधयाये

[10] याज्ञस्मृति: आचारधयाये

[11] ऋ0 2.35.4-6

[12] ऋ0 5.41.7

[13] तै0स0 5.2.9

[14] तै0आ0 3.3.4

[15] मै0स0 1.10.12

[16] ष0वा0 13.2.1.5

[17] ऋ0वे0 1.23.10

मैथिली

आलोचना आ साहित्यवृद्धिः विश्लेषणात्मक अध्ययन

सरोज कुमार

सहायक प्राध्यापक, मैथिली विभाग, बी.डी. कॉलेज, पटना

समालोचना शब्दक व्युत्पति एहि रूपँ भेल अछि-सम+आ+लोचना। एहिठाम 'लोच' धातुक अर्थ ''देखब'' एवं 'आ' उपसर्ग अथ '' चारू कातसँ'' हाइछ, एहि तरहँ आलोचना शब्दक अर्थ होइछ, ''चारू कातसँ देखब''। 'आ'-उपसर्ग सँ पूर्व जोड़ल अछि-'सम' जकर तात्पर्य होइछ ''सम्यक् रूपसँ'', अर्थात् समीचीन रूप सँ फलतः ''समालोचना'' क तात्पर्य होइछ कोनो वस्तुकँ सभ दृष्टिसँ देखब, ओकर पूर्ण परिचय प्राप्त करब तथा ओकरा प्रकाशित करब।

अंग्रेजी में समालोचना शब्द कँ ''Criticism'' कहल गेल अछि आ ''Criticism'' शब्दक मूल में 'किटिज' (Krites) जकर अर्थ होइछ निर्णय करब, छिद्रान्वेषण करब, सौन्दर्यक मूल्यांकन करब। इनसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे समालोचनाक विश्लेषण करैत कहल गेल अछि-

"It is the art of judging the qualities and values of an aesthetic object whether in literature or in fine art, it envlves the formation and expression of a judgement"

'अर्थात् कोनो ग्रन्थ कँ नीक जकाँ पढ़ि कड' ओकर गुण एवं दोषक विवेचन करब तथा ओहि संबंध में अपन मत प्रकट करब समालोचना अछि।

समालोचनाक संबंध में एकटा संस्कृतक आचार्य लिखने छथि-

"आ समन्तात् अवलोकनम् इति आलोचनम्, स्त्रियाँ आलोचना।"

वास्तव में समालोचना रचनाकार आ पाठकक बीच सेतु काज करैत अछि एवं समालोचक आनन्दानुभावक दृष्टि दैत अछि।

रचनाकारक मनक समस्त भाव जानि जाथि, तँ महत्व रखैल अछि समालोचक समक्ष उपस्थित रचना आ ओहि पर विचार करब समालोचना भेल। समालोचनाक आधार ओहि शब्द-समूहक रमणीय अर्थ कँ जनयबाक योग्यता सँ सम्पन्न रहैत अछि। तँ आब शब्दार्थ-तत्व-विवेचन दिस ध्यान देल जाए। समालोचना हेतु शास्त्रीय ज्ञान ओ निष्पक्षता अत्यंत आवश्यक। समालोचनाक क्षेत्र में साहित्यकार और साहित्य-समालोचना दुनूक कर्म और स्वभाव कँ सदा ध्यान में राखि चलैत रहत।

अमुक वस्तु नीक थीक, अमुक वस्तु अधलाह थिक, ई व्यवहार्य थिक, ई अव्यवहार्य थिक आदि विचारे तत्वतः आलोचनाक मूल थिक।

समालोचनाक महत्वक प्रसंग कालक आदि ग्रन्थ में जे किछु कहल गेल अछि तकरा अतिरिक्त ओहि सँ पश्चात् में उपलब्ध कृति में एकर बीजक दर्शन होइत अछि।

आदिकालक मध्य में जखन सामाजिक ओ धार्मिक दृष्टिएँ नव विचारधाराक आगमन भेल तखनहुँ समालोचनाक बीज अंकुरित भेल।

अर्थात् युग-युग सँ आलोच्य कृतिक मनुष्य अनिवर्चनीय आनन्द लैत आएल अछि। आओर प्राय: वर्तमान और भविष्य में सेहो लैत रहत। यादि भूत-वर्तमान-भविष्य समालोचनाक क्रम में आधारभूत सिद्ध अछि, जकर मान्यता त्रिकाल सिद्ध अछि। कतबो भौतिक संरचना, ग्लोबल वार्मिंग सँ बनैत ओ ध्वस्त होइत रहत तथापि मनुष्य ओ ओकर समाजिक अवस्था जा धरि पृथ्वी पर रहत ताधरि समालोचना रहत आ ओकर अस्तित्व रहत।

पारम्परिक समालोचक एवं रचनाकार में घनिष्ठ संबंध होइत अछि। अर्थात्-समालोचक रचनाकारक शब्दक अर्थ कँ अधिक प्रेषणीयताक संग-संग लोकप्रियता आ समृद्ध एवं नव्य प्रवाह पर दृष्टि लेल ज्ञातत्व होइत। समालोचनाक पश्चात् रचनाकारक रचना में (साहित्य में) वर्तमान युगबोध, मानवीय संवेदनाक वास्तविकता प्रेरणाक स्तर, अनुभूतिक अनुभव आदि दृष्टिएँ अत्यंत महत्वपूर्ण मानल जा सकैत अछि। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था, समाज में रहनिहार व्यक्तिक विचार धारक विवेचना-विश्लेषण व्यापक व्याख्या, समाजक व्यवस्था अध्ययन संग समालोचनाक विश्लेषण-विवेचन होएब आवश्यक अछि।

आलोचनाक परिभाषा ओ स्वरूपक आधार पर ई तँ स्वत: सिद्ध बात अछि जे 'आलोचना' ओएह ग्रन्थक होयत अछि जे प्रस्तुत आ प्रकाशित भए चुकल अछि। जे ग्रन्थ नहि बनल अछि, भला ओकर की आलोचना होयत? इएह कारण सँ किछु विद्वानक मत अछि जे आलोचना सँ केवल पुरान ग्रन्थक गुण-दोष प्रकट होयत अछि, नव साहित्य निर्माण करबाक लेल ओएह सँ कोनो विशेष सहायता नहि मिलैत अछि। किछु लोकक इएहो मत अछि जे आलोचना सँ नव साहित्यक सृष्टि में बाधा पड़ैत अछि, पर ई मत ठीक नहि अछि। यदि हम किछु देरक लेल आलोचना साहित्यक सृष्टि में बाधक सेहो मानि लए छी, तखनो इएह संसार-व्यापी नियम कें दबाए नहि सकल छी। जे बाधक-तत्व सेहो प्रकारान्त सँ साधके सिद्ध होयत अछि। संसार में सेहो सभी जगह हम देखैत छी जे सदा स्वतंत्रता आ शासन, व्यक्तित्व आ नियम, पुरान आ नव तथा लकीर पीट कए आ नव बात निकालए में एक प्रकारक विरोध चलैत रहैत अछि। पर तखनो कियो ई नहि कहि सकताह जे शासन कखनो स्वतंत्रता में बाधक होयत अछि; अथवा लकीर पीटए वालाक कारण किछु नव बात नहि उत्पन्न भए सकैत। दुनू पक्षक झगड़ा सदा किछु-न-किछु चलिते रहत; आ जखन ई झगड़ा बहुत बढ़ि जाएत अछि, तखन नव ढंग सँ विकास आ उन्नति होमए लगैत अछि। जखन स्वतंत्रताक मात्रा बढ़ैत-बढ़ैत उच्छृंखलताक रूप धारण होमए लगैत अछि, तखन किछु कठोर शासनक आवश्यकता पड़ि जाएत अछि, आ जखन शासनक कठोरता, भयंकरता तथा उदण्डता बढ़ि जाएत अछि, तखन नव ढंग सँ स्वतंत्रताक स्थापना होयत अछि। साहित्यक क्षेत्र में इएह दशा नव ग्रन्थक रचना आ आलोचनाक अछि।

आलोचनाक प्रसंग में आचार्य श्री रमानाथ झाक कथन वा दृढ़ विचार पर ध्यान देल जाय-

"यदि विद्यापतिक राधा, गोपी, अथवा दूती 'आत्मा' थिक तँ अमरूशतकहुक नायिका कँ सएह किएक नहि बुझी? अतएव हमर अपन सिद्धांत इएह अछि जे महाकवि विद्यापति ठाकुर वैष्णव नहि छलाह। ओ एक गोट 'पंचदेवोपासक' स्मार्त्त व्यवहार-कुशल कट्टर मैथिल छलाह। हुनक गीतक रचना भक्ति उद्रेक सँ नहि, श्रृंगार रसक उद्रेक सँ भेल अछि तथा हुनक रचनाक एक गोट उद्देश्य आवश्यक कामशास्त्रीय शिक्षाक सम्पादन सेहो छलैन्हि जकर प्रयोजन समाज में सब दि रहैत आयल अछि ओ रहत।"

जखन लेखक मनमाना ढंग सँ कलम चलाबए लगैत अछि आ मनमे जे किछु उटपटांग अबैत अछि; सभ लिख दैत अछि, तखन आलोचनाक अंकुशक आवश्यकता होयत अछि। आलोचनाक अंकुश लोकक मममाना रास्ता पर चलए सँ रोकैत अछि आ नीक मार्ग पर चलबाक लेल बाध्य करैत अछि। किछु दिन तक लोक आलोचकक बताएल मार्ग पर चलैत अछि; पर आगा चलि कए ओएह मार्ग सँ ऊबि जाइत अछि आ आलोचकक शासन सँ निएल कए नव-नव मार्ग खोजि लैत अछि; तखन आलोचक मार्गक कंटक आदि दूर करि कए ओकरा परिष्कृत करए लगैत अछि आ लोककें गड्ढामें गिड़ै सँ बचएबाक लेल उत्साहित करैत अछि। बस इएह क्रम संसारक अन्यान्य क्षेत्रक अनुसारें चलैत रहैत अछि। इएह दशा में ई कहब कदापि उपयुक्त नहि भए सकैछ जे आलोचना साहित्यक सृष्टि में बाधक होएत अछि। यदि ई एक-प्रकार सँ बाधक सेहो भए सकैत, तखनो प्रकारान्तर सँ इ ओएह काजमे अवश्य सहायक होयत! हँ! ई अवश्य अछि जे आलोचक सदा साहित्यक पाछाँ-पाछाँ चलैत आ नियंत्रण एवं शासन करैत रहत। संसार मे जखन कोनो नव आन्दोलन अथवा बात उत्पन्न होयत अछि, तखन ओएह सम्बन्ध में बहुत किछु विरोध, टीका-टिप्पणी आ आलोचना आदि होयत अछि। मुदा धीरे-धीरे विरोध अथवा आलोचक अपने-आप नव विचार एवं आदर्शक अनुकूल बनाए लैत अछि, आ ओएह नव विचार तथा सिद्धान्तक आधार पर नव बात निकाएल कए नव ढंग सँ लोककें ओकर अर्थ बताबए लगैत अछि।

एहि प्रसंग में हम 'संत कबीरजी'क एकटा श्लोक लिखब उचित बुझए छी-

"निंदक नेड़ा राखिए, आँगन कुटी बंधाई।
बिना सांबण पांणी बिना, निरमल करै सुभाई।।"

निष्कर्षत: हम इएह कहब जे बिना आलोचकक साहित्यवृद्धि नहि भए सकैत अछि तें आलोचक रहब आवश्यक अछि अर्थात् समालोचनाक महत्व बहुल असीम अछि, एकर अनेक प्रकार भय गेल अछि जे साहित्य संसारक हेतु एकता पृथक अनुसंधानक विषय बनि गेल अछि। एवं प्रकारँ डॉ. बासुकी बाबू उभयसंगमकारीक वर्ग में छथि। ई आचार्य श्री रामानाथ झा, डॉ. जयधारी सिंह आदि समालोचक लोकनिक पथ पर सफलतापूर्वक समालोचना कर्म एवं साहित्य वृद्धि हेतु संपादित कलनि अछि।

संदर्भ

1. Encyclopaedia Britanica] Vol-8, Page-646-4
2. समालोचना-शास्त्र–डॉ० जयधारी सिंह, द्वितीय संस्करण: 1989, पृष्ठ संख्या-1, प्रकाशक- मैथिली अकादमी, श्री कृष्णापुरी, पटना-800001।
3. साहित्यलोचन-डॉ० श्यामसुन्दर दास, प्रथम संस्करण: 2011, पृष्ठ संख्या-178, अनुपम प्रकाशन, पटना-800004।
4. कबीर ग्रन्थावली (सटीक)–डॉ० रामकिशोर शर्मा, नवम् संस्करण: 2013, पृष्ठ संख्या-297, लोकभारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद-1।
5. मैथिली आलोचना साहित्यक दिशाबोध-बच्चा ठाकुर, प्रथम संस्करण: 2011, पृष्ठ संख्या-6, प्रकाशक-शेखर प्रकाशन, इंद्रपुरी, पटना-24।

राजा राममोहन राय के सामाजिक-पुनर्जागरण की दार्शनिकता

सुमन कुमारी

शोध-छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

मानव जीवन के समस्त क्रियाकलापों में दर्शन का प्रमुख महत्व है। मनुष्य या समाज द्वारा किया गया कोई भी कार्य तब तक स्वीकार्य नहीं होता जबतक उसे एक दर्शन के वैचारिक एवं तार्किक स्तर पर मान्यता नहीं मिल जाती है अत: किसी सामाजिक आन्दोलन को चलाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके पीछे एक ठोस दार्शनिक आधार उपलब्ध हो।

रीति-रिवाज को विश्वास की सत्यता का पर्याप्त मापदण्ड नहीं माना जा सकता क्योंकि रीति-रिवाज या परम्पराओं का श्रीगणेश स्वार्थनिहित व्यक्ति द्वारा भी हो सकता है। इन्हें सन्सथाएँ भी जन-जीवन पर लादती हैं ताकि उनके प्रभाव एवं रक्षण को प्रश्रय मिल सके। इतना ही नहीं परम्परायें टुटती रहती है तथा बदलती हुई परिस्थितियों में उनमें बदलाव आता रहता है। फलस्वरूप परम्परा में निहित अभ्यास वस्तुनिष्ठ नहीं होते। इन्हीं तथ्यों के आधार पर राजा राम मोहन राय यह मानते हैं कि परम्परा या रीति-रिवाज को किसी भी विश्वास का पर्याप्त साधन स्वीकार नहीं किया जा सकता राजा राम मोहन राय के इस विचार को मूर्त्त रूप में उपस्थित करते हुए दी० विसॉप लिखते हैं–

> *"रीति-रिवाज, अभ्यास विश्पस के सत्यता की पर्याप्त कसौटी नहीं है। किसी भी अभ्यास या धर्माविधि को मात्र दोहराने से वे सत्य नहीं हो जाते हैं। रीति-रिवाज में सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन सन्निहित होते हैं अथवा रीति-रिवाज सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन के फल होते हैं। यदि कोई विश्वास रीति-रिवाज की वस्तु है तो अनिवार्यत: यह यर्थाथ नहीं बन जाता।"*

इसी प्रकार किसी भी सत्य में विश्वास करने वाले व्यक्तियों की संख्या के आधार पर उनके विश्वास के औचित्य को सिद्ध नहीं किया जा सकता। मान लिया जाये कि पाँच व्यक्ति यह दिखलाना चाहते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है तथा पच्चास व्यक्ति यह दिखलाना चाहते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है, तो क्या इस बहुमत के आधार पर यह मान लिया जा सकता है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। निश्चित रूप से ऐसी मान्यता विश्वास के पीछे विश्वास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को विश्वास की यथार्थता अथवा सत्यता की गारन्टी नहीं माना जा सकता जैसा कि राय लिखते भी हैं–"यह देखा जा सकता है कि किसी कथन की सत्यता कहने वाले व्यक्तियों की बहुसंख्यक्ता पर निर्भर नहीं करती तथा किसी भी कथन की अविश्वसनीयता इसलिये नहीं स्वीकार की जा सकती कि उनके कहने वालों की संख्या बहुत ही कम है।" इस कथन को राय और अधि क स्पष्ट कर देते हैं। उनके अनुसार यदि किसी कथन की सत्यता का आधार उसके मानने वालों की बहुसंख्या है तो किसी भी धर्म को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता क्योंकि आरम्भ में इन सबों

के मानने वालों की संख्या बहुत कम थी। अत: सत्यता और असत्यता का निर्धारण संख्या के आधार पर कभी भी निर्धारित नहीं हो सकता।

पुन: दावा किये जाने वाले विश्वासों एवं कार्यों की सत्यता को काल, पवित्रता का परिमल प्रदान नहीं करता। इसका अर्थ यह है कि काल-क्रम में स्वीकारे गये या अतीत काल में माने जाने वाले विश्वासों को सामान्यता सत्य मान लिया जाता है। ईश्वर के साथ भी यहा बात है। प्राय: प्रत्येक ध र्म ईश्वर के सनातन काल से स्वीकारे जाने की बात करते हैं तथा कालावधि को ऐसे विश्वास की सत्यता का मापदण्ड स्वीकार कर लेते हैं। राय ऐसे विचार को अमान्य सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। इनके अनुसार काल-क्रम से माने जाने वाले कई विश्वासों की शुद्धता देखी जा सकती है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सारे के सारे विश्वास ऐसे ही हों। बहुत सारी ऐसी मान्यतायें होती हैं जो चमत्कारी होती हैं तथा इनके चमत्कार में लोग सदा से विश्वास करते रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह सत्य हो ही जाये। बहुधा ऐसा देखा जाता है काल-क्रम से ऐसे विश्वासों में अशुद्धियाँ आ जाती है, वे विकृत रूप में उपस्थित कर दी जाती हैं तथा बढ़-चढ़ा कर उनका रूप उपस्थित किया जाता है। अत: उनकी विश्वसनीयता आधारहीन है। ऐसे विचारों में उदाहरणस्वरूप यह कहा जा सकता है कि वर्षों पूर्व किसी शिशु ने अध्यात्म के गर्भ से जन्म लिया था तो शायद यह प्रतीत नहीं होता। यदि हम वर्तमान की घटना, वर्तमान में स्वीकारे जाने वाले विश्वास की जाँच तर्क एवं विवेक के आधार पर करते हैं तो फिर अतीत की बातों को तर्क-सम्मत नहीं होते हुए भी हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं? अप्रकट रूप से इसे ईसाई धर्म के संस्थापक ईसा के सन्दर्भ में देखा जा सकता है तथा ऐसी व्याख्या के पीछे अनुभव एवं तथ्यात्मकता के विचार निहित हैं। राय इस विचार की परीक्षा और अधिक तर्क पूर्ण ढंग से करते हैं तथा मानते हैं कि अतीती की व्याख्या के लिये कोई आवश्यक नहीं है कि व्याख्या करने वाले व्यक्ति को उस समय भी उपस्थित होना चाहिये। सत्य तो यह है कि हम कारणिक सिद्धान्त के परिपेक्ष्य में जिस प्रकार वर्तमान की घटनाओं को बाँधते हैं उसी प्रकार अतीत की घटनाओं को भी बाँध सकते हैं। ईश्वर के प्रमाण की समस्या तो किसी भी समाप्त होने वाली समस्या नहीं है। किन्तु ईश्वर को आश्चर्य सदा कारणिक सम्बन्ध के भौतिक स्वरूप के विपरित रहता है। यही कारण है कि ईश्वर जैसी विश्वजनीन सत्ता के पीछे चमत्कार का हाथ कभी भी स्वीकारा नहीं जाता। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर को जानने की चेष्टा करता है तथा पूर्व के धर्म ग्रन्थों या धर्मों द्वारा उनकी श्रुति को वे काल की सीमा में बांध कर महत्वहीन नहीं बनाते।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट है कि राजा राम मोहन राय यद्यपि चरम सत्ता की व्याख्या का आधार कारणिक सम्बन्ध को मानते हैं किन्तु ऐसे कारणिक सम्बन्ध को वे अलौकिक न मानकर मानव रचित स्वीकारते हैं। उनके पीछे इनकी गत्यात्मकता का प्रमुख हाथ है।

राजा राम मोहन राय यह मानते हैं कि सृष्टि के पीछे जो नियम काम करते हैं या जिन नियमों द्वारा यह जगत स्पष्ट हो पाता है वही नियम ईश्वर की व्याख्या के लिये भी महत्व रखते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि राय ईश्वर के अस्तित्व को सामान्य धरातल पर लाने की चेष्टा करते हैं तथा मानते हैं कि ईश्वर के सिवा वास्तिविक अस्तित्व कुछ भी नहीं है। संसार की जितनी भी चीजें हमें दिखाई देती हैं वह सभी ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति हैं। अत: वे श्रुति और भविष्यवाणी का खण्डन करते हैं। धर्मों में श्रुति को ईश्वर के अस्तित्व अथवा ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या का आधार माना गया है, अर्थात श्रुतियों में बतलाये गये ईश्वर को मान लिया जाता है, उसके अस्तित्व को स्वीकारा जाता है। वेदों को भारत में श्रुतियों की संज्ञा दी गयी है तथा ईश्वर के अस्तित्व को वेदों की सुश्रुति के आधार पर सिद्ध किया जाता है। राय यह बतलाते हैं कि किसी भी व्यक्ति को किसी विश्वास के प्रति श्रद्धा इसलिये नहीं व्यक्त करना चाहिये कि उनके पूर्वज उसे स्वीकारते रहे हैं। इसी प्रकार किसी

भी व्यक्ति को अपने पूर्वजों द्वारा बतलाये गये तथ्यों कि अवहेलना नहीं करनी चाहिए क्योंकि दूसरे लोग इसे पसन्द नहीं करते। इसी प्रकार धर्म के समर्थकों के बीच कभी भी मतैक्य नहीं होता। फलत: उनकी भविष्यवाणी भी सत्य नहीं हुआ करती और न उनकी भविष्यवाणी को अन्तिम सत्य का ही रूप दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से राय श्रुति तथा चरम सत्ता के प्रति की जाने वाली भविष्यवाणी द्वारा उपस्थित किये गये प्रमाण को अस्वीकारते हैं। इनका यह विश्वास है कि जिन नियमों द्वारा यह जगत प्रशासित होता है वही ईश्वरीय नियम भी हैं तथा ईश्वर भी इन्हीं नियमों द्वारा संचालित होता है। ऐसी स्थिति में चमत्कार में विश्वास करना न्यायोचित नहीं है। वे लिखते भी हैं, "सृष्टिकर्त्ता को असंभव वस्तुओं के निर्माण कि शक्ति नहीं है, जिस प्रकार दो व्याघातक विरोधी तथ्यों के अस्तित्व की सम्भावना:" इसी प्रकार श्रुतियों एवं भविष्यवाणी करने वालों के सत्य के दावों के विचार को खण्डित करते हुए वे लिखते हैं–"जिसे एक राष्ट्र सच्चे विश्वास का पथ-प्रदर्शक कहता है, दूसरा उसे गलत मार्ग बतलाने वाला कहता है।" इसे समझने के लिये एक उदाहरण दिया जा सकता है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि दो भविष्यवक्ताओं की भविष्यवाणियाँ परस्पर विरोधी दावों को प्रश्रय देती है। जहाँ एक भविष्यवक्ता किसी विशेष सत्य की बात करता है, वहीं दूसरा उसे अत्सय सिद्ध करते हुए एक भिन्न प्रकार के सत्य की व्याख्या करता है। ऐसी परिस्थितियों में दोनों में से किसी एक को भी सही नहीं माना जा सकता।

राजा राम मोहन राय यह मानते हैं कि ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूप की सही व्याख्या विवेक एवं अनुभूति के द्वारा ही संभव है। वे दोनों ही सत्य के दो प्रमुख अधिनियम हैं। वैयक्तिक विवेक एवं अनुभूति प्रत्येक धर्म के मौलिक सिद्धान्तों के आधार हैं, जो उन्हें एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की ओर ले जाते हैं। अत: विवेक एवं अनुभूति से भिन्न ईश्वर के प्रमाण का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वे लिखते भी हैं–"वैसी वस्तुओं के अस्तित्व में आस्था रखना जिनकी अनुभूति से विरूद्ध है तथा जो विवेक से दूर हैं, किसी भी विवेकशील व्यक्ति की शक्ति के बोधक नहीं हैं।" अत: वे आत्म-विश्वास को ग्रन्थों की व्याख्या के क्रम में महत्वपूर्ण मानते हैं। इनका यह सशक्त व्यक्तिवाद उनकी निम्नलिखित उक्तियों से स्पष्ट हो जाता है–"मानव-समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति मे बौद्धिक निकायों एवं इन्द्रियों का ईश्वर द्वारा प्रावधान किया जाना इस तथ्य का बोधक है कि वे अपनी जाति के अन्य प्राणियों की तरह किसी भी कार्य को आगे नहीं बढ़ायें बल्कि बौद्धिक शक्ति की सहायता द्वारा ज्ञान-अर्जन करने का अभ्यास करें, शुभ एवं अशुभ के बीच भेद करने का अभ्यास करें, शुभ एवं अशुभ के बीच भेद करने की क्षमता प्राप्त करें ताकि उन्हें प्राप्त ईश्वरीय वरदान निरर्थक न हो जाय।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा राम मोहन राय ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूप की व्याख्या के लिये वैयक्तिक विवेक एवं वैयक्तिक अनुभूति के महत्व को स्वीकरते हैं तथा मानते हैं कि इनके द्वारा ज्ञान-अर्जन से तथा इनके द्वारा शुभाशुभ के विवेचन से ही ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से इनके विचार की तुलना सांख्य दर्शन के उस विचार से किया जाता है जहाँ विवेक ज्ञान या स्वभेद ज्ञान के महत्व को स्वीकारा गया है।

संदर्भ

डी०एच० विसाप: थिंकर्स ऑफ दी इन्डियन रेनसॉ, विली इस्टर्न लिमिटेड, न्यू दिल्ली।

दी इंग्लिश वकर्स ऑफ राम मोहन राय, पार्ट-2

डी०एस० शर्मा-दी रेनसाँ ऑफ हिन्दुइज़्म, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, 1994

हेम चन्द्र सरकार: राजा राम मोहन राय, दी फादर ऑफ मॉडर्न इण्डिया, राजा राम मोहन राय पब्लिकेशन सोसायटी, कलकत्ता, 1913।

उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन

अलका कुमारी

शोध छात्रा, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

डॉ0 अनीता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, डी.डी.एम.पी.जी.कॉलेज, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

सारप्राणी का व्यक्तित्व वंशानुक्रम और वातावरणकी संयुक्त उपज है। बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने में दोनों ही अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। सीखना और अनुभवों का अर्जन दोनों व्यक्तित्व के विकास में पूरी तरह से सहायक होते हैं। सीखने और अर्जन सम्बन्धी प्रक्रिया के फलरूवरूप व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व एक अनूठी विशेशता रखता है तथा वह किन्हीं विशेष लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संघर्षरत रहता है। व्यक्तित्व की जानकारी से ही समस्या का उद्‌भव और विकास जाना जा सकता है और फिर उसके निराकरण का उपाय किया जा सकता है। निर्देशन सेवाओं के प्रचार और विस्तार के साथ-साथ व्यक्तित्व मापन की आवश्यकता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। समस्या चाहे शिक्षा, व्यवसाय, मानसिक स्वास्थ्य की हो, उसके निदान और उपचार के लिए पहले व्यक्तित्व के विषय में पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार क्रियाओं एवं उसकी गतिविधियों द्वारा होती है। व्यक्ति के आचरण-व्यवहार में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक गुणों का मिश्रण होता है, जिसमें कि एकता और व्यवहार व्यवस्था पाई जाती है।

इस प्रकार व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार सामाजिक परिवेश से अनुकूलन करने के लिए होता है। प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक परिवेश में अपने विशेष व्यक्तित्व के कारण, व्यवहार करने के ढंग में भिन्नता पाई जाती है सामाजिक परिवेश में अपने को समायोजित करने के लिए वह जिस प्रकार व्यवहार करता है, उससे उसका व्यक्तित्व बनता है या प्रकट होता है। व्यक्ति के व्यवहार पर उसकी आन्तरिक भावनाओं और बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

कैटल ने व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए कहा कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व वह विशेषता है, जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सके कि किसी दी गयी परिस्थिति में वह व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा। उसके अनुसार व्यक्तित्व विशेषक मानसिक संरचनाएं हैं तथा इन्हें व्यक्ति की व्यवहार प्रक्रिया की निरन्तरता तथा नियमितता के द्वारा जाना जा सकता है।

बालक का व्यक्तित्व प्राकृतिक तथा वातावरणीय गुणों का उत्पाद होता है। प्राणी का जन्मजात स्वभाव होता है कि वह वातावरण में होने वाली पारस्परिक क्रियाओं का निरीक्षण करता है, तथा उन्हीं व्यवहारों को ग्रहण करने की कोशिश करता है। इसलिए यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि सीमित जन्मजात योग्यताओं के अलावा, वह कारक परिवेश या वातावरण ही है जो बालक के विकास को प्रभावित करता है।

निर्देशन सेवाओं के प्रचार और विस्तार के साथ-साथ व्यक्तित्व मापन की आवयकता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। समस्या चाहे शिक्षा, व्यवसाय, मानसिक स्वास्थ्य की हो, उसके निदान और उपचार के लिए पहले व्यक्तित्व के विषय में पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

व्यक्तित्व की जानकारी से ही समस्या का उद्‌भव और विकास जाना जा सकता है और फिर उसके निराकरण का उपाय किया जा सकता है। प्रायः उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थान के विद्यार्थी अपने भविष्य में कैरियर, विषय चुनाव, अच्छा प्रदर्शन आदि विषयों को लेकर चिंतित हो जाते हैं जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ता है। उनके व्यक्तित्व को जानकर उन्हें निर्देशन देना आसान हो जाता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व को निम्न प्रकार से परिभाशित किया गया है-

आलपोर्ट (1937) के अनुसार "व्यक्तित्व, व्यक्ति के अन्दर उन मनोशारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के साथ उसका एक अनूठा समायोजन स्थापित करते हैं।"

आर०बी० कैटल (1970) के अनुसार "व्यक्तित्व, वह है, जिसके द्वारा हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में क्या करेगा।"

आईजैन्क (1971) के अनुसार ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धि और शारीरिक बनावट का थोड़ा-बहुत ऐसा स्थायी और स्थिर संगठन है, जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।''

अध्ययन के उद्‌देश्य

1. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) के विकास स्तर की तुलना करना।
2. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्मआधारित-समूह नियंत्रित) के विकास स्तर की तुलना करना।
3. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक (नियंत्रित-अर्न्तद्वन्द्वी) के विकास स्तर की तुलना करना।
4. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_4$' कारक (तनावयुक्त-तनावमुक्त) के विकास स्तर की तुलना करना।

परिकल्पनाएं

1. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।
2. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्मआधारित-समूह नियंत्रित) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।
3. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक (नियंत्रित-अर्न्तद्वन्द्वी) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।
4. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_4$' कारक (तनावयुक्त-तनावमुक्त) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।

अध्ययन की विधि एवं न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णानात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में उच्च माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के जनपद गुड़गाँव के समस्त छात्र-छात्राओं को समश्टि के रूप में चयनित किया गया। शोध अध्ययन में न्यादर्श का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श के रूप में हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड के विज्ञान वर्ग के कक्षा ग्प् के 50 छात्र एवं 50 छात्राओं को चयनित किया गया।

उपकरण का चयन

शोध की प्रकृति के अनुसार एवं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रस्तुत अध्ययन में आर0बी0 कैटल द्वारा निर्मित 16 पी.एफ. व्यक्तित्व परीक्षण का चयन प्रदत्तों के संकलन के लिए किया गया। इस प्रश्नावली में सम्मिलित किये गये सभी 16 शीलगुण द्विध्रुवीय (bipolar) हैं। इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक .34 से .93 तक पाया गया है तथा सम्प्रत्यय वैधता .85 तक पायी गयी है।

इस परीक्षण द्वारा 16 में से निम्न 4 कारकों का मापन किया गया –

Øe l[;k S.No.	dkjd Factors	dkjdks ds nks foijhr /kzo (Two Extreme Poles of Factors)	
1.	क्यू$_1$ Q_1	आधुनिक (Experimenting)	रूढ़िवादी (Conservative)
2.	क्यू$_2$ Q_2	स्व–आधारित (Self-sufficient)	समूह नियन्त्रित (Group-tied)
3.	क्यू$_3$ Q_3	नियन्त्रित (Controlled)	अन्तर्द्वन्द्वी (Causal)
4.	क्यू$_4$ Q_4	तनावयुक्त (Tense)	तनावमुक्त (Relaxed)

इन कारकों का चयन कैटल ने कारक विश्लेषण विधि के आधार पर किया। ये सभी कारक एक-दूसरे से सापेक्षिक रूप से स्वतन्त्र है।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

शोध कार्य में प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण एवं विवेचना

तालिका संख्या-1: *उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) की तुलना*

Øe l[;k	leg dk uke	Nk=k dh l[;k	e/;eku	ekud fopyu	Vh&eku	lkFkdrk Lrj
1.	छात्र	250	10.90	2.83	1.5	सार्थक नहीं है
2.	छात्राएँ	250	11.26	2.48		

तालिका-1 में उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) की तुलना टी-मान के रूप में प्रदर्शित की गयी है। प्राप्त टी-मान 1.5 है जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अत: स्पष्ट है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

अत: कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या-2: *उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्म आधारित-समूह नियन्त्रित) की तुलना*

Øe l[;k	leg dk uke	Nk=k dh l[;k	e/;eku	ekud fopyu	Vh&eku	lkFkdrk Lrj
1.	छात्र	250	9.76	2.67	0.46	सार्थक नहीं है
2.	छात्राएँ	250	9.88	3.05		

तालिका-2 में उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्मआधारित-समूह नियन्त्रित) की तुलना टी-मान के रूप में प्रदर्शित की गयी है। प्राप्त टी-मान 0.46 है जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अत: स्पष्ट है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

अत: कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्मआधारित-समूह नियन्त्रित) में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या-3: *उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक द्धनियन्त्रित-अर्न्तद्वन्दीऋ की तुलना*

Øe l[;k	leg dk uke	Nk=k dh l[;k	e/;eku	ekud fopyu	Vh&eku	lkFkdrk Lrj
1.	छात्र	250	12.64	3.51	1.25	सार्थक नहीं है
2.	छात्राएँ	250	12.24	3.65		

तालिका-3 में उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक (नियन्त्रित-अन्तर्द्वन्द्वी) की तुलना टी-मान के रूप में प्रदर्शित की गयी है। प्राप्त टी-मान 1.25 है जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अत: स्पष्ट है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

अत: कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक द्धनियन्त्रित-अन्तर्द्वन्द्वीऋ में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या-4: *उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_4$' कारक द्धतनावयुक्त-तनावमुक्तऋ की तुलना*

Øe l[;k	leg dk uke	Nk=k dh l[;k	e/;eku	ekud fopyu	Vh&eku	lkFkdrk Lrj
1.	छात्र	250	10.78	3.33	7.01**	सार्थक अन्तर है
2.	छात्राएँ	250	12.94	3.57		

तालिका-4 में उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_4$' कारक (तनावयुक्त-तनावमुक्त) की तुलना टी-मान के रूप में प्रदर्शित की गयी है। प्राप्त टी-मान 7.01 है जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है अत: स्पष्ट है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर है। छात्राओं का मध्यमान 12.94 है जबकि छात्रों का मध्यमान 10.78 है अत: छात्राओं को छात्रों की तुलना में अधिक संवेदनशील पाया गया अत: कहा जा सकता है कि छात्राओं में व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_4$' कारक को अधिक पाया गया, छात्राओं को छात्रों की तुलना में अधिक तनावयुक्त पाया गया इसका कारण हो सकता है कि छात्राएँ, छात्रों की तुलना में अधिक परिश्रमी होती है, विद्यालय सम्बन्धी कार्य या किसी भी क्षेत्र से जुड़े कार्य का अच्छा प्रदर्शन करने का प्रयास करती हैं। जिससे उनमें तनाव अधिक उत्पन्न होता है।

शोध परिणाम

1. शोध परिकल्पना नं0 1 के अनुसार ''उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।'' आंकड़ों के विश्लेषण से टी-मान 1.5 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अत: शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है। शोध परिणाम से स्पष्ट है कि उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_1$' कारक (आधुनिक-रूढ़िवादी) में व्यक्तित्व की विशेषताऐं समान होती हैं।
2. शोध परिकल्पना नं0 2 के अनुसार ''उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्मआधारित - समूह नियन्त्रित) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।'' आंकड़ों के विश्लेषण से टी मान 0.46 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अत: शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है अर्थात् उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_2$' कारक (आत्मआधारित-समूह नियन्त्रित) में व्यक्तित्व की विशेषताऐं समान होती हैं।
3. शोध परिकल्पना नं0 3 के अनुसार ''उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक (नियन्त्रित-अर्न्तद्वन्द्वी) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।'' आंकड़ों के विश्लेषण से टी-मान 1.25 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अत: शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है। शोध परिणाम से ज्ञात होता है कि

उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_3$' कारक (नियन्त्रित-अर्न्तद्वन्द्वी) में व्यक्तित्व की विशेषताऐं समान होती हैं।

4. शोध परिकल्पना नं0 4 के अनुसार ''उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं के 'क्यू$_4$' कारक (तनावमुक्त-तनावयुक्त) में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता।'' आंकड़ों के विश्लेषण से टी-मान 7.01 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता स्तर पर सार्थक है अत: शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। स्पश्ट है कि उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं के 'क्यू$_4$' कारक (तनावयुक्त-तनावमुक्त) में व्यक्तित्व की विशेषताऐं समान नहीं होती छात्राएं-छात्रों की अपेक्षा अधिक तनावयुक्त रहती हैं।

शोध निष्कर्श

1. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों की व्यक्तित्व की विशेषताऐं, कारक 'क्यू$_1$' (आधुनिक-रूढ़िवादी), 'क्यू$_2$' (आत्मआधारित-समूह नियंत्रित), 'क्यू$_3$' (नियंत्रित-अर्न्तद्वन्द्वी) के संदर्भ में छात्रों तथा छात्राओं में समान होती हैं।
2. उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के छात्र तथा छात्राओं की विशेषताऐं 'क्यू$_4$' (तनावयुक्त-तनावमुक्त) कारक के संदर्भ में समान नहीं होतीं। छात्राऐं, छात्रों की तुलना में अधिक तनावयुक्त होती हैं।

शोध परिणामों का शैक्षिक अनुप्रयोग

बालकों के व्यक्तित्व के विकास में परिवार की बहुत बड़ी भूमिका होती है। परिवार के सदस्यों के साथ बालकों का अधिक समय व्यतीत होता है। परिवार के सदस्य, माता-पिता प्रस्तुत अध्ययन के शोध परिणामों से बालकों की समस्या को जान सकते हैं वह उनके कैरियर को लेकर या अच्छे कार्य के प्रदर्शन के प्रति चिन्तित होने की समस्या को समझ कर उसका निदान दे सकते हैं। कभी-कभी बालकों के अधिक संवेदनशील होने, उनके हीन भावना से ग्रसित होने पर या कार्य की उपेक्षा होने पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि तथा व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों से छात्रों की समस्या को समझ कर उन्हें सही दिशा प्रदान करने में सुविधा मिलेगी।

सन्दर्भ सूची

* आलपोर्ट एच0डब्ल्यू, (1937): पर्सनेल्टी: ए साइक्लोजीकल इन्टरप्रिटेशन, पृष्ठ संख्या 48, हेनरी होल्ड एम0वाई0।
* कैटेल, आर0बी0, (1970): हॉल तथा लिंजे द्वारा उद्धृत, थ्योरीज ऑफ पर्सनेलिटी, द्वितीय संस्करण, न्यूयार्क, जॉनविले, पृ.सं. 386
* आईजैन्क, एच0जे0 (1971): द स्ट्रक्चर ऑफ ह्यूमन पर्सनेलिटी, (तृतीय संस्करण), न्यूयार्क, मैथ्यून, पृ.सं. 2।
* क्रौन बैक, एल0जे0: एजुकेशनल साइकोलोजी, हारकोर्ट, ब्रेस, न्यूयार्क, 1954
* कैली टी0एल0: इन्टरप्रिटेशन ऑफ एजुकेशनल मैजरमेन्ट, वर्ल्ड बुक कं0, 1939
* कपिल, एच0के0: "अनुसंधान विधियाँ" हर प्रसाद भार्गत, 41230 कचहरी घाट, आगरा - 4, 1984
* कॉल, लोकेश: मैथडोलोजी ऑफ एजुकेशन रिसर्च, विकास पब्लिशिंग हाऊस, प्रा0लि0, 1984
* गुड, सी0बी0, स्केट्स डी0 : "मैथड्स ऑफ रिसर्च" न्यूयार्क एपलटैन कन्टरी क्राट्स।
* चौबे, एस0पी0: मनोविज्ञान और शिक्षा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
* बुच एम0बी0: फर्स्ट सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (1972)
* बुच एम0बी0: सैकिण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (1972-78)
* बुच एम0बी0: थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (1978-83)
* बुच एम0बी0: फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन वॉल्यूम फर्स्ट एण्ड वोल्यूम सैकिण्ड (1985-88)
* शर्मा, जी0के0 एण्ड शर्मा जी0एस0: "शिक्षा में प्रारम्भिक सांख्यिकी" प्रकाशक रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड, मेरठ।

पी.एच.डी.

प्रेसमड (मैली) से बनी जैविक खाद का जनपद मुजफ्फरनगर के कृषि क्षेत्र में योगदान

डॉ० रश्मि तायल

(पी.एच.डी.)

"अल्प विकसित देशो में कृषि में तेजी से प्रगति का राज कृषि विस्तार, उर्वरक, नये बीज एंव उचित जल की व्यवस्था में है न कि खेत के आकार में बदलाव, विपणन प्रक्रिया में बिचौलियो को समाप्त करने में।"

(W. A. Lewis)

मृदा वह प्राकृतिक पिण्ड है जोकि विच्छेदित एंव अपक्षयित खनिजों (चट्टानों) एवं कार्बनिक पदार्थों के विगलन से निर्मित पदार्थों में परिवर्तनशील मिश्रण से परिच्छेदिका के रुप में संश्लेषित होती है और पृथ्वी को एक पतले आवरण के रुप में ढके रहती है। मृदा खनिज, जैव पदार्थ एंव जल के अलावा कई प्रकार के सूक्ष्म जीवों का संयोग है। स्थान परिवर्तन के साथ-साथ संयोग का यह अनुपात भिन्न-भिन्न होता है।

कृषि उत्पादन एंव उत्पादकता का प्रत्यक्ष घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकृति प्रदत्त उपहार भूमि से है। मृदा भी रचना के प्रारम्भिक स्तर से जीवन उपयोगी संसाधन का सृजन करती है। कृषि उत्पादन की दृष्टि से मुजफ्फरनगर जनपद की मिट्टी उपजाऊ है। चावल की उपज में उपयोगी मिट्टी जो रोसली एवं स्टिफ किस्म की है, डक्कर (*Dakker*) कहलाती है। इसके साथ ही यहाँ की भूमि का क्षेत्र, झील युक्त एवं अनुपजाऊ भी है। जनपद में कहीं-कहीं पर सूखी मिट्टी वाला क्षेत्र भी पाया जाता है जिसे ''भूड'' (*Bhoor*) का क्षेत्र कहा गया। जनपद की मिट्टी का अधिकांश भाग उपजाऊ है जोकि गंगा नदी व इसके अन्य स्रोतों के संग्रहित पदार्थो द्वारा बना है। ये पदार्थ अधिकांश रूप से कैल्शियम युक्त है। कैल्शियम कार्बोनेट की उपस्थिति *Amorheus* और *Nodulated* दोनों प्रकार से गहराईयों तक समाई हुई है। सतह की मिट्टी का रंग हल्के मटमैले (*Grey*) से गहरे मटमैले (*Ash Grey*) जैसा पाया जाता है जबकि आन्तरिक सतह रेतीली, नमीयुक्त एवं मटमैली है। यह मिट्टी अनुपयुक्त एवं बाढ़ का आधार है। जबकि रेत एवं सिल्ट एक दूसरे पर जमा होते रहते है। इस मिट्टी मे नाइट्रोजन एवं कार्बनिक पदार्थो की प्रचुर मात्र है। गन्ने की उपज के लिये नाइट्रोजन एवं फास्फोरस योगिकों का मिश्रण उर्वरको के रूप में बहुत उपयोगी होता है। नहरी क्षेत्रो में बहने वाले जल तथा निकासी वाले जल ने मिट्टी की उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है परन्तु इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी जनपद में कृषि की तीव्र प्रगति हुई है।

हरित क्रान्ति के समय मृदायें प्राकृतिक पोषक तत्वों से परिपूर्ण थी। फलस्वरुप खाद्यान्न उत्पादन में आशतीत सफलता मिली, परन्तु कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान केवल उत्पादकता बढाने में ही लगा रहा जिससे मृदाओं के उर्वरा स्तर में निरनतर कमी होती गई। परिणाम स्वरुप पिछले दशक से अनुभव किया जा रहा है कि मुख्य फसलो के औसत उत्पादन में ठहराव की स्थिति आ गयी है। मृदा अकार्बनिक कणों, सडे हुए कार्बनिक पदार्थों, वायु एवं जल का एक मिश्रण होती है। मृदा के भौतिक गुण, मृदा के उपयोग तथा पादप वृद्धि के प्रति इसके व्यवाहर को प्रभावित करते हैं। यें गुण पौधों की जडो को मृदा में प्रवेश करने, जल निकास कराने, जल निकास एंव नमी धारण आदि में सहायक होते हैं। पादप पोषकों की प्राप्यता भी मृदा भी जैविक क्रियाओं में तीव्र गिरावट हुई है। अत: मृदा उत्पादकता एंव उर्वरता को ध्यान में रखते हुए फसलों का उत्पादन अति आवश्यक हो गया है।

रासायनिक उर्वरकों के निरन्तर प्रयोग से भूमि की दशा एंव उर्वरा शक्ति से ह्रास होने के कारण कार्बनिक खादों का प्रयोग करना अब नितान्त आवश्यक है। कार्बनिक खादों के प्रयोग से भूमि की भौतिक दशा, जलधारणा क्षमता एंव वायु संचरण में प्रर्याप्त सुधार होता है, जिससे मृदा का उर्वरा स्तर अधिक समय तक सुरक्षित रहता है। आधुनिक युग में कृषि का विकल्प के रुप में प्रेसमड (मैली) जोकि चीनी मिलों से सस्ती दर पर उपलब्ध हो जाती है तथा गोबर की खाद की तुलना में अधिक पोषक तत्वों से युक्त होती है, का समावेश आधुनिक परिवेश के कृषि जगत में नई क्रान्ति होगी।

जनपद मुजफ्फरनगर पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में गंगा यमुना के मध्य दोआब क्षेत्र के मैदानी भू-भाग में स्थित है।[1] यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व कृषि सम्बन्धित अन्य कार्यों में संलग्न है। सौभाग्यवश यहाँ पर सिंचाई के साधनो की प्रचुरता है। यहाँ बोये गये क्षेत्र का 92.1 प्रतिशत सिंचित है।[2] कृषि प्रधानता के कारण ही जनपद में चीनी उद्योग पेपर उद्योग, डिस्टलरी उद्योगो को प्रोत्साहन मिला है।

चीनी उद्योग में चीनी निर्माण प्रक्रिया के अर्न्तगत खोई, शीरा, प्रेसमड (मैली) जैसे उपोत्पादो का जन्म होता है। चीनी शोधन प्रक्रिया में कचरे के रुप में निकली प्रेसमड (मैली) जैविक खाद के लिए अति आवश्यक है। इसमें *Nitrogen, Sulphar Phosphorus, Potash, Calcium Oxide, Magnesium Oxide* जैसे अनेक खनीज तत्व होते हैं। जैविक खाद के प्रयोग द्वारा कृषि भूमि की उर्वरता बढेगी तथा रसायनिक उर्वको के उपयोग एंव आयात में कमी होगी। इस अध्ययन के अर्न्तगत उपोत्पाद प्रेसमड (मैली) द्वारा जैविक खाद के निर्माण की प्रक्रिया का विस्तार से विश्लेषण करके जनपद की आर्थिक स्थित को सुदृढ करने विनम्र प्रयास किया गया है।

1. प्रेसमड (मैली) द्वारा बनी जैविक खाद की आवश्यकता का अध्ययन करना।
2. प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद निर्माण विधि का विस्तार से वर्णन करना।
3. प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद की विपणन व्यवस्था करना।
4. प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद का महत्व।
5. जैविक खाद निर्माण प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करना।
6. क्षेत्रीय विकास में इसके योगदान का आंकलन करना।

अध्ययन हेतु प्राथमिक संमको के साथ-साथ द्वितीयक संमको का प्रयोग किया गया। प्राथमिक संमको के संकलन हेतु उद्यम अनुसूची का प्रयोग किया गया। द्वितीयक संमको हेतु सांख्यिकीय पत्रिका, गन्ना शोध संस्थान, मुजफ्फरनगर द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट, आर्थिक सर्वेक्षण, मुजफ्फरनगर दर्शन एंव विभिन्न अनुसंधान पत्र-पत्रिकाओं को एकत्रित किया गया तथा आवश्यकता के अनुसार अनुपात विधि एंव प्रतिशत विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया।

प्रेसमड (मैली):

चीनी उद्योग के कचरे के रुप में निकली प्रेसमड (मैली) क्षेत्रीय आर्थिक नियोजन के विकास में सहायता करता है। प्रेसमड (मैली) का मुख्यत: प्रयोग जैविक खाद तैयार करने तथा विभिन्न लघु एंव कुटीर उद्योगो में ईंधन के रुप में किया जाता है। यदि ईंधन के बजाय प्रेसमड (मैली) का प्रयोग जैविक खाद निर्माण के लिये किया जाता है, तो मृदा के उर्वरता स्तर को बढाया जा सकता है। चीनी मिल की प्रेसमड (मैली) के सम्बन्ध में कोई कार्य योजना नहीं होती है। यह मिल के लिए एक कचरा है, जिसका निस्तारण मिल मध्यस्थो के माध्यम से करती है। चीनी मिले इस प्रेसमड (मैली) को बहुत सस्ती दरो पर मध्यस्थो को या मध्यस्थो के माध्यम से विक्रय कर देती हैं।

वर्तमान में रासायनिक उर्वरको के बढते प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास होने लगा है। इसी कारण कृषि वैज्ञानिको का ध्यान कार्बनिक खादो की ओर अग्रसर हुआ। वर्तमान युग में प्रेसमड (मैली) से तैयार की गई जैविक खाद कृषि की स्थिति को सुधार सकती है।

प्रेसमड (मैली) का प्रयोग खेत में सीधे नहीं करना चाहिये क्योंकि यह अम्लीय होती है तथा साथ ही इसमें पोषक तत्व उपलब्ध अवस्था में नहीं होते तथा दीमक के प्रकोप की सम्भावना अधिक रहती है।[3] अत: इसे खेत में प्रयोग करने के पूर्व वैज्ञानिक विधियों द्वारा विघटित कर लेना चाहिये। प्रेसमड (मैली) से उपयुक्त खाद बनाने हेतु निम्न दो विधियाँ विकसित की गई हैं।

प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद निर्माण विधि:

1. उत्तर प्रदेश गन्ना शोध परिषद, शहजहॉपुर द्वारा विकसित जीवाणुकल्चर (आर्गेनोडीकम्पोजर) द्वारा।
2. वर्मी कल्चर विधि (आर्गेनोडीकम्पोजर) द्वारा।[4]

गडढा विधि द्वारा:

1.0 मीटर गहरा गडढा जिसकी लम्बाई 10.0 से 15.0 मीटर तक तथा चौडाई 1.5 मीटर से 2.0 मीटर तक हो खोदना चाहिये। इस गडढे में कार्बनिक पदार्थों जैसे गन्ने की सूखी पत्तियॉ, बैगास, कूडा-करकट, घरेलू कचरा आदि की लगभग 15 से0मी0 मोटी तह बिछा देनी चाहिए। उसके बाद 500 लीटर पानी में 100 कि0ग्रा0 गोबर तथा 1.0 कि0ग्रा0 जीवाणु कल्चर का घोल प्रति टन की दर से छिडक देना चाहिए। इस तह के ऊपर प्रेसमड (मैली) की 15 से0मी0 मोटी तह बिछाकर 8.0 कि0ग्रा0 यूरिया तथा 10.0 कि0ग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट प्रति टन की दर से डाल देना चाहिए। तीन से चार परतो के पश्चात गडढा भर जाने पर ऊपर से गोबर, मिटटी व प्रेसमड (मैली) के मिश्रण से गडढे को ढक देना चाहिए। गडढे की गहराई में वायु के आवा-गमन के लिए एक तरफ से एक फुट खाली स्थान छोड देना चाहिये। उक्त पदार्थो की प्रथम व द्वितीय पलटाई 15 दिन के अन्तराल पर तथा तीसरी पलटाई एक माह के अन्तराल पर कर देना चाहिए। इस प्रकार 90 से 120 दिनो में उपयुक्त कम्पोस्ट तैयार हो जाती है।

ढेर विधि:

इस विधि के अर्न्तगत गडढा विधि के अनुसार विभिन्न कार्बनिक पदार्थो की तीन से चार तह लगाकर 1.0 मी0 ऊॅचा, 1.5 मी0 चौडा तथा आवश्यकतानुसार 10.0 से 15.0 मीटर लम्बा ढेर लगाना चाहिए। उक्त ढेर पर समुचित नमी बनाये रखने हेतु पानी का छिडकाव समय-समय पर ढेर की पलटाई के साथ करना चाहिए।

वर्मी कल्चर विधि:

केचुॅआ कृषकों का मित्र एवं भूमि की आंत कहा जाता है। यह सेन्द्रीय पदार्थ, ह्यूमस व मिट्टी को एकसार करके जमीन के अन्दर अन्य परतों में फैलता है। इससे जमीन पोली होती है एंव हवा का आवागमन बढ जाता है तथा जलधारण की क्षमता भी बढ जाती है।

केचुॅए के पेट में जो रासायनिक क्रिया व सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया होती है, उससे भूमि में पाये जाने वाले *Nitrogen, Sulphar Phosphorus, Potash, Calcium Oxide, Magnesium Oxide* व अन्य सूक्ष्म तत्वो की उपलब्धता बढती है। ऐसा पाया गया है कि मिट्टी में *Nitrogen* 7 गुना, *Phosphorus* 11 गुना, और *Potash* 14 गुना बढता है।[5]

केचुॅए के पेट में मिट्टी व सेन्द्रीय पदार्थ अनेक बार अन्दर-बाहर आते-जाते हैं। इससे जमीन में ह्यूमस की मात्रा बढती है। तथा ह्यूमस केचुॅए के माध्यम से मिट्टी में फैलता है। इस क्रिया से जमीन प्राकृतिक रुप से तैयार हो जाती है, जमीन का पी.एच. भी सही प्रमाण में रहता है।

केंचुआ और मैली का विघटन निम्न दो चरणो में किया जाता है -

प्रथम चरण - इस चरण के अर्न्तगत जीवाणु कल्चर विधि की भॉति गन्ने की सूखी पत्तियॉ, बैगास, कूडा-करकट, घरेलू कचरा एंव प्रेसमड (मैली) इत्यादि को गडढे में सडने दिया जाता है। उक्त कार्बनिक पदार्थो का लगभग 50 प्रतिशत विघटन होने में 45 से 50 दिन के पश्चात उक्त पदार्थ को बाहर निकालकर द्वितीय चरण में केंचुओं द्वारा विघटन हेतु प्रयोग करना चाहिए।

द्वितीय चरण - इसके अर्न्तगत सडे कार्बनिक पदार्थो का विघटन 2.5 मी0 चौडे तथा 10 से 15 मी0 लम्बे टीनशेड के नीचे कराया जाता है। शेड के नीचे 10 इंच ऊँचा ईंट का प्लेटफार्म बनाना चाहिये, जिससे केंचुएं भूमि में प्रवेश न कर सके।

प्रथम चरण से प्राप्त अर्द्धविघटित पदार्थ का 0.5 मी0 ऊँचा 1.0 मी0 चौडा तथा 10 मी0 से 15 मी0 लम्बा ढेर लगाना चाहिये। इस ढेर पर 1.0 कि0ग्रा0 केचुआ प्रति टन की दर से छोड देना चाहिये। पानी के छिडकाव द्वारा ढेर की नमी 60 प्रतिशत तक तथा कार्बनिक पदार्थ का पूर्णरुप से विघटित कर देते हैं। इस प्रकार वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाता है। वर्मी कम्पोस्ट एकत्र करने के लिए ढेर की सिंचाई को 3-4 दिन के लिए रोक दी जाती है। जब ऊपर की नमी कम हो जाये तो वर्मी कम्पोस्ट को ऊपर से हटा लिया जाता है तथा उसमें उपस्थित केचुओं को दो मि0मी0 की छलनी से छानकर पुन: प्रयोग हेतु एकत्र कर लिया जाता है।

उत्तम वर्मी कम्पोस्ट की पहचान:

1. उर्वरक का रंग गहरा, काला, भूरा हो जाता है।
2. मिटटी जैसी गंध आती है।
3. उर्वरक की संरचना महीन दानेदार होती है तथा पानी में अघुलनशील होती है।
4. मक्खियों को आकर्षित नहीं करता है।

वर्मी कम्पोस्ट का संगठन:

Nitrogen	1.5-2.0 प्रतिशत
Phosphorus	1.34-2.20 प्रतिशत
Potash	0.8-1.20 प्रतिशत
Calcium Oxide	0.44 प्रतिशत
Magnesium Oxide	0.15 प्रतिशत

केचुआॅ खाद से कम्पोस्ट खाद की तुलना

	dspqvk [kkn	dEiksLV [kkn
idus dh vof/k	1 से 1.5 माह	4 माह
iks"kd rRo Nitrogen Phosphorus Potash	 2.5–3.0 प्रतिशत 1.5–2.0 प्रतिशत 1.5–2.0 प्रतिशत	 0.5 से 1.5 प्रतिशत 0.5 से 0.9 प्रतिशत 1.2–1.4 प्रतिशत
l{e ,o vU; inkFk	अपेक्षकृत मात्रा अधिक	मात्रा कम
ifr ,dM vko';drk	2 टन	5 टन
okrkoj.k ij iHkko	खाद में बदबू नहीं होती तथा मक्खी, मच्छर आदि भी नहीं बढते हैं। अतः वातावरण दूषित नहीं होता है।	खाद का निर्माण करते समय प्रारम्भित अवस्था में बदबू होती है तथा मक्खी, मच्छर आदि बढ जाते हैं। जिससे वातावरण दूषित होता है।
	तापमान नियंत्रित रहने से जीवाणु क्रियाशील/सक्रिय रहते हैं।	तापमान नियंत्रित नहीं रहने से जीवाणुओं की क्रियाशीलता /सक्रियता कम हो जाती है।

प्रेसमड (मैली) का ईंधान के रुप में प्रयोग:

कचरे के रुप में विक्रय की जाने वाली प्रेसमड (मैली) का प्रयाग ईंट भट्टो पर ईंधन के रुप में किया जाता है। जनपद के विकासखण्डो में से कुछ ईंट भट्टो का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि इन ईंट भट्टो पर लकडी के बुरादे के साथ प्रेसमड (मैली) का प्रयोग करके बडे-बडे गोले बनाये जाते हैं, जो ईंधन के रुप में प्रयोग किये जाते हैं। लकडी एवं कोयले का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। चुंकि प्रेसमड (मैली) को ईंधन के रुप में प्रयुक्त करना प्रतिबन्धित है इसलिए ईंट भट्टो के श्रमिको द्वारा इसका प्रयोग सार्वजनिक रुप से प्रदर्शित नहीं किया जाता है। ईंट भट्टा मालिक ईंधन हेतु लकडी के बुरादे एवं कोयले का प्रयोग प्रदर्शित करते हैं। ईंट निर्माण प्रक्रिया में ईंट भट्टो की लागतो को निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है।

ईंट उत्पादन की आगतें/लागतें

(प्रति हजार ईंट पर)

vkxr @ ykxr	fodkl [k.M eqt¶Qjuxj		fodkl [k.M [krkSyh		fodkl [k.M c?kjk	
	भट्टा ''क''	भट्टा ''ख''	भट्टा ''क''	भट्टा ''ख''	भट्टा ''क''	भट्टा ''ख''
1. dPpk eky	50 (5.32)	50 (5.21)	50 (5.59)	50 (5.56)	50 (4.46)	50 (4.67)
2. Je	240 (25.53)	250 (26.04)	250 (27.93)	250 (27.78)	260 (23.11)	260 (24.30)
3. 'kfDr@b/ku	600 (63.83)	600 (62.50)	550 (61.45)	550 (61.11)	750 (66.67)	700 (65.42)
4. Hk.Mkj.k	–	–	–	–	–	–
5. vU; [kpZ	50 (5.32)	60 (6.25)	45 (5.03)	50 (5.56)	65 (5.78)	60 (5.61)
6. dqy	940 (100)	960 (100)	895 (100)	900 (100)	1125 (100)	1070 (100)

स्रोत:- भट्टा स्वामी से प्राप्त जानकारी के आधार पर।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद मुजफ्फरनगर के इन तीन विकासखण्ड़ो में ईंधान/शक्ति पर होने वाला खर्च सार्वधिक है। अर्थात् ईंधन में अप्रत्यक्ष रुप से प्रयुक्त होने वाली प्रेसमड (मैली) एक ओर तो भट्टा मालिको की लागत को कम कर रही है तथा दूसरी ओर जनपद की आर्थिकी में अप्रत्यक्ष रुप से कमी कर रही है।

प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद/कार्बनिक उर्वरकों के प्रयोग से लाभः

कृषि में जैविक खाद का प्रयोग सभी प्रकार की फसलों के लिए अनुकूल है। जैविक खाद न केवल मिट्टी के कार्बनिक स्तर में वृद्धि, मिट्टी के भौतिक तत्वो की पूर्ति एंव मिट्टी संरक्षण करती है वरन सभी फसलों को लाभदायक पोषक तत्वो से परिपूर्ण करती है। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक मानी जाती है। जैविक खाद के महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

मिट्टी की दृष्टि से लाभः

1. केचुँए विधि से तैयार खाद से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।
2. भूमि की जलधारण क्षमता बढती है।
3. भूमि का उपयुक्त तापक्रम बनाये रखने में सहायक होती है।
4. भूमि में पानी का वाष्पीकरण कम होगा तथा सिंचाई जल की बचत होगी।
5. केचुँए नीचे की मिट्टी ऊपर लाकर उसे उत्तम कोटी की बनाते हैं, इसमें भरपूर मात्रा में *Nitrogen, Potash, Calcium Oxide* व अन्य सूक्ष्म द्रव्य पदार्थ प्राप्त होते हैं।
6. पौधों को विभिन्न खनिज तत्व पूर्णरुप से एंव जल्दी उपलब्ध होते हैं।

कृषकों की दृष्टि से लाभः

1. भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।
2. सिंचाई के अन्तराल में वृद्धि होती है।
3. रसायनिक खाद पर निर्भरता कम होने के साथ काश्तकार की लागत में कमी आती है।
4. विभिन्न पोषक तत्व उपलब्ध अवस्था में आ जाते हैं, जिससे पौधे उनको आसानी से ग्रहण कर लेते हैं।
5. रासायनिक खादों/नाशिकीटों के प्रयोग से होने वाले वायुमण्डलीय प्रदुषण में कमी आती है।
6. खाद्यान्न, दलहन, तिलहन एंव नकदी फसलों सभी की उपज में वृद्धि होती है।

पर्यावरण की दृष्टि से लाभः

1. सिंचित हेतु प्रयुक्त पानी में 25 प्रतिशत तक की बचत की जा सकती है।
2. भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है।
3. मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।
4. कचरे का उपयोग खाद बनाने में होने से बीमारियों में कमी होती है।
5. कृषि आधारित कार्बनिक पदार्थ का पुनः सन्तुल हो जाता है।

अन्य उपयोग:

1. केचुँए से प्राप्त कीमती *Amino Acid* एंव *Enzyme* से दवायें तैयार की जाती हैं।
2. पक्षी, पालतु जानवर, मुर्गियाँ तथा मछलियों के लिए कचरे का उपयोग खादय सामग्री के रुप में किया जाता है।
3. आयुर्वेदिक औषधियां तैयार करने में इसका उपयोग होता है।
4. पाउडर, लिपिस्टिक, मलहम इस तरह के कीमती प्रसाधन तैयारी करने हेतु केचुँए का उपयोग होता है।
5. केचुँए के सूखे पाउडर में 60 से 65 प्रतिशत प्रोटीन होता है।

प्रेसमड (मैली) द्वारा जैविक खाद की विपणन व्यवस्था:

जैविक खाद की विपणन व्यवस्था हेतु सरकारी स्तर पर कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये हैं। कृषकों को सरकार द्वारा खाद निर्माण प्रक्रिया में सहायता के लिए समय-समय पर विभिन्न कृषि संस्थानों द्वारा जानकारी उपलब्ध करायी जाती है तथा जैविक खाद निर्माण की पूरी जानकारी अनुभवी कृषि वैज्ञाननिक द्वारा दी जाती है। कृषि संस्थानों द्वारा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, प्रचार-प्रसार के माध्यम से जैविक खाद की महत्ता तथा निर्माण के लागत-लाभ विश्लेषण की जानकारी भी उपलब्ध करायी जाती है। मृदा की भौतिक दशा स्थिर रखने के लिए दृष्टिकोण से हरी खाद, गोबर खाद एंव जैविक खाद आदि का प्रयोग वांछनीय होता है। यदि सरकार द्वारा विभिन्न संस्थानों के माध्यम से जैविक खाद तैयार कराके इसका विक्रय रसायनिक खादो की भाँति ही किया जाये तो जैविक खाद का भी भविष्य स्वर्णिम हो सकता है।

प्रेसमड (मैली) द्वारा जैविक खाद निर्माण की समस्याएँ:

1. प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद के निर्माण की मुख्य समस्या प्रेसमड (मैली) की उपलब्धता एंव कृषकों को इसके प्रति अज्ञानता एंव उदासीनता है। चीनी मिल से जब प्रेसमड (मैली) के विक्रय रिकार्ड की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया तो मिल यह विक्रय रिकार्ड उपलब्ध नहीं करा पाई, क्योंकि मिल द्वारा प्रेसमड (मैली) का विक्रय बडी सस्ती दरों पर मध्यस्थों को कर दिया जाता है। ये मध्यस्थ इस मैली को कहॉ-कहॉ विक्रय करते हैं, इसकी कोई जानकारी मिल को नहीं होती है।
2. कुछ मध्यस्थों द्वारा ये प्रेसमड (मैली) ईंट-भट्टा मालिकों को विक्रय कर दी जाती है। परन्तु कुछ मध्यस्थों द्वारा प्रेसमड (मैली) विदेशों में भी निर्यात की जाती है, जहाँ इसका प्रयोग डेयरी उद्योग, मछली पालन एंव मुर्गी पालन आदि में किया जाता है।[6] डेयरी उद्योग में प्रेसमड (मैली) का प्रयोग करने से दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता 15 से 25 प्रतिशत तक बढ जाती है, क्योंकि प्रति टन प्रेसमड (मैली) में 13 प्रतिशत *Fiber* तथा 8.8 प्रतिशत *Protein* तथा 26.3 प्रतिशत *Calcium* की मात्रा पाई जाने के कारण है।[7]
3. प्रेसमड (मैली) द्वारा तैयार जैविक खाद निर्माण प्रक्रिया के विषय में कृषक अज्ञानता भी निर्माण प्रक्रिया को बाधित करती है। कृषक आज भी रासायनिक खाद का ही खेती में बहुतायत में प्रयोग कर रहे हैं। जैविक निर्माण प्रक्रिया की लम्बी अवधि के कारण तथा खुले बाजार में जैविक खाद का उपलब्ध न होने के कारण भी कृषकों का रुझान इस ओर नहीं बढ रहा है।

4. सरकार द्वारा जैविक खाद की उचित विपणन व्यवस्था के प्रति नकारात्मक रुझान एंव कृषकों की अज्ञानता के जैविक खाद निर्माण की प्रक्रिया एंव प्रगति बहुत ही धीमी गति से चल रही है। यदि हमें मृदा की उर्वरता को भविष्य के लिए सहेजना है तो सरकारी स्तर से एंव कृषकों के स्तर से अर्थात् दोनो को इस दिशा की ओर अवश्य ध्यान देने की जरुरत है।

क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में प्रेसमड (मैली) से तैयार जैविक खाद का योगदान हेतु सुझावः

जनपद मुजफ्फरनगर कृषि क्षेत्रफल एंव उत्पादन की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण ही यहाँ पर खाद फसलों के साथ-साथ गन्ने का अधिक क्षेत्रफल होने के कारण ही चीनी मिलो की अधिकता है। जिसके कारण प्रेसमड (मैली) भी यहाँ बहुतायत में मिल जाती है। जरुरत केवल प्रेसमड (मैली) के प्रयोग की सही दिशा एंव निर्देशन की है। पिछले कुछ वर्षो में ग्लोबल वार्मिंग एवं अन्य कारणो के कारण उपज एंव चीनी परता में आशतीत सफलता न प्राप्त होने के कारण एवं बढती हुई गन्ना उत्पादन लागत के कारण चीनी उद्योग भी कठिन परिस्थिति से गुजर रहा है। इस दिशा में गन्ना शोध वैज्ञानिक निरन्तर प्रयत्नशील हैं। एक ओर कृषकों, चीनी उद्योग एंव गन्ना विकास विभाग को यह अनिवार्य कहा जाता है कि वह गन्ना शोध संस्थान की वैज्ञानिक संस्तुतियों का लाभ सीधे कृषकों के खेतो पर कार्यनवित कराये। साथ ही इसका सीधा लाभ गन्ने के सहउत्पादकों को भी प्राप्त हो। जलवायु, प्रजाति, मृदा की किस्म, कर्षण क्रियायें, खाद एंव उर्वरकों की मात्रा एवं कार्बनिक खादों से जैसे - गोबर की खाद, प्रेसमड (मैली), कम्पोस्ट तथा वर्मी कम्पोस्ट जैव-उर्वरकों से सम्पूर्ण संस्तुत *Nitrogen* की पूर्ति करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ ही विशैले रसायनिक उर्वरकों की अधिकता से होने वाली हानि को भी बचाया जा सकता है।

जनपद की चीनी मिलें कचरे के रुप में प्राप्त प्रेसमड (मैली) से स्वंय भी जैविक खाद तैयार करके अपनी बढती लागत को कम कर सकती हैं एंव जनपद के कृषकों को भी अपना ध्यान रसायनिक खादों के प्रयोग से हटाना होगा तथा जैविक खादों की ओर ध्यान देना होगा, क्योंकि जैविक खादों के प्रयोग से एक ओर तो भूमि की उर्वरता शक्ति को क्षीण होने से बचाया जा सकता है, तथा दूसरी ओर कृषि के क्षेत्र में बढती कृषि उत्पादन लागत को भी कम करने का प्रयास किया जा सकता है।

सरकारी स्तर से किये गये प्रयास हमेशा ही अर्थव्यवस्था की आर्थिकी को सुदृढ करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान निभाते हैं। इस परिपेक्ष्य में, यदि जनपद में भी सरकारी स्तर से जैविक खाद की निर्माण प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जाये या कृषकों को जैविक खाद तैयार रुप में दी जाये, तो यह क्षेत्रीय आर्थिकी को और अधिक मजबूत एंव सुदृढ कर सकती है।

Bibliography

- Agriculture Situation in India.
- Buttar Gurinder Singh "Sugar Technology Association of India" Cooperative Sugar & 1999.
- CANE Sugar Manufacture in India, Kulparni D.P.
- Co-operative Sugar Oct. 2007 Vol. 39, No. 2.

- Directorate of Economic and Statistics, Ministry of Agriculture, Govrenment of India, New Delhi.
- Gunnar Myrdal (1968) - "Asian Drama" Vol. III, Gerlad Duck Worth, London.
- Indian Sugar, March (2008).
- Kahlon A. S. & George M. V. (1985), Agriculture Marketing and Price Policy, Allied Publishers, New Delhi.
- Lewis W.A., The Theory of Economic Growth.
- Official Website of Uttar Pradesh Government India, Uttar Pradesh State Economy-Agriculture.
- Planning Commision, "The First Five year Plan.
- Perz 1990.
- Rajaguru ..... et .. AL 1985.
- Singh J.P. (2007) (Chief Cane Expert) Cooperative Sugar-2007.
- Samuni R. P., Vaidya N. G. and Sable J. P. (2002), Study on Trends in Area Production & Prodectivity of Sugar Cane to Weather in Maharastra and Uttar Pradesh.
- आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, (2005-06)
- सिंह जे0 पी0 एंव माथुर जी0 पी0 - गन्ना फसल में उचित जल-प्रबन्धन, गन्ना दर्शन, गन्ना शोध केन्द्र, उ0प्र0, गन्ना शेध परिषद, मुजफ्फरनगर - 2007।
- जसवन्त सिंह, गन्ना दर्शन (भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-2007)।
- गन्ना दर्शन, गन्ना शोध संस्थान, मुजफ्फरनगर।
- गन्ना शोध संस्थान, मुजफ्फरनगर। (2009)
- योजना मार्च (2008)
- अश्विनी महाजन दत्त सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था।
- सांख्यिकीय पत्रिका 2014 जनपद मुजफ्फरनगर, उ0प्र0।
- लेखा विभाग, चीनी मिल, खतौली, जिला मुजफ्फरनगर।
- लेखा विभाग, चीनी मिल, मंसूरपुर, जिला मुजफ्फरनगर।
- लेखा विभाग, चीनी मिल, शामली, जिला मुजफ्फरनगर।
- साख्यिकी पत्रिका वर्ष 2009 विकासखण्ड खतौली, जिला मुजफ्फरनगर।
- सूचना एंव जन सम्पर्क विभाग उत्तर-प्रदेश - मुजफ्फरनगर के पृष्ठ संख्या 5-6, 8-9, 10, 12-15, 25, 34-35

(Footnotes)

[1] रुद्रदत्त के. पी. सुन्दरम भारतीय अर्थव्यवस्था।

[2] सांख्यिकीय पत्रिका 2014 जनपद मुजफ्फरनगर, उ0प्र0।

[3] गन्ना दर्शन, गन्ना शोध संस्थान, मुजफ्फरनगर।

[4] गन्ना शोधा संस्थान, मुजफ्फरनगर। (2009)

[5] गन्ना शोध संस्थान, मुजफ्फरनगर। (2009)

[6] Rajaguru ..... et .. AL 1985

[7] Perz 1990

खादी से आर्थिक स्वावलम्बनः गांधी जी के विचारों के संदर्भ में

अक्षय कुमार

जे.आर.एफ (यूजीसी), गांधी विचार विभाग,
ति.मां भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी का आगमन बीसवीं सदी के दूसरे दशक में हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन के शुरुआती दौर में गांधी ब्रिटिश शासन व्यवस्था के समर्थक रहे, जिस कारण उन्हें भर्ती करने वाला सार्जेण्ट भी कहा जाने लगा, परन्तु अंग्रेजों के विश्वासघाती नीति के कारण अंग्रेजों के समर्थक गांधी अंग्रेज विरोधी बन गये। जिसका परिणाम यह हुआ कि लंबे समय से चला आ रहा स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा और दशा प्राप्त हुई जिसने ब्रिटिश उपनिवेशवाद को खत्म करने में निर्णायक भूमिका निभायी।

गांधी ने हिन्द स्वराज में लिखा है कि भारत के लोग अपनी गुलामी के लिए स्वयं जिम्मेवार है। वे पूंजीवाद और उससे जुड़े कानूनी एवं राजनीतिक ढाँचे को अपना लिये हैं जिसके कारण अंग्रेजों ने भारत को नहीं जीता बल्कि हमने उसे दे दिया।[1] गांधी की यह सोच रही कि भारत के लोगों को भोगवादी प्रवृत्ति से बचना चाहिए और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की ओर लौट जाना चाहिए, क्योंकि जब तक भारत कृषि एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र में मजबूत रहा विश्व बाजार में अपना दब-दबा बनाये रखने में सफल रहा। खासकर यूरोप के बाजारों में भारतीय सूती वस्त्र छाये रहे। लेकिन औद्योगिक क्रांति ने स्थिति पलट दी और भारत का वस्त्र-निर्यात घट गया और आयात बढ़ गया। भारत अब इंग्लैण्ड के मिलों में उत्पादित वस्तुओं का आदर्श बाजार बन गया।

गांधी का यह मानना था कि राष्ट्रीय आंदोलन को जब तक जन साधारण के बीच नहीं पहुंचाया जायेगा, तब तक सफलता नहीं प्राप्त होगी। यह तभी संभव है जब जन-सामान्य खासकर ग्रामीण लोगों में आत्मबल और आत्मसम्मान पैदा किया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि लोगों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर किया जाये और यह तभी संभव है जब भारत अपने पारस्परिक अर्थव्यवस्था को अपनाये। तब जाकर लोगों में राजनीतिक चेतना का भी निर्माण होगा।[2]

असहयोग आंदोलन के हिंसात्मक रूप में समापन के कारण गांधी ने लोगों में अहिंसक आंदोलन एवं विरोध के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से रचनात्मक कार्य पर जोर दिया। रचनात्मक कार्य को उन्होंने आर्थिक आत्मनिर्भरता से भी जोड़ दिया।

इसी का एक पहलू खादी आंदोलन था। खादी उनके अनुसार एक वस्त्र नहीं बल्कि एक विचार था जो हजारों बीमारियों का एक इलाज था जिसके पालन से देश को न केवल राजनीतिक बल्कि आर्थिक स्वावलंबन भी प्राप्त हो सकता था। गांधी ने लिखा है कि यदि भारत को अपने गौरवशाली अतीत को प्राप्त करना है तो उसे चरखा को अपनाना होगा।[3]

भारत कृषि प्रधान राष्ट्र होते हुए भी यहाँ के किसानों को अपने खेतों में छः महीने से ज्यादा काम नहीं मिल पाता है, भूखमरी, अकाल आदि का सामना करना पड़ता है। यदि ये लोग अपने घरों में छोटे-मोटे काम करें तो इनकी कठिनाई काफी कम हो सकती है। यह काम घरों में चरखा चलाना और कपड़ा तैयार करने जैसा काम हो सकता है। इससे अच्छा जीविकोपार्जन का दूसरा साधन नहीं हो सकता है। इससे उनमें आत्मनिर्भरता का भाव उत्पन्न होगा और वे सूदखोरों एवं महाजनों के चंगुल से भी मुक्त हो सकते हैं। उन्हें दूसरों के ऊपर आश्रित रहने के लिए मजबूर नहीं होना पड़ेगा।[4]

गांधी ने भारत की स्वतंत्रता को केवल विदेशी सत्ता से पूर्ण मुक्ति ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण आर्थिक आत्मनिर्भरता से जोड़कर देखा अर्थात् एक ओर राजनीतिक स्वतंत्रता तो दूसरी तरफ आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति। इसके दो और पहलू हैं जिसमें एक नैतिक आदर्श और सामाजिक समरसता है तो दूसरा धर्म-धर्म अपने ऊंचे से ऊंचे अर्थ में। इसमें सभी सम्प्रदाय आ जाते हैं। इन सबके ऊपर जो धर्म है वह सत्य है।

अंग्रेजी व्यापार नीति पर प्रहार करते हुए गांधी ने कहा कि हिन्दुस्तान इतना दरिद्र कैसे हो गया, यह बात समझ लेने की है। भारतीय उद्योगों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने नष्ट किया और भारतीयों को जीवन-यापन करने की दूसरी सबसे बड़ी जरूरत की चीज के लिए लंकाशायर का मोहताज बना दिया। जिसने बेकार लोगों की एक बड़ी फौज खड़ी कर दी। धुनाई, कताई, बुनाईस के साथ-साथ एक हद तक गांवों के अन्य सभी उद्योग खत्म हो गये।

वर्षों की लगातार लंबी बेकारी ने लोगों को आलसी बना दिया जो सबसे बड़े दुःख की बात है। इस प्रकार हमारी दरिद्रता का कारण विदेशी राज्य तो है ही, परन्तु हम मध्यम वर्ग के लोग खुद उससे भी अधिक जिम्मेदार है। हमने ही अपने थोड़े से लाभ के लिए देश की आर्थिक स्वतंत्रता को विदेशियों के हाथों में बेचा है। इसलिए यदि हम अपनी इस भूल को समझ लें और चरखे से निर्मित खादी का संदेश गांवों में ले जाये तथा लोगों को अपना आलस्य दूर करके चरखा पुनः ग्रहण करने के लिए तैयार करा लें तो बहुत हद तक उनकी हालत सुधर सकती है। परन्तु अगर हम यह नहीं कर सके तो लोगों में उद्योगशीलता नहीं आयेगी और आलस्य ही कायम रहेगा। परिणामस्वरूप आशा का स्थान निराशा लेगी और परिणाम महाभयंकर होगा।[5]

खादी को वैचारिक और भावनात्मक पृष्ठभूमि पर दृढ़ करने के साथ-साथ उसको समाज जल्दी और आसानी से ग्रहण कर सके तथा आर्थिक दृष्टि से वह महंगी न पड़े, इस दिशा में गांधी ने पूरा ध्यान दिया। चरखा हल्का तथा कताई का काम तेजी से हो इस दिशा में कई प्रयोग हुए। चरखा हाथ के बजाये पांव से चलाया जा सके, सरलता से कहीं भी ले जाया जा सके और घर पर बच्चों को तकुआ लगे नहीं, इसके लिए 'यरवदा पेटी-चक्र' का निर्माण हुआ।

यह गांधी जी का आविष्कार था। इसका एक छोटा रूप भी तैयार हुआ जो वजन, आकार और देखने में बड़ी किताब के जैसा था जिसका नाम रखा गया 'सुदर्शन'। चरखा यदि गांवों में पहुंच सके तो कपड़ा उद्योग में क्रांति हो सकती है और गांव अपने कपड़े के बारे में स्वावलंबी बन सकते हैं, ऐसा गांधी का विचार था।

खादी के लिए कच्चे माल की प्राप्ति के लिए उन्होंने ग्रामवासियों को इसमें सहयोग के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि जिस किसी परिवार के पास जमीन का टुकड़ा हो वह कम से कम घर के उपयोग के लिए कपास उगा सकता है। बिहार में किसानों को अपनी 3/20 खेती के योग्य जमीन में नील उगाने के लिए कानूनन मजबूर किया जाता था। यह विदेशी निलहों के हित में होता था। तो फिर हम राष्ट्र के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी जमीन के एक निश्चित भाग में कपास क्यों नहीं

उगा सकते? इस उत्पादित कपास से सारा राष्ट्र एक साथ कताई की प्रक्रिया में भाग ले तो एकता और शिक्षा तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता का विकास होगा। साथ-साथ श्रम करने से गरीब-अमीर को बराबर करने वाला जो परिणाम होगा, वह समाजवाद का प्रमाण होगा। राष्ट्रव्यापी कताई की इस योजना में औसत स्त्री या पुरुष इस काम के लिए एक घंटा रोज से ज्यादा वक्त देंगे तो खादी निर्माण का लक्ष्य सरलता से प्राप्त किया जा सकेगा।[6]

जब हम खादी का पुनरुद्धार कर लेंगे तो और सब उद्योगों का उद्धार अपने आप हो जायेगा। चरखे को केन्द्र बनाकर ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि उसके चारों ओर दूसरे उद्योग स्वयं पनपते रहे।[7] चरखा प्रत्येक घर के लिए एक उपयोगी और अनिवार्य वस्तु है। यह राष्ट्र की खुशहाली और आजादी का निशान है। खादी युद्ध का नहीं, बल्कि आर्थिक संतुष्टि एवं व्यावसायिक शांति का संदेश है। खादी सदा ही गांवों की सम्पन्नता का बढ़िया साधन रहा है। इसके जरिये गरीबों में सच्ची शक्ति पैदा होगी, जिससे स्वराज्य अपने-आप आ जायेगा।[8]

खादी कृषि की सहायक एवं सहयोगी पेशा है। असंख्य बुनकरों के लिए तो यह प्राण के समान है। जब तक हम गांवों से बेकारी को जड़ से समाप्त नहीं देते तब तक लाखों लोग बेकार होंगे, तब वहाँ लड़ाई-झगड़े और खून-खराबे होते ही रहेंगे। तथाकथित समाजवाद का एकमात्र विकल्प चरखा है। पश्चिम के समाजवाद का आधार यांत्रिक उद्योगीकरण है। भारत जिस समाजवाद को हजम कर सकता है वह खादी से ही आ सकता है। इसी कारण 1919 के कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में पहली बार खादी से संबंधित प्रस्ताव पारित किया गया। 1920 के नागपुर सम्मेलन में खादी को अपनाने पर जोर दिया गया। 1921 में विजयवाड़ा में तिलक स्वराज्य कोष जमा करने का निर्णय लिया गया और देशभर में बीस लाख चरखा चलाने का संकल्प लिया गया।[9] सदस्यता शुल्क जो चवन्नी थी, के बदले 2000 गज अपने हाथ का कता सूत निर्धारित किया गया। 1924 में गांधी जी बेलगांव कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये गये। उन्होंने खादी और चरखों को रचनात्मक कार्य के रूप में कांग्रेस के जरिये जन-जन तक पहुंचाने के लिए कांग्रेस के संविधान में भी संशोधन करवाया। तत्कालीन समय में कांग्रेस की सदस्यता शुल्क चवन्नी निर्धारित थी जिसे बदलकर सदस्यों को अपने हाथों से चरखे द्वारा 2000 गज सूत कातना निर्धारित करवाया गया।

गांधी द्वारा खादी को बढ़ावा देने के लिए ऑल इंडिया स्पिनर्स एसोशियेशन की स्थापना 1925 में की गयी। गांधी इसके अध्यक्ष तथा जमनालाल बजाज इसके कोषाध्यक्ष बने। जवाहरलाल नेहरू एवं शंकरलाल बैंकर को इसका सचिव नियुक्त किया गया।

इसके अन्य सदस्यों में प्रमुख थे, मौलाना शौकत अली, राजेन्द्र प्रसाद, मगनलाल इत्यादि। खादी को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से जगह-जगह खादी भंडारों को खोलने का काम शुरु हुआ। ये भंडार उत्पादित वस्त्रों को जमा करने के केन्द्र के साथ-साथ सूत काटने वाली महिलाओं के प्रशिक्षण का भी केन्द्र था।

महात्मा गांधी के द्वारा खादी आंदोलन का व्यापक असर बिहार प्रान्त पर पड़ रहा था। जगह-जगह खादी वस्त्रों का उत्पादन होने लगा और बिक्री भी आशानुकूल हो रही थी। राजेन्द्र प्रसाद को ऑल इंडिया स्पिनर्स एसाशिएशन की बिहार शाखा का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। बिहार शाखा का मुख्यालय आरंभ में पटना था, बाद में इसे मुजफ्फरपुर ले जाया गया परन्तु कुछ समय के बाद मुजफ्फरपुर से भी स्थानांतरित कर मधुबनी ले जाया गया। तत्कालीन दरभंगा जिला के मधुबनी अनुमंडल में खादी उत्पादन काफी अच्छे ढंग से हो रही थी जो विशेष प्रकार के खादी वस्त्र 'कोकही खादी' के लिए प्रसिद्ध था।

भारत में बीसवीं सदी के दूसरे दशक का उत्तरार्द्ध समग्र राजनीतिक वातावरण में क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण उत्तेजनापूर्ण बना हुआ था, सांप्रदायिकता के कारण दंगा और खून-खराबा हो रहा था। ऐसे समय में बिहार में 1927 में बिहार के दौरे पर गांधी जी आये। वे प्रांत में चल रहे खादी आंदोलन से अत्यंत प्रभावित हुए। महादेव देसाई को उन्होंने एक पत्र में लिखा कि यदि उन्हें आधुनिक युग के स्वर्ग का दर्शन करना है तो वे दरभंगा जिला के लौहा एवं कपसिया गांवों का दर्शन करें। उन गांवों में हिन्दू और मुस्लिम महिलायें साथ-साथ चरखा चला रही है जो एक मधुर संगीत को जन्म दे रही है।[10]

गांधी के खादी प्रेम और इनके प्रयास ने भारत में खादी को बढ़ावा दिया। 1930 के दशक में बिहार में खादी आंदोलन ने अपार लोकप्रियता हासिल की। इसमें महिलाओं की भागीदारी भी अधिक रही। सरला देवी, सावित्री देवी, विन्ध्यवासिनी देवी, प्रियंवदा देवी जैसी महिलाओं ने इस आंदोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

खादी आंदोलन ने गांवों में जनचेतना लगाने का काम किया। हर गांव एवं हर घर खादी बुनाई का केन्द्र बन गया। यह राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा बन गया।

15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हुआ लेकिन गांधी ने भारत को पूर्ण आजाद नहीं माना। उन्होंने तो कहा कि "भारत राजनीतिक रूप से आजाद तो हुआ है, परन्तु आर्थिक आजादी शेष है।" उन्होंने कहा कि कांग्रेस का काम पूर्ण हो चुका है, उसे अब भंग कर दिया जाना चाहिए और उसके स्थान पर सेवा दल को लाना चाहिए। निश्चित रूप से आर्थिक स्वावलंबन ने सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना को पैदा किया और सामान्य जन अपना सर्वस्व देश के लिए न्यौछावर करने के लिए तैयार हो गये। खादी आंदोलन हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक भी बनकर उभरा। स्त्री-पुरुष, छुआछूत एवं जात-पात, विधवा विवाह एवं पर्दा प्रथा के खिलाफ भी इस आंदोलन ने स्पष्ट विचार व्यक्त किया।

इस प्रकार देखा जाये तो खादी ने जहाँ आर्थिक स्वतंत्रत की नींव रखी, वहीं स्वतंत्रता आंदोलन में समाज के सभी वर्गों को जोड़कर स्वतंत्रता आंदोलन को गति प्रदान की। साथ ही सामाजिक कुप्रथाओं पर भी प्रहार किया।

संदर्भ-सूची

1. एम. के. गांधी, हिन्द स्वराज्य एंड अंडर राईटिंग्स, पृ. 39
2. श्याम मोहन, एकोनोमिक्स ऑफ अल्टरनेटिव्स खादी एण्ड विपेज इण्डस्ट्रीज इन बिहार, पटना, 2000, पृ. 210
3. हरिजन, 19 दिसम्बर 1931, पृ. 16
4. दिगम्बर झा, बिहार का खादी आंदोलन और उसका विकास, मुजफ्फरपुर, 1971, पृ. 22
5. यंग इंडिया, 21 मई 1925
6. रचनात्मक कार्यक्रम, 1945, पृ. 11-14
7. यंग इंडिया, 21 मई 1925
8. स्वराज थ्रू चरखा, कनू गांधी, संकलित, 1945, पृ. 8
9. यंग इंडिया, 14 फरवरी, 1929
10. वही।

Management of Microfinance for Rural Development in India: A Review

Dr. Dilip Kumar Sahu

Assistant Professor, Dept. of Commerce,
J.N. College, Dhurwa

Management of Microfinance refers to a entire range of financial and non-financial services, including skill upgradation and entrepreneurship development, rendered to the poor for enabling them to overcome poverty.

In the context of designing programme for the poor, microfinance is recognised and accepted as one of the new development paradigms for alleviating poverty through social and economic empowerment of the poor, microfinance is recognised and accepted as one of the new development paradigms for alleviating poverty through social and economic empowerment of the poor with special emphasis on empowering women.

The operational framework of micro-finance rests on the premises that formation of self-employment enterprise is available alternate means of alleviating poverty, lack of access to capital assets credit acts as a constraint on the existing and potential micro enterprises and the poor are capable of saving despite their poor income level. In essence, therefore, microfinance may be referred to as an institutional mechanism of providing credit support in small amount an usually limited with small group along with other complementary supports such as training and other related services to the people with poor resources and skills for enabling them to take up economic activities.

Microfinance providers in India can be classified under three broad categories - formal, semi-formal and informal. The formal banking sector constitutes the first category, while the semi-formal group consists of variety of microfinance institutions and self-help groups (SHGs).

Informal providers, on the other hand, are not legal entities and include money lenders and various net works. Today semi-formal and informal lenders dominate the scene.

Development of local resource-based economy provides additional employment to people living in rural areas. In this context Sumachar observed that in order to bring work to the people not people to the work, it was absolutely necessary to establish million and millions of small scale industries in rural areas.

Developing economies like India aim at maximum utilisation of their own national and manpower resources. Even such countries availing raw material in abundance and cheap labour resources, they cannot achieve their targeted growth rate without having sufficient financial resources. In a labour extensive economy it is necessary to liberalise and fluctuate the financial and monetary policy which are the tools to achieve the multidimensional life goal of the poor.

To achieve these goals and to keep the rural poor away from the burden of heavy interest rates prescribed by the moneylenders; the government, the NGOs and voluntary organisations play a crucial multi-linked role in rotating microfinance. Now-a-days micro-credit is world-wide scheme and it is broadly established as a tool to uplift the rural poor from the measurable and deplorable condition.

For sustainable development in rural areas in consonance with rural people wishes and aspirations, huge investments are being made by the Ministry of Rural Development Government of India through the different programmes. A pro-poor policy in terms of which the rural pr or are treated as a net resource replete with their own ideas and experiences well in tune with the local conditions forms an integral part of strategy. In the process, the most disadvantaged section of the society receive high priority. A number of new initiatives have been introduced in the course of the last 7 years.[1]

The Ministry of Rural Development, Government of India has been focusing on the four pronged strategy -

a) Enhancing the level of awareness about the scheme.
b) Promoting transparency in the implementation of the programmes.
c) Encouraging people's partnership and
d) Ensuring accountability / social audit.

It is the specific direction of the Ministry that all the beneficiaries under different programmes would be selected by the Gram Sabha. The details of estimates regarding civil works should also be available to the public. In order to impart greater transparency, the chief ministers have been addressed advising arrangement of display boards at the district, block and Gram Panchayat levels, indicating there in the funds available to the respective areas under different programmes the Ministry of Rural Development and the work being taken up.

People's partnership particularly of target groups of various rural development programmes is sought to be promoted not only through institution of Gram Sabha, but also through execution of works by people themselves under different programmes of the Ministry of Rural Development. The participation of all the segments of society is a must for national resurgence. A series of dialogue has also been initiated with the corporate houses through ASSOCHAM and CII for establishing an effective public private partnership for rural development.

John E. Akoten[2] has indicated that micro-credit and small enterprises play an important role improving livelihood of rural and urban populace in developing countries. There is a significant difference in the mean values of men and women. Women getting higher proportion (90 percent) rather that men (10 percent), because poverty can be easily eradicated through the active

participation of women in income generating and saving motivating activities. The most important goal of micro-credit is to eradicate world poverty by 2015.

Shylendra[3] stated that through linkage programme the NABARD would like to realise the vision of empowering rural poor by improving their access to the formal credit system in an effective and sustainable manner to reach the goal of 100 poor through one million SHGs by 2008.

Rosalinda[4] evaluated that micro-credit has integrated the scope for personal, social, and political empowerment. The experience of micro-credit started in the early 1980s as a development initiative to alleviate rural poverty, has created positive impact on cash-starved poor women in rural areas to increase confidence, sense of self- worth, higher consciousness of their rights, greater awareness and exposure to the outside world greater decision making power with the household and outside and improvement in health and nutrition of family members.

Ravi Kumar[5] has stated that SHG is small economically homogeneous and affinity of rural/urban poor voluntarily formed to save and contribute a common fund to be lent to its members as per group decision and for working together far the socio-economic upliftment of their families and community. SHG is a medium group for the development of saving habit among women. These SHGs come to the rescue of women and enhance the quality of status of women as participants, decision-makers and beneficiaries in the democratic economic, social and cultural spheres of life.

Nagayaya[6] has reported that action for social advancement (ASA) in Bangladesh, Society for Helping and Awakening Rural Poor through Education (SHARE) in India, Centre for Youth and Social Development (CYSD) in South Asia and Bangladesh, Rural Advancement Committee (RAC), Consultative Group to Assist the poorest (CGAP), Professional Assistance Development (PADA), Self-Employed Women's Association (SEWA), and Credit Development Forum (CDF) are foccusing their financial attention to the income and employment generation to the rural poor with livelihood support. Under the scheme of SHARE, 11 percent of Andhra Pradesh and 44 percent of Bihar respondents raised their employment opportunities in the year 2004. About 97 percent of the PRADAN and about 97 percent of the SHARE schemes belonged to Adivasis, dalits and other backward castes in rural areas.

A federation of SHG members can function as coordinating and monitoring agency for a particular coverage area. The federation is a democratically elected body, and it can evaluate all the activities carried out by the groups of SHG under one Panchayat. The federation gives support, motivates and trains members apart from networking with other agencies for village development. The ultimate goal of the federation is to evaluate all the activities carried out by SHGs for the betterment of the group as well as society.

Naransamy[7] has pointed out that out of 100 SHGs, 98 groups are composed of only women members, engaged with micro enterprises, because they are the main key to close the poverty. The basic principles of SHGs are group approach, mutual trust, organisation of small and marginal groups, group cohensiveness, spirit of thrift, demand based lending collateral-free women friendly loan, peer group pressure in repayment, skill training, capacity building and

empowerment. Reddy[8] extricates that non-farm activities undertaken by the women groups in rural areas are precious for the industrial sector, construction services, trading etc, providing employment opportunities and entrepreneurial skill at the maximum level.

Pitt[9] mentioned that 90 percent of SHGs clients were women in the Grameen Bank of Bangladesh. Their consumption expenditure increased by 18 taka for every 100 taka borrowed by women. Credit provided to women significantly improved the indices measures of health rind nutrition alongwith the educational status of their children. The Grameen Bank of Bangladesh has earned name and fame as the pioneer of credit services for the rural poor throughout the country. Slowly but surely, more and more people can bring themselves out of poverty. The Grameen Bank achieved the repayment rate of 98 percent from its borrowers, 94 percent of whom were women.

The Government's plan for rural development now talks of inclusive growth and is not just confined to only antipoverty programmes. The growth of agriculture, sustainable rural 'development alongwith social development expressed in terms of educational and health sectors in the main task on the road to future rural development of India.

To improve the resource base, the NABARD has been allowed to raise Rs. 5000 crore by issuing 'Rural Bonds' which would be guaranteed by the government and eligible for suitable tax exemptions. The corpus of the RIDF-XIII has been raised to Rs. 12,000 crore for 2007-2008 from Rs. 10,000 crore for 2006-07. A separate window for rural roads would continue under RIDF-XIII with a corpus of Rs. 4,000 crore.

A financial Inclusion Fund was to be set up with corpus of Rs. 500 crore for meeting the cost of developmental and promotional interventions. Further a financial Inclusion Technology Fund was to be set up with corpus of Rs. 500 crore to meet the cost of technology adoption with NABARD.

Government's concept of rural development is limited to anti-poverty programmes implemented by the Ministry of Rural Development. However, in view of the inclusive growth one cannot think of rural development on sustained basis without consideration of agricultural development. It is the key to rural development leading to inclusive growth. But sustainable agricultural and rural development is not possible without social development expressed in terms of educational and health sectors.[10]

Recently the programme for linking self help groups, with the banking system has engaged as the major Microfinance initiative in the country. It was redesigned as the microfinance development and equity fund in 2005-06 with a corpus of Rs. 200 crores. The fund has been doubled to Rs. 400 crores in 2010-11 budget.[11]

Lastly the direct steps has been taken by the Government is not sufficient for providing or managing micro-finance for rural development in India. The other measures have been beneficial to the Govt. taken regarding encouraging NGOs.

SHG for managing microfinance from other sources to the development of rural sector in India. This is our urgent need of the time for rural development in India as well as the whole world.

References

1. Naidu, M. Venkaiah (2002), *"Rural Reconstruction"*, *Yojana,* January, p.5.
2. Akoten John E. (2006), *"The Determinants of credit Accers and Impacts of Micro and small Enterprises" Economic and cultural change*, Vol. 54, No.4, pp 924-44.
3. Shylendra (2004), "*The SHG-Bank linkage Programme*". *Journal of Rural Development,* Vol. 23, No. 4, pp. 131-35.
4. Rosalinda (2005), *"Problematising Microfinance as an Empowerment Strategy for Women Living in Poverty" Journal of Gender, Technology and Development.*
5. Ravi Kumar, Ratna (2006), *"A Premier on Micro-Finance : The paradox of plenty in poverty". Journal of Chartered Accountant.* Vol. 54, No. 14, pp 1631-33.
6. Nagayya (2000), *"Micro-Finance for SHGs"* Kurukshetra, Vol. 48. No. 11, pp 10-15.
7. Narayan Samy (2005), *"Micro Credit and Rural Enterprises". Journal of Rural Development,* Vol. 4, No. 3, pp 353-76.
8. Reddy, Sudhakar (2000), *"Rural Non-Farm Employment", Journal of Rural Development*, Vol. 19, No.1, pp 131-35.
9. Pitt. Mark M (2003), "*Empowering Women with Micro Finance, "Journal of Economic Development and Cultural Change*. Vol.54, No.4, pp 759-831.
10. NABARD (2007), Annual Report (2006-2007), National Bank For Agricultural and Rural Development, Mumbai, p.22.
11. *Yojana*, March 2010, p.35.

Commerce

Reforms in Indian Capital Markets

Dr. Lakshman Singh

Associate Professor, P.G. Department of Commerce,
J.P. University, Chapra

Abstract

Present study mainly aims to gain insight into the Reforms in Indian capital markets and the roles and responsibilities of a capital market regulator. This study also focuses on identifying the loopholes in the Indian financial system.. It was formed officially by the Government of India Being the study descriptive in nature, findings have been made through theoretical analysis in order to know the impact of SEBI on Indian capital market and to provide in-depth analysis of the Indian stock market. It has been found that SEBI has done a lot of work for the development of the Indian capital market.

Introduction

The capital market Indian economy was l beralized in the early '90s India has seen a tremendous growth of its capital markets with close to 5,000 Initial Public Offerings (IPOs), second only to the United States. Although the amount of capital raised during the period may have been lower as compared to that of the developed world and other BRIC nations, Indian companies have still managed to attract capital from the world over.

In the financial year of 2008, India saw the greatest year in Indian capital markets when the total capital raised went northwards of US$9 billion. However, the following years have not been very promising. Notwithstanding the impact of the global financial crisis, Indian capital markets have not been able to match the growth story witnessed ever since the liberalization of the economy till 2008. In the preceding financial year 2010, while India ranked 4th with respect to the amount of capital raised, contributing to 3.7% of global IPO share, China (which also includes Hong Kong) contributed to almost 47% of the global capital raised in IPOs. (Source: Global IPO Trends 2011, published by Ernst and Young) The above statistics provide an interesting insight into the growth trajectory of the Indian capital markets and its future role in the financial world. From 2008 to 2010, the amount raised by IPOs in China increased by 250%, but in India, there was no substantial increase. (Source: Global IPO Trends 2011, published by Ernst and Young). The writing on the wall seems to indicate that the Indian

capital markets is losing its growth momentum in the post-crisis financial world and that China is increasingly becoming popular with respect to attracting foreign capital.

The capital market is a market where borrowing and lending of long term funds takes place Capital market deals in both, debt and equity. In these markets productive capital is raised and made available to the corporate. The governments both central and state raise money in the capital market through the issue of government securities. Capital market refers to all the institutes and mechanisms of raising medium and long-term funds, through various instruments available like shares, debentures, bonds etc. With the pace of economic reforms followed in India, the importance of capital markets has grown in the last ten years. Corporate both in the private sector as well as in the public sector raise thousands of cores of rupees in these markets. The governments, through Reserve Bank of India, as well as financial institutes also raise a lot of money from these markets. The capital market serves a very useful purpose by pooling the savings. The capital markets encourage capital formation in the country. The capital markets mobilize savings of the households and of the industrial concerns. Such savings are then invested for productive purposes. Capital markets also facilitate the growth of the industrial sector, as well as the other sectors of the economy. The capital markets provide funds for the projects in backward areas. Thus, Capital markets generate employment in the country.

Possible Reasons for Loss in Momentum Pricing

Many capital market experts have blamed the aggressive pricing of IPOs as a major reason for the loss in momentum in the primary market space. The Indian primary market has not yielded favorable returns for investors over the last few years compared to the listing premium they enjoyed before. Out of the close to 50 public issues that came out between January 2010 and March 31, 2011, securities of almost 3/4th of such companies are currently trading below their issue price. Some critics blame the moral hazard problem of investment bank's fees being linked to the issue price as a reason for such high pricing while others attribute it to the performance and fluctuations of the secondary market. While there would never be a consensus on reasons for bad performance of the recently listed companies, the issue of pricing still looms large over the Indian capital market, which needs to be addressed sooner than later.

Provides an important alternative source of long-term finance for long-term productive investments. This helps in diffusing stresses on the banking system by matching long-term investments with long-term capital. Provides equity capital and infrastructure development capital that has strong socio-economic benefits - roads, water and sewer systems, housing, energy, telecommunications, public transport, etc. - ideal for financing through capital markets via long dated bonds and asset backed securities. Provides avenues for investment opportunities that encourage a thrift culture critical in increasing domestic savings and investment ratios that are essential for rapid industrialization.

Pricing of securities should follow the basic model of demand and supply, but there are various factors which may distort the efficient functioning of the

model. Firstly, there is the issue of rooters and private equity players exiting via public offers demanding higher price for the securities offered. Secondly, there is the issue of investments bankers' fee being linked to the pricing of securities which may cause some distortions to the effective pricing of securities. An aggressive pricing model may be helpful for short-term gains but is not advisable for the sustenance of investment appetite for a long run in the primary market. There is need for change not only in the mindset of promoters and private equity players towards a more market efficient pricing model but also in the regulatory framework providing more flex ability to issuers in pricing their securities.

The existing book-building system is only a relative price discovery model since the floor and cap price of securities is determined by the issuers and underwriters and the issue price determined is within a set price band and time period, which may not lead to a true price discovery. This may be the reason why we have seen high amount of fluctuations on the day of listing of securities, when the market participants are not restricted by a set price band. The Indian regulators may think of introducing the Dutch auction method wherein the issuer is allowed to freely price its securities and is allowed to lower the fixed price till all the securities offered by it are subscribed. The issue price would be the price at which the last subscriber purchases the securities. This method may be a more effective pricing model as there would be a much longer time period for determination of price and as it would be more aligned to the demand supply system of pricing.

Opening up of Indian Capital Markets, a Case for Development

Both academics and skeptics would agree that the health of an economy is reflected in the performance of its capital market. Currently, India's economic growth is second only to China but unfortunately the phenomenal growth rate has not reflected in the performance of its capital market. Performance of a nation's capital market is not merely reflected by the performance of its secondary market and indices of stock exchanges, but also by the positioning of the market in the global financial circle in terms of reputation and presence of foreign companies. If we take the example of developed nations, all of them have a robust capital market with the presence of

International companies and a high reputation. The major financial hubs over the past two decades have been cities from developed nations - New York, London and Tokyo - and in the recent past, Hong Kong and Shanghai are fast emerging as the next financial centers. To take the argument further, while the Indian economy has been growing at a rate higher than most of the other economies, India still has a long way to go before attaining the status of an attractive financial hub in the world. This poses one of the major hurdles for India to progress from a developing economy to a developed economy.

China has developed its markets to make them more accessible to foreign capital. This is well illustrated by the fact that well known international companies like Glencore, Samsonite, Prada, to name a few, have approached

the Hong Kong exchange for listing. As per current news reports, global conglomerates l ke Coca Cola, HSBC, Unilever and Standard Chartered are eyeing the Shanghai Stock Exchange. On the other hand, Indian exchanges are way behind to join this bandwagon. The question that begs asking is whether we would l ke these companies to come to India for listing? And if the answer is yes, are we providing a platform for international listings in India?

Regulatory Hurdles

The regulations governing public offers have recently witnessed an overhaul by the introduction of Securities and Exchange Board of India (Issue of Capital and Disclosure Requirements) egulations,2009. However there still remain a plethora of disclosure requirements and restrictions on issuers, which at times make it difficult for them in their decision to go public. Some of the regulations which demands immediate attention are (a) extensive disclosure of information on promoter group of issuers, which are onerous and time consuming (b) lock-up of bonus shares or equity shares arising out of conversion of convert ble instruments issued to existing shareholders one year prior to the filing of the draft prospectus (c) rather broad definition of 'promoter', which does not explicitly exclude private equity players.

Corruption and Scams

There would be a universal consensus amongst all players in the capital market that the outlook of India has taken a severe blow due to outbreak of corruption cases against Indian public officials and more so because of is a growing lack of confidence of global investors in the Indian securities market due to the fear of potential liability under their local anti-corruption legislations. the involvement of corporate leaders in such corruption scandals.

With the recent scams of Satyam and 2G, there is a growing lack of confidence of global investors in the Indian securities market due to the fear of potential liability under their local anti-corruption legislations.

Closing Remarks

Reforms of the Indian capital markets have long been overdue; liberalization of onerous disclosure requirements, better price discovery mechanism and entry of foreign companies in Indian markets would provide the necessary fillip for overall growth of the economy.

An active market for foreign companies in India is likely to attract investment from wider avenues, both domestic and foreign and consequently be beneficial to domestic companies already listed or waiting to be listed on Indian bourses.

Greater participation from global institutional investors also assures greater liquidity and enhanced reputation of the market, leading to better valuations for companies listed on Indian exchanges. In addition, such reforms would also have ancillary benefits l ke job creation in financial cities of India and exposure to global best practices in corporate-securities law.

References

1. Ahmad, Khan Masood; Ashraf, Shahid and Ahmed, Shahid (2005), "Foreign Institutional Investment Flows and Equity Returns in India", The IUP Journal of Applied Finance, March, pp. 16-30.
2. Gokarn, Subir (1996), Indian Capital Market Reforms, 1992-96: An Assessment, Economic and Political Weekly, April 13, 1996
3. Nayak, Jayendra P (1999): in India's Financial System: Getting Ready for the Twenty First Century, edited by James A Hanson and Sanjay Kathuria
4. North, Douglass C., (1993) "The New Institutional Economics and Development", Essay
5. Singh, Jitendra; Useem, Mike and Singh, Harbir (2007). "Corporate Governance in India: Has Clause 49 Made a Difference?" Published in IndiaKnowledge@Wharton: January 25
6. Shah, Ajay and Thomas, Susan (2000a). "David and Goliath: Displacing A Primary Market, Global Financial Market, Spring, 14-23
7. Patibandla, Murali (2005). "Equity Pattern, Corporate Governance and Performance: A Study of India's Corporate Sector," Journal of Economic Behavior and Organization, Vol 30, 1-16.

Impact of T.V Advertisements on Buying Pattern of Adolescent Girls

Bhawya Sachdeva Mukhi

Research Scholar JJT University, Rajasthan

*KEYWORDS:*Television, advertisements, buying pattern, adolescent girls

Abstract:Cosmetic advertising is the promotion of personal care and beauty products by the cosmetics industry through a variety of media. The advertising campaigns are usually aimed at women wishing to improve their appearance, commonly to increase physical attractivenessand reduce the signs of ageing. .It is the most convenient route to reach not only adult consumers but also the adolescents. Adolescents are manipulated by advertisement promises that the product will magically transform their life. The present study was conducted on 150 adolescent girls, studying in class 8th-12th, to know the impact of T.V. advertisement on their buying pattern. The results revealed that advertisements played a vital role in introducing a new product in the family list & making better choice during shopping. Majority of the respondents after watching an advertisement wanted to buy the new brand introduced in the market, they were disappointed when they were not allowed to buy products of their choice and were of the opinion that T.V. advertisements helped them to make better choice during shopping. The girls utilized their pocket money received every month for shopping. The main items purchased from the pocket money were- food, cosmetics, gifts and card .The respondents preferred to buy branded and standardized products which are advertised on Television

Introduction

Cosmetics are a major expenditure for many women, with the cosmetics industry grossing more than 7 billion dollars a year, according to a 2012 YWCA report. Cosmetic retailers design advertising to alter women's attitudes toward cosmetics, encouraging them to buy more products. Many advertisers shape this attitude by encouraging women to feel dissatisfied with their appearance.Cosmetic advertisements can make women feel unsatisfied with their appearance, according to the YWCA. A 2002 study published in the "Journal of Social and Clinical Psychology" found that women expressed more dissatisfaction with their appearances after watching advertisements. This dissatisfaction can work to advertisers' advantage when they're selling a product

designed to make women look better, so some cosmetic companies may cause women to feel insecure and then offer their product as a solution to the insecurity.In "Can't Buy My Love," sociologist Jean Kilbourneanalyzes nearly a century of advertising. She argues that, as expenditures on cosmetic advertising increase, so do women's cosmetic purchases. Because women feel pressure to meet an idealized beauty standard, cosmetic advertisements that offer women the opportunity to live up to that standard can be highly effective, encouraging more cosmetic purchases. The impact of television is enormous as an audio-visual aid .A study of over 4500 advertising campaign from past 7yrs has founded that TV advertising remains the most effective form of advertising and creates the most profit for business.The study found that TV gave an average return of $1.79 for every $1 invested during 2011-2014.This is up from $1.70 for every $1 invested during 2008-11. Television (T.V.) enables a creative man to communicate by combining motion, sounds,words, colour, personality and stage setting to express and demonstrate ideas to large and widely distributed audience. T.V. advertisements usually play a role in either introducing a product reinforcing the familiarity to the product and also convincing to purchase the product. Advertisements are among the most visible of the marketing strategy and have been the subject of a great deal of attention in the last ten to fifteen years. Advertisement cannot only change emotions but give subliminal message. Advertising today seems to be everywhere and ever present exerting a far reachinginfluence on the daily lives of people. Advertisements develop self-concepts in order to induce purchase decisions.

Television advertising employs attention grabbing trick such as catchy and pleasing music, lyrics, Jingles, humor and repeated messages. The impact of the advertisements is more on television than the printmedia or radio. Rana (1995) undertook a study on T.V. advertisements and expressed that among the media, the impact of television advertisement on social behaviour, including purchasing behaviour was the greatest. The reason being that television has charm,instantaneous transmission capability and universality of appeal.Dhillon et al. (1997) investigated the factors affecting consumer behaviour of durable goods and food items. Sample comprised of 50 females (25 each from rural and urban areas). The sourcesof information, the rural respondents gave primary importance were, advertisements through radio,followed by posters to some extent but were least affected by magazines.

Urban respondents were affected the maximum by television and magazines. Mahajan and Singh (1997) studied the impact of media on lifestyle of adolescents in the age group of 13-18 years of age and found that media especially television and satellite channels certainly affected the lifestyle of individuals. They tend to buy the product advertised by media, irrespective of its cost. A young age group of 13-18 in India is a regular viewer of television. They spend most of their free time in front of television, watching programs and channels of their choice. The majority of young generation believes television advertisements to be informative and most of them respond to them favourably. Marketers, who take advantage of young people's power to influence family purchase, choose commercials or television programmes that reach children or teenage youth together with their parents .The teenagers have become a strong

influencing group and even have the ability to influence the purchase decisions in the family from cakes to cars.

Literature Review

Bashir and Malik, (2009), in the given study revealed that consumers considered advertisement as a reliable source of knowledge about my product or services. Advertising is almost everywhere in our daily life. Its forms and roles are both contested and admired. Some see advertising both as the mirror and the maker of culture. Even when advertisements contribute new sounds and the symbols that shape feature, its words and images reflect the present and the past. Others say advertising is purely an economic activity with one purpose i.e., to sell. Many advertiser and agenciesMany advertisers and agencies believe that advertising creates"magic in the market place" (Russel&Lane, 1996.)Advertising is a way of gaining sales effectiveness andof keeping selling expenses low. Advertiser wants to be certain that he, his store, and his product areidentified in the advertisement and he is gaining benefit from it, evenwhen he cannot be there to deliverthe massage in person. And also because the advertisement must be carried by newspapers ormagazines or television or radio or billboards, or by some othermassmedium.

The advertisermust pay theowner of those media for the space or time he used for the advertisement. (Jugneheimer&White, 1980).Advertisement has changed its form from town criers of medieval time to the internet and electronic advertisement of 20 Century (David, 2001). The technique based on hierarchy of effects suggests that there are casualrelationship between changes in person's attitude about a product and person's attitude to buy that product. Themodels of advertising suggest that to be effective, any piece of persuasive communication must carry its audience through a series of stages each stage being dependent on the success on previous stage (wilmshurst, 1985; Lavidge&Steiner 1961'Leckenby, 1976; Colley, 1961). Advertising is complex because many different advertisers try to reach many different types of audiences can many types of consumers. That's there are many types of advertising too, so that all types of consumers can be addressed. There is not just one kind of advertising; in fact, advertising is a large and varied industry and all types of advertising demand the creative, originalmessages that are strategically sound andwell carry out(Wells et al., 1995).

The television medium is the most attractive and important place to advertise.Most of the young people remain glued to the television and enjoy what they see.As awide range of products and services are consumed or used by children, many companies tend to target themesTVadvertisement and mostly purchased those brands and products which are advertised more on television .Advertisers target teenagers because their influence on parental purchases, their early establishment of loyalty to certain brands, A teenager possessing greater financial resources would have more money to spend on discretionary items for her/himself and may also exert greater influence onThe teenagers are more attracted toward TV advertisements featuring celebrities, children or

whilepurchasing cosmetics, stationary, gifts and cards, by theTVadvertisements into their decision to buy. With the population of over one billion, India is on the threshold of becoming one of the world's foremost consumer markets. For advertisers, India could represent a golden opportunity for airing television advertisements. The key lies not only in the attractiveness of the advertisements, but also the interest of the targeting youth and influence them in making purchase decision for products for their own use.

Thus, it can be said the marketers and advertisers who are having eyes on this market, must perceive opportunities to target consumers of India, which is full of young generation explored fashion awareness .They observed that television is the most important media of information regarding fashion awareness among adolescents respondents.Today's youth are truly the internet generation, and get their news and information primarily from television.

Objective of the Study

1. To study the impact of TV advertising on the buying behaviour of the teenage girls.
2. The study aimed to understand the liking of today's youth for TV ads. and their emotional and motivational response towards the buying and liking of the product.

Research Methodology

The present study is focused on the school students of haryana to know the influence ofTVadvertising on their buying behaviour. For this purpose, a study will be conductedin the age group of 13-18 years young adolescents girls of hisar who visit the mall and parlours regularly.

The process of this research comprises various stages –

- formulation of a theoretical background based on secondary data and information,
- developing the research objectives based on theoretical background and hypotheses,
- deciding the strategy for primary research based on survey,
- data collection and analysis,
- finding conclusions

While conducting the surveywere regular viewers ofTV. Almost 42 youngsters filled questionnaires at theshopping mall. Questions regarding the interest and purchase and influence of tv on youth are mentioned as follows

1. Do you likeTVadvertisements.
2. Do you purchase products seen inTVads.
3. No doubt, TV advertisement increases the frequency of purchase.
4. I feel that exposure to TV ads has enhanced my knowledge abouts cosmetics
5. Imostly purchase products shown inTVads.
6. I feel TV ads make the purchase of the products easier.

7. Due to TV ad exposure I have started experimenting newproducts.
8. I feel my demand for products purchase is influenced byTVads.
9. I feel goodwhen Iwatch the ads of the products Iamalready using.
10. TVads helpme to find the best products.
11. TV ads induce me to buy products for enjoyment even though I do not require them.
12. Quality of product is as good as expected from TVads.

Results and Findings

They like TV advertisements and often want products seen in TV ads. They feel good when they watch the ads of the products that they are already using and TV ads help them to find the best products. The frequency of purchase increases due to TV advertisements .They prefers to buy and experiment with the new products. Youth collectively decide with their family members, products to be purchased due to exposure to TV advertisements It was also found that youngsters have positive attitude towards TV commercials.

Conclusion

The study suggests TV advertising has enhanced their involvement in product selection and purchase. Theyprefer to buy and experiment with the new products. They like the advertisements of the products they are already using and believe that the quality of the product is as good as expected from TV advertisements.

Future Research Directions

This research is particularly focused onTVadvertising impact on buying behaviour of youth in haryana who visited the mall. Further research is needed by inclusion of all popular mass-media and coverage of all major dimensions of buying behavior. More comprehensive studies should be conducted at national or international levels by increasing the sample size.

References

Bashir andMalik, (2009)." Effects of advertisement on consumer behavior of university students"proceedings 2nd CBRC,Lahore , Pakistan.th

Russel& Lane, 1996. Advertising procedure (13ed.).USA: prenticeHall Inc.

Jugneheimer& White, 1980 Basicadvertisement.USA: grid Publishing, Inc

Wilmshurst, 1985; Lavidge& Steiner 1961'Leckenby, 1976; Colley, 1961).Advertising principles and practices

Wells et al., 1995).Advertising principles and practicerd (3 ed.)USA: prenticeHall.

(David, 2001) effects of television advertising on child's purchase behavior.

Aggarwal, M. 1983. *Effect of Selected Factors On Qualify of Buying Practices Of The Consumers.* UnpublishedM.Sc. Thesis, Baroda: M.S.University.

Bryant, W.K., and J. L. Gerner.1981. "Television use by Adults and Children : A Multivariate Analysis."*Journal of Consumer Research,* 8(9):154-161.

Bucklin, R.E., and S. Gupta. 1992. "Brand Choice, Purchase incidence and Segmentation : An integrated modeling approach." *Journal of MarketingResearch,* 29(7): 201-215.Cheung, C.K. and C. F. Chan. 1996. "Television Viewing and Mean World Value in Hong Kong's Adolescent's."*Social Behaviour and Personality,*24(4): 351-364.

Chopra, S. 1996. *Impact of T.V. Advertising on Food Consumption Pattern in Middle.*Unpublished M.Sc.*Thesis,* Delhi: Delhi University.Churchill, G.A., and G. P. Moschis. 1979. "Televisionand Interpersonal influence on adolescent consumerlearning." *Journal of Consumer Research,* 6(1): 23-35.

Canadian Paediatric Society 1999. "Television impact on kids." file :// www.Television impact on kids.htm.

Gorn, G.J. and R. Florsheim. 1985. "The effects of commercials for adult products on children." *Journalof Consumer Research,* 11: 962-967.

Greenberg, B.S., and J. E. Brand. 1993. "Television news and advertising in schools: The Channel One Controversy." *Journal of Communication,* 43(1): 143-151.

Kaur, H. and R. Kaur. 2002. "Fashion Awareness Among Rural and Urban Adolescents." *Journal of SocialResearch*., 43(1): 37-40.

Malathi, N.T. and R. K. Kumar.1989.Effectiveness of mass media advertisements: A case study of Mysore City audience." Vidura 26(1): 26-27.

Saksena,G. 1990. "Advertising Through T.V., Social Implications."*Journal of Indian Institute of MassCommunication*, 25(1): 44-49.

FDI in the Field of Promoting Information Technology and Communication

Dr. Antara Kumari

Head of Department, Economics,
Jamshedpur Worker's College, Jamshedpur

The information technology is one of the key driving forces fuelling India's economic growth.

The industry has not only transformed India's image on global platform but also fuelled economic growth by energising the higher education (especially in engineering and computer Science).

The information technology industry has been attracting considerable amount of FDI in recent years.

A number of major IT companies of the world have set up shops in India trying to recruit the skilled IT professionals of india.

It is the result of strong collaboration between the indian government and ICT (information and communication technology) industry that india is rapidly becoming an attractive destination for software development IT enabled services and telecommunications. The ministry of communication and information technology is a central government ministry . It contains three departments.

- Department of telecommunications
- Department of IT
- Department of posts

India holds skilled manpower and infrastructure in these segments which magnetise foreign investments.There is active and healthy competition amongst states in attracting investments in infrastructure as well as designing IT solutions in areas such as e' governance, e- learning, e-commerce, entrepreneurship and software exports. The government is also making continuous efforts to make FDI policies more attractive and investor friendly , with a view to making india an investment hub for all the major countries.

India has emerged over the last decade as the most preferred destination for outsourcing of IT services. The vibrant IT industry is contributing immensely by providing information about latest technology and international business practices.

Department of telecommunications also known as door sanchar vibhag , concerns itself with policy , licencing, and coordination matters relating to telegraph, telephone, wireless, data, facsimile and telematic services and other similar forms of communication. It also looks into the administration of laws with respect to any of the matters specified namely:

- The Indian telegraph act , 1885 (13 of 1885)
- The Indian wireless telegraphy act ,1933 (17 of 1933
- The telecom regulatory authority of india act , 1997 (24 of 1997)

Public sector units:

- Bharat sanchar big am limited (BSNL)
- Indian telephone industries limited.
- Mahanagar telephone nigam limited (MTNL)
- Videsh sanchar nigam limited
- Centre for development of telematics
- Wireless planning and coordination wing
- Telecom engineering centre
- Controller of communication accounts
- Telecom enforcement, resource and monitoring cells

This department is concerned with e governance, e commerce , e medicine, e infrastructure. Department of posts: the department of posts operates one of the oldest and most extensive mail services in the world, with about 26000 full time and 130000 part time post offices. It offers a whole range of products under posts, remittance, savings, insurance and philately. The annual revenue is around rs 4500 crores and expenditures is Rs 5800 crores. Lack of proper investment in infrastructure and technology is the reason for such low revenue.

FDI policy in informmation communication sector:

1. In basic cellular, value added services and global mobile personal communication by satellite , FDI is limited to 49 % subject to licensing and security requirements and adherence by the company.
2. No equity cap is applicable to manufacturing activities.
3. FDI upto 100 % is allowed for the following activities in telecom sector.
   A. ISP s not providing gateways.
   B. Infrastructure providers providing dark fiber.
   C. Electronic mail
   D. Voice mail.

Relevance of furure:This article holds strong relevance for future as it enlightens the growth part of indian economy to be the next superlative economy of the world.

The effect of FDI in informmation communication sector are as follows:

1. In addition to the investments made by foreign investors the inflow of technology, awareness, management practices and expertise also will enrich the service provide by IC sector.

2. Better facilities and quality parameters would be taken care of.
3. India being such a gigantic nation with dense population has the urgent need of making available the telecommunications posts and information technology facilities to its common man with optimum utilization of FDI.
4. Today's ear is considered to be hi-tech era which makes the position of a nation strong in comparison to other countries. This means that the more contended is the hi tech network of a nation , the stronger will it be it's position.
5. In order to maximise the FDI inflows into the IC sector , the government of india is not leaving any stone unturned by providing subsidies , liberalising the policies , Providing friendly and workable environment to foreign investors.
6. Prompt networks , channels and facilities of IS sector will assist in higher revenue generation which ultimately will upgrade the I do an economy as a whole.
7. As majority of the indian population resides in rural areas , it's need of information communication can be fulfilled by FDI.
8. Tele communication facility at reasonable price with improved voice and data quality will help in enriching the standards of people.
9. Efforts made in the IS sector regarding FDI will have a multiplier effect.

So as a conclusion it can be said that no one can deny the importance of investments in ICT sector since this issue is nowadays of much prominence through out the globe. As the past trends have shown growth patterns in ICT sector, hence more initiatives should come from the side of the government to strengthen the figures of FDI inflows into india ICT sector. Other factor that have strong impact and play essential role in stimulating FDI in ICT sector are market size, competition, literacy rate, foreign trade and per capita income.

References

1. Anand .j . And Delios A , "competing globally: how Japanese MNC s have matched goals and strategies in india and china". Journal of world business. 31.3, fall 1996.
2. Jaya gupta (2007), " globalisation and indian economy : sector -wise analysis of FDI inflows".
3. Jayashree bose (2007) ," FDI inflows in india and China - a sectoral experience".
4. Notice sury, "FDI global and indian aspects," new century publications.

Journal and Reports

5. Trends of FDI in telecommunications sector in india - mangalmay journal of management and technology, vol. 4.
6. Commerce and business studies (biannual journal of economics , commerce and management) volume. 1 issue 2, July 2008.
7. Reserve bank of india annual report 2009-10.
8. Reserve bank of india bulletin 2008-09.
9. Dr. N. L sharma , former Dean, faculty of commerce at MJP rohilakhand university , Ex head department of commerce bareily
10. Swastika Tripathi, assistant professor, IFTM university moradabad.
11. Economic watch , July 2010.

Education

The Girl Child Education: Policies and Problems

Shazia Fatma

M.Sc., M.Ed. ; Research Scholar, P.U., Patna

Abstract

Education is an important step in a girl child's overall development. True progress and advancement of any society is possible only when the girls are brought into the folds of education. The social and economic goals of the future depend heavily on the condition of the girl child education today.

The present paper attempts to highlight the various policies and interventions to promote the education of the girl child in India with some special reference to Bihar. It tries to throw some light on the barriers that come in the way of education of the girl child. The paper finally suggests some strategies which can help the interventions and policies work in the right direction.

Key words-: Policies, Interventions,Strategies.

Introduction

> *'' The education of a boy is only to educate a single person but the education of a girl child means education for the whole family ''*
>
> *-Charles Duncan McIver*

True progress and advancement of any society is possible only when the girls are brought into the folds of education. The social and economic goals of the future,depend heavily on the condition of girl child education today. Girls 'education yields some of the highest returns of all investments in development benefitting individuals, families and societies as a whole. Girl child education can bring unprecedented social and economic change to their families and communities.

Access to education by a girl child is considered a significant indicator for the progress of a society. According to Brown (1991) , the education of the girl child in a society determines its social ,financial, natural, physical and human capitals ,and contributes to its growth and development. Education is a significant factor influencing the socio-economic and health conditions of the family and for determining gender relations in society. Moreover, as Nobel Laureate Amartya Sen (1999) stresses, the education of women strengthens their position in the family and community and thereby produces multiple benefits. Sen argues that the education of women is the single most powerful

way to encourage smaller , healthier and better educated families. As educating women helps in slowing down the population growth (Jeffery & Basu ,1996) and increases productivity, encouraging the education of women and closing the gender gap in education promotes faster growth of per capita income. Owing to its considerable benefits, economists believe that investment in educating women and girls will bring the highest return for developing countries by promoting women's social and economic status.

Objectives

The present paper has been written with the following objectives in mind:

1. To highlight the various policies and interventions to promote the education of the girl child.
2. To throw some light on the barriers that come in the way of education of the girl child.
3. To suggest some measures for making the interventions work.

1. Policies and Interventions to Promote the Education of the Girl Child

Indian Education Commission (1964-66) states that it is necessary to pay attention to the educational interests of women. It suggests that for equality and equity in education the following measures may be adopted-:

> *"The education of women should be regarded as a major programme in education for some years to come and bold and determined efforts should be made to face these difficulties involved and to bridge the existing gap between the education of men and women in as short a time as possible. Special schemes should be prepared for this purpose and funds required for them should be provided on a priority basis. There should be special machinery to look after girls' education at the state and central level. It will also be necessary to give adequate attention to the education of girls at all stages and in all sectors .Greater attention will have to be paid to the problems of training and employment of women. Opportunities for their part-time employment will have to be largely extended. Teaching , nursing and social service are well recognized areas where women can have a useful role to play .In addition, several new avenues will have to be opened to them ."*

The report of the Indian Education Commission constituted in 1964 was a landmark in Indian educational history. The commission examined the role and goals of education in the process of national development. The report was followed by the National Policy on Education (NPE) in 1968 which emphasized the need for initiating programmes to provide equal opportunities to both sexes. It highlighted girls education as a means to speed up social transformation.

The NPE stresses the importance of initiating innovative programmes for the empowerment of women through education. As a result , the country witnessed a number of programmes which include the much talked about Mahila Samakhya ,education for women's equality in 1989 and the total literacy campaign in 1988.

The Programme of Action which followed the NPE in 1986 placed a high priority on girls'education (Govt. of India , 1992). It stressed that the central issue was the '' removal of disparities and to equalize educational opportunities by attending to the specific needs of those who have been denied equality so far.(Govt. of India , 1986 :7).

Recurring Policy Recommendations to Promote Girls Education

- Schools within walking distance, closer to the place of dwelling, if necessary satellite schools for remote hamlets.
- Provide child care facilities/creche within school premises
- Escort for girls, if schools are away from the village or hamlet.
- Introduce flexible schools timings and region specific school calendar.
- Provide alternative modes/forms, combine formal with non-formal, condensed coursed for dropout, residential schools (ashram shalas) for special focus groups like nomadic tribes and others.
- Residential condensed education programme for adolescent girls and young women who dropped out of school or never enrolled (Mahila Shikshan Kendra).
- More women teachers in rural areas, with residential accommodation.
- Expand pool of women teachers by lowering qualifications, intensive training (near the place of dwelling), provide regular educational support, organize special condensed courses for dropouts who can be trained to work as teachers, provide secure accommodation for out station teachers, and so on.
- Make curriculum relevant to the lives of poor women who are engaged in battle for survival.
- Recognize the problem of working children, provide special facilities.
- Introduce facilities for 'bridge programs" to enable dropouts to re-enter the school system.
- Provide incentives such as uniforms, textbooks, exercise books, attendance scholarship and free bus passes.
- Involve the community in managing the school through advocacy, mobilization and formation of village education committees with at least 50% women members.
- Improve quality of education, motivate teachers to make learning a joyful exercise.
- Decentralize educational planning and administration, bring it closer to people so that it reflects the special needs and aspirations of community.
- Address management issues that inhibit the implementation of government policy, like grievance redressal, administrators and teachers union's resistance to flexible timings and school calendar, make teachers feel wanted and appreciated.
- Recruit women with lesser qualifications from rural areas, recruit local youth in remote areas where teacher's absenteeism is rampant, appoint teachers to a specific school and so on.
- Mobilize public opinion for primary education and universal literacy in general and women's education in particular. Advocate for greater political

will and administrative commitment. Make it a national mission with time-bound 'targets' - a la National Literacy Mission (NLM), National Elementary Education Mission (NEEM).

2. The Barriers that Lie Within

Almost every conceivable strategy and approach has been covered in policy documents of the government of India. Both the National and the State govt. are spending tremendous resources through various programmes and interventions in the state and in districts to promote girls' education.

As far as Bihar is concerned different policies and schemes of Govt. such as Cycle Yojana , Samagra Vidyalaya Vikas Yojana, Poshaak Yojana, Shiksha Praskar Yojana are on to improve the scenario of girls'education in Bihar . All these efforts have collectively contributed for enrolment and enhancement of retention of girls in govt. schools in Bihar. Such incentives make parents willing to send their girls to school and the problem of dropout has also been checked to a large extent. Among some others measures of schooling infrastructure Bihar has also made progress in the recent years

Despite impressive gains in the participation of girl children in schooling, a large number of girls still face difficulties in entering school and continuing their studies. Bihar needs serious attention in this regard. There is also a significant gender gap in educational participation in Bihar. The GPE in the state has not yet reached 90% at the primary level. Some of the major reasons for girls' non attendance and drop –out as suggested by various study conducted all over the country include gender discrimination by parents and society in general; the undervaluing of girls'education ;the burden of household chores and sibling care; poverty ;and the practice of child marriage and other such practices (Sen 1999 ;Sudarshan 2000 ; Jhingram 2002 & Subramanian 2005).

It is evident from the various surveys conducted on statewise attendance rates that girls in states like Bihar ,Arunachal Pradesh, Rajasthan and Madhya Pradesh are less likely to be enrolled in school than girls living in other states like Kerela, Himachal Pradesh and Mizoram (source: Bandhopadhay, M., & Subramanian, R.,2008). In general, wide gender disparities in enrolment still exist in educationally backward state like Bihar and accompany long standing gender divisions in society. Although in the majority of states girls have lower enrolment rates than boys, girls do have higher rates of enrolment than boys in Goa, Kerela, Delhi and Meghalaya. This suggests a positive change is possible.

3. What Needs to be Done at this Juncture

- Ensuring every girl child experiences childhood and has access to schooling should be the priority of all educational interventions.
- Linking the special programme to the formal school system and giving big push to girl children from the poorest and the most disadvantaged sections of the society.
- Focussing on education, skill development, self confidence building and health education of adolescent girls.
- Creating role models that have visibly benefitted from education.
- Upscaling and replicating innovations that have made an impact.
- Teaching society to value girls' education.

- Orienting the educational system to serve the objectives of equality for women and their empowerment.
- Increasing the time slot in television media for programmes related to education and awareness.
- Promoting public dialogue on the virtues of girls' education.
- Creating a public platform at the district /state /regional level where key political leaders are invited to publicly commit themselves to promoting girls' education.
- Orienting and training educational administrators, teachers and faculty in training institutions and sensitizing them in gender dimension of educational access and giving them the necessary skills to deal with gender issues in their working and living environment.

Conclusion

Massive educational deprivation of the girl child is a reality. It is crucial in regions where stubborn social norms of caste and patriarchy, along with poor governance, are rampant. The exclusivist state policy of control over curriculum choices, misappropriation of funds, non-implementation of educational incentives and ideologically driven reforms and pedagogy are significant contributory factors. Education must be used as an agent of basic changes in the status of women. Education, being a public good, must include principles of non-discrimination, equity and justice. It cannot be a commodity for sale to those who cannot afford it. It must be an entitlement and a right that is guaranteed by the state. It should be visualized as a milestone for women's development, leading to national development, enabling women to respond to challenges to secure better lives for them and for their children.

India is rich in policies, thus almost every conceivable strategy to promote girls' education has been covered. The problem lies in implementation. It is therefore necessary to concentrate on making the system work and deliver the services.

References

1. Bandhopadyay, M., & Subramanian,R.,(2008),NUEPA, Create Pathways.
2. Basu , A. and Jeffrey (1996); Women's Struggle, New Delhi, Manohar Publications.
3. Brown, S. G. ,(1991); Education in the Developing World: Conflicts & Crisis ,New York, Longman Publications.
4. Jha, J. & Jhingran, D. (2002); Elementary Education for the Poorest and other Deprived Groups :The Real Challenge of Universalization, Centre for Policy Research , New Delhi.
5. Reports of Indian Education Commission (1964-66) ;Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi , 1966.
6. Reports of NPE (1986); Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi..
7. Sen , A. ,(1999); Development As Freedom, New Delhi, Oxford University Press.
8. Sharma (2003), The Girl Child in India, A.P.H. Publishing Company, New Delhi, P.35.
9. Subramanian ,R., (2005) Gender Equity in Education: Definitions and Measurements, International Journal of Educational Development, 25(4);pp.395-407.
10. Sudarshan,R.M.,(2000) ;Educational Status of Girls and Women: The Emerging Scenario,Sage Publications , New Delhi

14. www.ncert.nic.in

Wordsworth and Coleridge: A Comparative Study

Dr. Arun Kumar

Associate Professor, Department of English,
College of Commerce, Patna

Among all the literary artists who were writing in the nineteenth century, Coleridge was the most important figure. *Lyrical Ballads* was published in collaboration of both these poets. Coleridge and Wordsworth were good friends. They both influenced each other as far as their literary career is concerned. In this connection we should remember that Wordsworth's life bears the influence of Coleridge who was responsible for shaping his attitude to life.

First of all Wordsworth and Coleridge composed *Lyrical Ballads* in 1798 in collaboration. In this volume four poems were of Coleridge and nineteen by Wordsworth. No doubt both these friends inspired each other but they were not similar. On certain points they agreed with each other and on various other points they did not. In order to know where the distinction lies we have to make a comparative study. Both Wordsworth and Coleridge lived with the similar political background that led them to nature. In the beginning they had great faith in the French Revolution, but later on they felt disillusioned by the consequences of the revolution and found interest in nature. In the beginning, though they felt alike about nature, gradually they followed different paths. Coleridge thought nature to be a guiding spirit and a source of joy like Wordsworth but later on he became more realistic. According to Wordsworth Nature leads man from joy to joy but Coleridge felt that external nature does not give happiness directly. This joy comes from within. This view presents a significant departure from the Wordsworthian concept of Nature. In this context Coleridge seems to be more melancholic than Wordsworth. He could not find that healing power in nature that Wordsworth found. Wordsworth was an optimist who believed that man gets pleasure and relief in the lap of nature. It is for this reason that he tells his sister :

"Therefore let the moon
Shine on thee in thy solitary walk;
And let the misty mountain-winds be free
To blow against thee: and, in after years,
When these wild ecstasies shall be matured

Into a sober pleasure; when thy mind
Shall be a mansion for all lovely forms,
—————————————————————————
If solitude, or fear, or pain, or grief,
Should be thy portion, with what healing power."[1]

Coleridge, on the contrary felt that nature has nothing to do with pain and pleasure. It is the emotion of the composer that is revealed in his writings. If he is happy at heart he sees happiness all around him but if he is in despair then nature also becomes a source of sorrow to him. Coleridge in his *Ode to Dejection* puts the contradictory view of nature. According to him the passions like joy and sorrow are internal factors, having no connection with nature. Nature is only the mirror of man's mood, whether it be joy or sorrow. As he says:

"I may not hope from outward forms to win
The passion and life, whose fountain are within."[2]

Coleridge was a victim of great fear that his poetic talent will vanish soon. Therefore in his *Ode to Dejection* he expresses a sense of pathos caused by the death of poetic talent. Wordsworth too had the same fear. He showed it in his *Ode on the Intimations of Immortality* but he seems to be more optimistic than Coleridge. In this connection Daiches has made a valid comparison between these two poets. He says :

> *"Wordsworth's* Immortality Ode *is also about loss but it is about gain too, and the kind of gain which turns a heedless child, joyously responsive to Nature in an instinctive way into a mature man who can find in Nature "thoughts that do often lie too deep for tears." The* Dejection Ode, *in spite of its eloquent passage on joy, is an altogether more pessimistic poem."*[3]

Wordsworth and Coleridge again differ in their treatment of natural objects. Whereas Coleridge gives realistic touch to the strange things, Wordswroth highlights the ordinary things. In a nut-shell the truth is that supernatural becomes natural in Coleridge and natural becomes supernatural in Wordsworth. In Wordsworth we find the common objects like a solitary reaper, a leach gatherer and a cuckoo assuming significance but in Coleridge the excitement is produced by the use of the supernatural. An example can be given from his poem *The Ancient Mariner:*

"The body of my brother's son
Stood by me, Knee to knee:
———————————————————
"I fear thee, ancient Mariner!"
Be calm, thou Wedding-Guest!
'T was not those souls that fled in pain,
Which to their corses come again,
But a troop of spirits blest:"[4]

This magical strain is particularly associated with Coleridgean form of romanticism. His poems like *Kubla Khan* and *Christabel* are evidence of it. No

doubt Coleridge raised excitement by using the supernatural things but Wordsworth is superior in creating wonder while dealing with common things. However, Wordsworth felt the presence of divine spirit in the entire universe that adds a mystical element to his poetry.

For creating a new interest in poetry both Wordsworth and Coleridge made use of imagination. But in understanding of this term both poets do not agree. Wordsworth used the term in order to find the ultimate reality (God) and Coleridge used it to know the truth that is hidden from the common man. Both of them agree that imagination is a creative faculty and it leads us to reality but they again differ on the point of difference between imagination and fancy. According to Wordsworth both fancy and imagination are the forms of invention. They are not distinct. Fancy is a lower mode of creation and imagination is a higher mode of creation Coleridge does not think like Wordsworth. According to him there is a clear distinction between fancy and imagination. As Daiches points out:

> *"Fancy constructs surface decorations out of new combinations of memories and perceptions, while the imagination generates and produces a form of its own."*[5]

Coleridge believes that there are two kinds of imaginations–primary and secondary. Daiches illustrates his views like this:

> *"For Coleridge the primary imagination is the great ordering principle, an agency which enables us both to discriminate and to order, to separate and to synthesize and thus makes perception possible. The secondary imagination is the conscious human use of this power.....The secondary imagination is more conscious and less elemental, but it does not differ in kind from the primary."*[6]

Though Coleridge does not think like Wordsworth yet he never fails to praise Wordsworth for his theory of imagination. He says in *Biographia Literaria*:

> *"Indeed his fancy seldom displays itself as mere and unmodified fancy. But in imaginative power he stands nearest of all modern writers to Shakespeare and Milton; and yet in a kind perfectly unborrowed and his own."*[7]

However, it is regarded that in the handling of the theory of imagination Coleridge surpasses Wordsworth.

Wordsworth was not a philosopher. If he had any philosophy, it was confined only to the relationship of God and man. But as far as Coleridge is concerned he was a philosopher. As Daiches says:

> *"Disillusionment with the course of the French Revolution was one step on the road to a philosophical conservatism rooted in metaphysics and Christian orthodoxy."*[8]

Coleridge tried to popularize those principles of art and metaphysics which he imparted from Germany. He struck a proper balance between poetry and philosophy. He is known mainly as an English spokesman of Kantian aesthetics. In this context Watson's statement on Coleridge's philosophy of creation can be mentioned. He says :

"For Coleridge, the truth that the poet seeks is neither objective nor subjective; that is to say, it exists neither in the mind of the poet nor in what he sees about him but in 'the identity of both', the one acting upon the other in 'a perpetual self-duplication'."[9]

Coleridge's dynamic philosophy makes him different from Wordsworth.

Besides this, Wordsworth was basically a poet and not a critic. In *Preface to Lyrical Ballads* he puts his views on the theory of poetry. This is done only to defend his own concept of poetry. He did not devise fixed laws for criticism. On the contrary Coleridge was a great critic. Watson says :

"Coleridge's criticism.....its object is not analysis, but a theoretical certainty- 'to reduce criticism to a system,'..... For Coleridge ultimately, only a theory of poetic creation matters : he analyses, not so much poems that exist, but the creative act that makes them what they are."[10]

As a critic his major work is *Biographia Literaria* which is an attempt to marshal objections against the *Preface* that had been growing up in his mind. Coleridge could never agree with Wordsworth on the point of language. He denied Wordsworth's idea of language that there is no difference between the language of prose and poetry. Coleridge feels that prose and poetry have their own different languages. He is also against Wordsworth's views on poetry. For Wordsworth poetry is the expression of feelings but for Coleridge poetry is more subtle and complex and has a logic of its own. Wordsworth's poet writes about those things that he sees all around him. He writes about the common man and there is nothing unusual about his description. But for Coleridge the poet acts in a different manner. Watson says :

"Coleridge's poet certainly re-creates, in some sense, the objects which he sees and hears, but in a sense which Coleridge already felt to be unusual and terrifying."[11]

Besides this Coleridge's criticism covers the works of writers like Shakespeare. He gave lots of lectures on Shakespeare and among them the 1811-12 lectures are very significant. Basically his criticism of Shakespeare is based on Shakespeare's knowledge of human nature. For instance Coleridge says in his lecture III :

"Of Shakespeare he had often heard it was said that he was a close copier of nature, that he was a child of nature, .but it was of human nature and of the most important human nature."[12]

Coleridge praises Shakespeare's characters. As Watson points out:

"A Shakespearean character, in fact is not predetermined: it shapes itself according to circumstances, and the poet acquires knowledge of how his puppets would react by an act of empathy."[13]

Like Coleridge, Wordsworth also praised Shakespeare's knowledge of human nature. He was also impressed by the genius of Shakespeare.

Besides this, just as Coleridge has given his views about Wordsworth, Wordsworth has also spoken about Coleridge. He praises him and says:

"He (Coleridge) was the most wonderful in the power he possessed of throwing out in profusion grand central truths from which might be evolved the most comprehensive system."[14]

There is no doubt that Wordsworth and Coleridge influenced each other considerably. Though at times they differed in their views but their basic concern was the same. Their main intention was to start a new movement against mechanistic psychology of the eighteenth century. This is true that both these friends, with their joint efforts, brought about a perceptible change in literary thought.

References

1. Quoted from Wordsworth, William, "Tintern Abbey", Ed., Hutchinson, Thomas, New Ed., Selincourt, Ernest, De., *The Poetical Works of Wordsworth,* (London Oxford University Press, 1959), P. 165.
2. Quoted from Ed., Ford, Boris, *Pelican Guide to English Literature Vol. V, From Blake to Byron*, (Penguin Books, 1977), P. 196.
3. Daiches, David, *A Critical History of English Literature Vol. IV,* (Allied Publishers Limited, 1994), P. 900.
4. Coleridge, Samuel, Taylor, "The Ancient Mariner", Patterson, Richard, Ferrar, *Six Centuries of English Literature Vol. V,* (Blackie and Son Limited London and Glasgow, 1933), P. 19.
5. Daiches, David, *A Critical History of English Literature Vol. IV,* (Allied Publishers Limited 1994), P. 901.
6. *Ibid*, P. 900.
7. Coleridge, Samuel, Taylor, *Biographia Literaria,* (London George Bell and Sons, 1904), P. 232.
8. Daiches, David, *A Critical History of English Literature, Vol IV,* (Allied Publishers Limited, 1994), P. 892.
9. Watson, George, *Literary Critics,* (Oxford University Press, 1958), P. 119.
10. *Ibid*, P. 112.
11. *Ibid*, P. 120.
12. *Ibid*, P. 125.
13. *Ibid*, P. 126.
14. Salingar, L.G., "Coleridge : Poet and Philosopher", Ed., Ford, Boris, *Pelican Guide to English Literature Vol. V From Blake to Byron,* (Penguin Books, 1977), P. 187.

English

Feminism and Shashi Deshpande's Feminism

Dr. Ranjit Kumar

Assistant Professor, Centre for English Studies,
Central University, Jharkhand

The term 'feminism' has its origin from the Latin word lemina' meaning 'woman' (through French leminisme'). It refers to the advocacy of women's rights, status and power at par with men on the grounds of 'equality of sexes'. In other words, it relates to the belief that women should have the same social, economic and political rights as men. The term became popular from the early twentieth century struggles for securing women's suffrage or voting rights (the suffragette movement) in the western countries, and the later well-organized socio-political movement for women's emancipation from patriarchal oppression. The political scope of feminism has been broadened by the impact of Marxist ideology that has made feminists challenge sexism along with capitalism for both encouraged the patriarchal set-up. Shashi Deshpande's women characters keeping in mind the various types and phases of the women characters expressed in her six novels are studied here and it tries to link these novels with the various phases of feminism. For this purpose it is necessary to have some discussion of feminism and feminist literature. Writers like Jane Austen, Mary Wellstonecraft, Virginia Woolf pledged for the equality of opportunity for the woman based upon the equality of value. But it was left for Simone De Beavoir to come out with a bold manifesto for a frontal attack on the patriarchal hegemony in our society. In her famous treatise, The Second Sex, she has, like a raging rebel, hit hard at the androcentric customs and conventions, art and culture, philosophy and religion which have always assigned women the secondary or rather slavish position to men.

As the study attempts to study Shashi Deshpande's women characters, her portrayal of women needs to be studied from a feminist angle. As an author of the '70s and 80s', she mirrors a realistic picture of the contemporary middle-class, educated, urban Indian woman. Her novels portray the miserable plight of the contemporary middle-class, urban Indian woman and also analyze how their lot has not changed much even in the twentieth century. Shashi Deshpande has made bold attempts at giving a voice to the disappointments and frustrations of women despite her vehement denial of being a feminist. A look at her novels will reveal her treatment of major women characters and will show how the themes in them are related to women's problems. Shashi Deshpande has exposed

the gross gender discrimination and its fall-out in a male dominated society in her first novel Roots and Shadows. In the novel, she depicts the agony and suffocation experienced by the protagonist Indu in a male-dominated and traditionbound society. She refuses to play the straitjacketed role of a wife imposed upon by society. Her quest for identity is tellingly expressed in the novel. The Dark Holds No Terrors, her second novel, is about the traumatic experience the protagonist Saru undergoes as her husband refuses to play a second-fiddle role. Saru undergoes great humiliation and neglect as a child and, after marriage, as a wife. Deshpande discusses the blatant gender discrimination shown by parents towards their daughters and their desire to have a male child. After her marriage, as she gains a greater social status than her husband Manohar, all begins to fall apart. Her husband's sense of inferiority complex and the humiliation he feels as a result of society's reaction to Saru's superior position develops sadism in him. Her husband Mann vents his frustration on Saru in the form of sexual sadism, which has been vividly portrayed by Deshpande. That Long Silence, the third novel, is about Jaya who, despite having played the role of a wife and mother to perfection, finds herself lonely and estranged. Jaya realizes that she has been unjust to herself and her career as a writer, as she is afraid of inviting any displeasure from her husband. Her fear even discourages her from acknowledging her friendship with another man. These three novels belong to her early phase and portray a mild form of feminism.

The Binding Vine, her fourth novel, deals with the personal tragedy of the protagonist Urmi to focus attention on the victims like Kalpana and Mira. Urmi narrates the pathetic tale of Mira, her mother-in-law, who is a victim of marital rape. Mira, in the solitude of her unhappy marriage, would write poems, which were posthumously translated and published by Urmi. Urmi also narrates the tale of her acquaintance Shakutai, who had been deserted by her husband for another woman. The worst part of her tale is that Shakutai's elder daughter Kalpana is brutally raped by Prabhakar, her sister Sulu's husband. Urmi takes up cudgels on Kalpana's behalf and brings the culprit to book. In A Matter of Time, her fifth novel, Shashi Deshpande for the first time enters into the metaphysical world of philosophy. Basically, it is about three women from three generations of the same family and tells how they cope with the tragedies in their lives. Sumi is deserted by her husband Gopal, and she faces her humiliation with great courage and stoicism. Deep inside, she is struck with immense grief, and tries to keep herself composed for the sake of her daughters. Sumi's mother Kalyani was married off to her maternal uncle Shripati. When their four-year-old son gets lost at a railway station, Shripati sends Kalyani back to her parents' house with their two daughters. On his motherin-law Manorama's request, when Shripati returns he maintains a stony silence for the rest of his life. Kalyani's mother Manorama fails to beget a male heir to her husband, and fears lest he should take another wife for the same purpose. Manorama, to avoid the property getting passed on to another family, gets Kalyani married to her brother Shripati. Thus, Deshpande has revealed to our gaze the fears, frustrations and

compulsions of three women from three generations of the same family. Small Remedies, her latest novel, is about Savitribai Indorekar, the ageing doyenne of Hindustani music, who avoids marriage and a home to pursue her musical genius. She has led the most unconventional of lives, and undergoes great mental trauma due to the opposition by a society that practises double standards — one for men and the other for women. Even as a child she was a victim of gross gender discrimination. Besides, Madhu the writer of her biography, narrates her own life story and also those of her aunt Leela and Savitribai's daughter, Munni.

A close analysis of her novels leaves no doubt about her genuine concern for women. Her protagonists are acutely aware of their smothered and fettered existence in an orthodox male-dominated society. Caught between tradition and modernity, her protagonists search for identity within marriage. Deshpande's novels contain much that is feminist. The realistic delineation of women as wife, mother and daughter, their search for identity and sexuality as well, leaves the readers in no doubt where her real sympathies lie. She has been against her works being labelled as "feminist," as it has traditionally been regarded as an inferior type of literature. She denies any influence of the militant feminism like that of Germaine Greer, Betty Friedan, and Kate Millet. She concerns herself with women's issues in the Indian context. In an interview she tells Lakshmi Holmstorm: It is difficult to apply Kate Millet or Simone de Beauvoir or whoever to the reality of our lives in India. And then there are such terrible misconceptions about feminism by people here. They often think it is about burning bras and walking out on your husband, children or about not being married, not having children etc. I always try to make the point now about what feminism is not, and to say that we have to discover what it is in our own lives, our experiences. Women-centered narratives in her novels have led many interviewers to ask her as to what extent does she consider herself a feminist. In one such interview Shashi Deshpande says: I now have no doubts at all in saying that I am a feminist. In my own life, I mean. But not consciously, as a novelist. I must also say that my feminism has come to me very slowly, very gradually, and mainly out of my own thinking and experiences and feelings. I started writing first and only then discovered my feminism. And it was much later that I actually read books about it.

In a paper presented at a seminar, 'The Dilemma of the Woman Writer', Shashi Deshpande protested: "It is a curious fact that serious writing by women is invariably regarded as feminist writing. A woman who writes of women's experiences often brings in some aspects of those experiences that have angered her, caused her strong feelings. 1 don't see why this has to be labelled feminist fiction."" Shashi Deshpande was so fascinated by her women characters that she laid more emphasis on women. Shashi Deshpande says that she knows how the women feel and she knows the mood of India. It has been observed that the predominating issues and themes in her novels emerge from the situations that focus on women caught in the crisis of a transitional society

where the shift is taking place from conventional to unconventional. She traces out the tensions in which the Indian woman is caught in a transitional world.

Shashi Deshpande's novels mainly portray women from the middle class. For her creative expression might be: (a) her own background as she hails from a middleclass family, (b) she is pre-occupied with the social forces at work in society: the clash between the old and the new; between idealism and pragmatism: and (c) the middle-class woman in her works represents a larger part of the contemporary Indian society.

The woman she portrays is undeniably a forerunner of the "doomed female" of modern India. The portrayal is quite unique. Her protagonist neither represents the old, orthodox image, nor a modern westernized woman, and she is the 'every woman' of the Indian middle-class society, who tries hard to rise above tradition but is involuntarily adapted to it. It is not difficult to agree with the view that in Shashi Deshpande's novels, we observe a change corresponding to the change in the contemporary society. We notice that the plot in her novels begins with an unconventional marriage and later on deals with the problems of adjustment and conflicts in the minds of the female protagonists and ultimately portrays their endeavour to submit to the traditional roles.

Shashi Deshpande maintains a unique position among the contemporary, up-coming Indian writers in English. Many writers appear not to have paid much attention to the recent phenomenon of the educated earning wife and her adjustment or maladjustment in the family. Shashi Deshpande has minutely dealt with the phenomenon, arriving at the conclusion that women, after attaining all types of rights, are now struggling to adjust rather than to get free from the traditional world. She deals with the middle-class woman who represents the majority and covers a wide area in the modern society. She takes up women characters very carefully.

The female protagonists in her novels are: (1) Young girls who can be led astray. For example, in Come Up and Be Dead; (2) Married women who suffer silently. For example, That Long Silence; and (3) Working women who, most of the time, are out of the family and come in direct contact with society. For example, The Dark Holds No Terrors." Woman in Shashi Deshpande's novels is initially an unconventional one. She willynilly submits herself to the tradition, perhaps realizing the wisdom of the traditional ways at this stirring moment of the transitional phase of society. Ultimately, she is an appendage to man or family. Though economically independent, she is emotionally dependent on her husband.

References

1. Kanwar Dinesh Singh, Feminism and Postfeminism (New Delhi: Swarup and Sons, 2004), p.3.
2. N. Krishnaswamy, et a/. Contemporary Literary Theory (New York: Macmillan, 2001), p. 73.
3. Ibid., p. 74.

4. Heather Dobson, 'Language and Gender'. http://vvvvw.essaybank.co.uk
5. N. Krishnaswamy, John Varghese and Sunita Mishra, Contemporary Literary Theory: A Student's Companion (New Delhi: Macmillan, 2001), p. 77.
6. Ibid., p. 178.
7. Alice Adams, 'Is Queer a Post Feminist Fashion?' Abstract for M/NILA (November 2002). http://www.uiowa.edu/-mmla/abstracts/95a.html.
8. Kanwar Dinesh Singh, pp. 17-24.
9. Shashi Deshpande, 'Interview: Shashi Deshpande Talks to Lakshmi Holmstorm' Wasafiri, No. 17, Spring 1993, p. 26.
10. Ibid., p. 26.
11. Feminism and Recent Fiction in English ed. Sushila Singh (New Delhi: Prestige Books, 1991), p. 50.
12. Sarabjit Sandhu, The Novels of Shashi Deshpande (New Delhi: Prestige Books, 1991), pp. 13 - 15.
13. Shanta Krishnaswamy, The Woman in Indian Fiction in English (New Delhi: Ashish, 1984), pp. 6-10.
14. Sarabjit Sandhu, pp. 10 - 17.
15. Sarla Palkar, 'Breaking the Silence: Shashi Deshpande's That Long Silence,' Indian Women Novelistsed. R.K. Dhawan Set. 1, Vol. V. (New Delhi: Prestige Books, 1991), pp. 169-175.
16. K.M. Pandey, Dimensional Depth of Female Consciousness: Shashi Deshpande's The Binding Vine (New Delhi: Atlantic Publishers & Distributors, 2001), pp. 74-76.
17. Anuradha Roy, Patterns of Feminist Consciousness in Indian Women Writers(New Delhi: Prestige Books, 1999), pp. 29-32.
18. Siddharta Sharma, Shashi Deshpande's Novels: A Feminist Study (New Delhi: Atlantic Publishers, 2005), pp. 19-32.

Wordsworth and His Predecessors

Mayank Ranjan

Assistant Professor, Ranchi Central University, Ranchi

This is an obvious fact that Wordsworth is greatly indebted to his predecessors. But in order to know in what way he is similar or dissimilar to them we have to look at it comparatively. While doing this we cannot forget that not only the eighteenth century poets but, the protagonists of the seventeenth century like Milton also inspired him.

First of all we begin with Milton's influence on Wordsworth. In Wordsworth we find the habit of self-confession in which he seems to be like Milton. As Elton says:

> *"Wordsworth is a Puritan too, but of Milton's breed."*[1]

Sometimes in his poems Wordsworth becomes melancholic. He expresses his own sadness in his poems like Milton. In fact the reason of sadness of both these persons is the same but the manner of expressing their feelings is not the same. As Elton says:

"He (Milton) tells us of his high purposes, his noble sadness, and his celestial comforting, but nothing about 'experience'; ……..... Though he (Wordsworth) writes a long poem to expound his inner discord and how it was resolved, his struggle is neither theological nor in the ordinary sense moral. His lapses are mental, and failures of faith; in his worst moments he falls into an aridity, or want of hopefulness, which is not his fault so much as that of the world; he loses his primal sensibility to what man and nature can teach him. His Urania, Nature, revisits him at the last and for good and all. This process is not seen in Milton."[2]

Elton further differentiates the two poets:

> *"Wordsworth's dejection, like Milton's, was due to the clouding of his patriotic hope and faith. For Wordsworth, though not for Milton, that cloud was in the end lifted. Not from Milton, but from the body of Puritan- Literature, Wordsworth inherited the desire to tell his tale at length and explain how he had found salvation."*[3]

For the habit of self expression he is not only indebted to Milton but to the Renaissance poets too. As Oliver Elton says :

> *"Wordsworth is also in debt to the profaner sort of autobiography. The habit of self-analysis is strong in the Renaissance poets, from*

Michelangelo to Shakespeare; but, except for the religious mystics, who are never wholly silent, it is a habit that dies down after the middle of the seventeenth century, to revive, with the Confessions *of Rousseau, in the last quarter of the eighteenth."*[4]

Further the poets need consideration in this context are Dryden and Addison. No doubt they have certain hidden romantic elements but there is a great difference between them and Wordsworth. For instance, Wordsworth imitated the life of his day just as Dryden and Addison imitated the life of their times. But the character of both the periods is different, so their attitudes are also different. Whereas both the classical writers represent the fashionable world Wordsworth, on the contrary, presents the life of simple rural people. Moreover, both the classical writers believed in the photographic representation of life, but in Wordsworth we find the colouring of imagination. Though at times both the predecessors are aware of the term imagination but their idea is of a limited kind. In Wordsworth we find a deep influence of imagination. In him even this leads us to ultimate reality but in classical writers it is not so creative.

Besides Dryden and Addison another major figure to whom Wordsworth is indebted is Alexander Pope. Though usually known as a hard core classicist, Pope sometimes becomes a little romantic. The common thing between them is that both wrote about man. It is a different thing that Pope's man belongs to the fashionable world and Wordsworth's to the natural world. Besides this the manner of expressing their thoughts for the people is also distinct. Whereas Pope talks about the people from a critical point of view, Wordsworth never does this. Infact he himself is involved in the lives of his people and shares their sorrow and happiness. Moreover there is a great variety in Wordsworth's poems. He has written about the people of all kinds. An old man, a young boy, a child, a beggar, a reaper everyone finds place in his poems. This is what that makes him different from not only Pope but from other classicists as well. Another point of comparison is that Wordsworth is highly imaginative. Though at times Pope becomes passionate or even imaginative, but he deals with the relationship of man and God. In this Wordsworth is par-excellence. An example can be cited to make the point clearer. For instance, in *Essay on Man* Pope says :

"Heav'n from all creatures hides the book of Fate,
All but the page prescribed, their present state:
From brutes what men, from men what spirits know:
Or who could suffer Being here below?"[5]

Wordsworth has no such confusion. He knows that ultimate end is God. As he says:

"Our birth is but a sleep and a forgetting:
The soul that rises with us, our life's star,
Hath had elsewhere its setting,
And cometh from afar:
Not in entire forgetfulness,
And not in utter nakedness,

But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home" [6]

While discussing about the poets who prepared a powerful background for Wordsworth we cannot forget to mention two literary figures who appeared even before Pope. They were Isaac Watts and Lady Winchilsea. Let us first begin with Isaac watts. In his writings we find a good combination of the love of nature and God. An extract can be quoted from one of his hymns:

"Jesus shall reign where're the sun
Doth his successive journeys run ;
His Kingdom stretch from shore to shore,
Till moons shall wax and wane no more."[7]

It seems that Wordsworth has occasionally borrowed from Watts because in him we find examples of his love for nature and God. Even he believes that in every aspect of nature there is hidden an almighty power. His pomes, like *Tintern Abbey* prove this fact. But in one respect Wordsworth is different from Watts and that is his belief in transcendentalism. This term pertains to a prior knowledge. This a prior knowledge is about man- about man even before his birth. According to this philosophy of transcendentalism man's soul is a part of the Almighty God. When a man is born, his soul is separated from this Almighty power, but here in the world man finds himself amid nature where God pervades everything. Thus it is obvious that Watts only could see God in nature but Wordsworth could see the hidden relation of God, man and nature. This is what makes him significant.

After Watts it was lady Winchilsea who attracted Wordsworth. In her writings there is a simple description of natural beauty. An extract can be quoted from her *Nocturnal Reverie* :

"In such a night, when passing clouds give place,
Or thinly veil the heaven's mysterious face,
When in some river, overhung with green,
The waving moon and trembling leaves are seen."[8]

To lady Winchilsea's love of nature Wordsworth added the qualities of pantheism and transcendentalism. In doing this he is really original.

Dr. Johnson also provided a great help to Wordsworth. Usually he is strict to rules but he sometimes reveals romantic tendencies such as imagination, the love for nature, belief in God, emphasis on passion and the use of simple language etc. So, it can be said that Wordsworth might have had in his mind Johnson's concept of poetry while creating his own works.

At the time when Johnson was at the top of his popularity, there were some others who were trying to follow his romantic tendency. These poets also helped Wordsworth in some way or the other. For instance the sentimental poets like *Akenside and James Grainger* introduced the themes of imagination and solitude in their works respectively. For this Wordsworth is indebted to them. He wrote lots of poems based on imagination. An example can be given from his poem *She was a Phantom of Delight*.

"She was a Phantom of delight
When first she gleamed upon my sight;
A lovely Apparition, sent
To be a moment's ornament;
———————————————————
But all things else about her drawn
From May-time and the cheerful Dawn;
A dancing Shape, an Image gay,
To haunt, to startle, and way-lay."[9]

Lots of solitary utterances are also found in the poems of Wordsworth. As in *Lucy Gray* he says:

"Oft I had heard of Lucy Gray:
And, when I crossed the wild,
I chanced to see at break of day
The solitary child.
No mate, no comrade Lucy Knew;
She dwelt on a wide moor."[10]

Besides Akenside there were certain other poets also who were emotionally attached to nature. Among them Thomson is the best. Though he composed nature poetry but there is a great difference between him and Wordsworth. Nichol Smith has made a comparison between them:

"He (Thomson) Knows the
sensations sweet
Felt in the blood, and felt along the heart,
that are given by the 'beauteous forms' of Nature; but that other gift 'of aspect more sublime' which Wordsworth speaks of in Tintern Abbey *Thomson does not reveal. He remains the observer and lover of nature. Her secrets have to be won from her; she is not an active teacher, we have to draw our own lessons from what she provides."*[11]

Smith adds :

"Wordsworth is not primarily a descriptive poet. He has an unsurpassed power of suggesting a scene in a few words, but he soon takes far beyond it. The art of Thomson remain purposely pictorial, and this is true of the best nature poetry of the century."[12]

Besides Thomson, Wordsworth is indebted to Dyer for his nature poetry and to Mallet for his imaginative appeal. The poets like Blair and Young introduced melancholic theme in their poems. According to them poetry depends upon passion. Whatever kind of passion does a poet feel his poetry becomes of the same kind. Thus they taught him a lesson of the importance of human passions and emotions in the composition of poems. To prove this point we can quote some lines from Wordsworth's poem, *Affliction of Margaret*. Its theme is melancholic and it is full of passion:

"Where art thou, my beloved Son,
Where art thou, worse to me than dead?
Oh find me, prosperous or undone!
Or, if the grave be now thy bed,
Why am I ignorant of the same
That I may rest; and neither blame
Nor sorrow may attend thy name?"[13]

After Blair and Young Gray and Collins emerged to add something new to English poetry. As far as Collins is concerned the interest in Gothic past and the singing quality of his poems are his basic achievements. Wordsworth admires him because in him he finds intense lyrical sensibility and at times love for the past. If we talk about Gray he was not so free to express his own feelings as Wordsworth was. This is the speciality of Wordsworth that he expresses his own thoughts unhesitatingly but for Gray it was not possible because of certain restrictions of his age. Yet in his *Elegy* he has made his best effort to express his own feelings. In this sense he looks similar to Wordsworth. In this connection Graham Hough says :

> *"In the earlier poems he (Gray) had been struggling with the difficulty of expressing personal conflicts and despondencies with the limits of the eighteenth century poetic convention. He had not succeeded very far. In the* Elegy *he finds the answer to his problem, finds the complete expression of his private despairs and frustrations."*[14]

Hough again says :

> *"The greatness of* The Elegy Written in a Country Churchyard *no one has ever doubted, but many have been hard put to it to explain in what its greatness consists. It is easy to point out that its thought is commonplace, that its diction and imagery are correct, noble but unoriginal . The poem is written with the most perfect of good manners. The reader is not hectored or dazzled, the common places are presented to him as what they are, and he is made to feel that on such a theme they are far more in place than any attempt at novelty"*[15]

Thus, it can be said that though Wordsworth described the life of common men like Gray but in the originality he is superior to Gray.

After Gray and Collins the poets who are entitled to be Pre-Romantics improved the romantic spirit. Graham Hough has explained the importance of these poets. He feels that they are significant:

> *"Mainly because they are an early symptom of discontent with the Augustan orthodoxy, an early attempt to establish a freer and wider use of poetic language. Although an abortive and mistaken attempt, they remain historically important, specially as they provide in a sense the starting point for the Wordsworth's revolution."*[16]

Among these pre-romantics Macpherson is remembered for his tendency to return to past and creating a world of melancholy. Percy is known for

introducing the ballad form, sonnets and adding specially an archaic note. Chatterton also followed them. Cowper becomes personal in his poems. Then in Burns we find the romantic elements like lyricism and love for nature. But among all these poets Blake is one who is distinct from them all. He is more romantic than others of his age. He not only writes about the people of the age but also shows their problems like a psychologist. A kind of didactic attitude is also found in his poems.

All these things are present in Wordsworth too and that is what makes him similar to Blake. Blake also wrote poems about childhood, but there is a difference between the childhood poems of Wordsworth and Blake. Blake's poems are childlike but in Wordsworth's poems child is supposed to be a philosopher.

An example can be cited from the poems of both these poets in order to prove the point. Blake says in *Infant Joy :*

"I have no name;
I am but two days old."
What shall I call thee?
"I happy am,
Joy is my name."
Sweet joy befall thee!"[17]

Now let us note Wordsworth's idea of childhood. He says :

"The Child is father of the Man;
And I could wish my days to be
Bound each to each by natural piety."[18]

After going through the whole survey we come to the conclusion that Wordsworth undoubtedly borrowed from his predecessors but this fact dose not lessen his importance. His importance lies in the originality of his treatment and his attitude to adding new dimensions to the hitherto advanced theories of poetry and poetic process.

References

1. Elton, Oliver, *Wordsworth,* (London Edward Donald and Co.1924), P. 9.
2. *Ibid,* PP. 9-10.
3. *Ibid,* P. 10.
4. *Ibid,* PP. 10-11.
5. Quoted From Patterson, Richard, Ferrar, *Six Centuries* of *English Literature, Vol. IV,* (Blackie and Son Limited, London and Glasgow, 1933), P.48.
6. Wordsworth William, "Ode on the Intimations of Immortality From Recollections of Early Childhood",Ed. Hutchinson, Thomas, New Ed., Selincourt, Ernest, De.,*The Poetical Works of Wordsworth,* (London Oxford University Press, 1959), P. 460.
7. Quoted from Patterson, Richard, Ferrar, *Six Centuries of English Literature, Vol. IV,* (Blackie and Son Limited, London and Glasgow, 1933), PP.6-7.
8. *Ibid,* p. 86.
9. Wordsworth, William, "She was a Phantom of Delight", Ed., Hutchison, Thomas, New, Ed., Selincourt, Ernest, De.,*The Poetical Works of Wordsworth,* (London Oxford University Press, 1959), P. 148.

10. Wordsworth, William, "Lucy Gray", *Ibid,* P. 65.
11. Smith, D., Nichol, "Thomson and Burns", Ed., Clifford, James, L., *Eighteenth Century English Literature Modern Essays in Criticism,* (Oxford University Press, 1977), PP. 185-186.
12. *Ibid,* P. 187.
13. Wordsworth, William, "Affliction of Margaret", Ed., Hutchinson, Thomas, New, Ed., Selincourt, Ernest, De.,*The Poetical Works of Wordsworth,* (London Oxford University Press, 1959), P. 92.
14. Hough, Graham, *The Romantic Poets,* (B.J. Publications, 1983), P. 13.
15. *Ibid,* P. 13.
16. *Ibid,* P. 23.
17. Quoted from Patterson, Richard, Ferrar, *Six Centuries of English Literature, Vol. IV,* (Blackie and Son Limited London and Glasgow, 1933), P. 303.
18. Wordsworth, William, "Ode on the Intimations of Immortality From Recollection of Early Childhood", Ed., Hutchinson, Thomas, New, Ed., Selincourt, Ernest, De.,*The Poetical Works of Wordsworth,* (London Oxford University Press, 1959), P. 460.

Law

Company Act, 2013 is a New Wine in a Small Bottle: A Study

Anjay Kumar

Assistant Professor, University of Delhi, Delhi

Change is the law of nature; therefore law has to change with the changing needs of the society. A law once enacted has to respond the needs of the time. Time change, needs changes, but very often the laws lag behind. It the duty of the State to keep the existing laws updated. The old laws have to be altered, amended or replaced, while at times new laws have to be created to replace the existing laws. The Company law, 2013 is enacted to replace the Company law, 1956.

Company law is important instrument to develop trade and industry for faster economic development. The company Act enacted to achieve the objective of the Constitution i.e., the social, political and economic justice. India is a welfare State and Company law is very important to the preservation of economic freedom and our free enterprise system. Company law required to provide a regulative force which establishes effective control over business and commercial activities.

This paper aimed at the study of the Company Act, 2013 and The Company Act,1956 enactments, and comparison between them along substantive provisions of law in the Company law, 2013.

Key Words: Company Act,1956 , Company Act,2013, welfare state

Introduction

Law is an instrument to regulate human behavior, be it social life or business life. With emergence of liberalization, privatization and globalization, the role of competition law increased and competition law was introduced to ensure competition in the market. Whenever there is competition there is a likelihood of unfair means. Violation of the rules of the game is the essence of unfair competition and it is the nature of the competition that determines those rules. Competition makes enterprises more efficient and offers wider choice to consumers at lower prices. This ensures optimum utilization of available resources. It also enhances consumer welfare since consumers can buy more of better quality products at lower prices. Fair competition is beneficial for the consumers, producers, sellers and finally for the whole society since it induces economic growth.

The company is a legal person, distinct from its members. The early companies were formed by a royal charter or enactment of the Parliament. To facilitate the formation of companies in England, the practices were assimilated and formalized by the Joint Stock Companies Act of 1844. Based on that Act, India enacted its first company law in 1850, the Joint Stock Companies Act. The late 1800s was a period of much industrial and commercial activity. The vigorous activity raised several disputes and courts were called to adjudicate these.

Advantages and Disadvantages of Incorporation

Advantages:

i. Artificial legal person
ii. Limited Liability
iii. Perpetual Succession
iv. Transferability of Shares
v. Infinite Membership
vi. Separate Property
vii. Ease in Control and Management
viii. Capacity to Sue

Disadvantages:

i. Formalities
ii. Loss of privacy
iii. Detailed winding up procedure
iv. Control by few
v. Possibility of frauds

After the composition of the Constitution of India, the Companies Act, 1956, having replaced Companies Act of 1913, was the most important legislation of free India. In five and half decades of its existence, the Companies Act, 1956 has been amended 24 times, indicating quick change of business situations. Major amendments were made in 1993, 1997, 2000, 2002, 2006 and 2008.

Changed Context

The fundaments of Indian economy started changing from mid 1985 and radically changed in the early 1990s. Comparing the business context in 1956 with the first decade of the twenty first century, it is unthinkable how the laws of over half a century can be meaningfully applied. Indeed, the fundamental principles may be applied. Technologies, transport, communication, media and knowledge have changed the world beyond recognition from what it was fifty years ago. Hence, the great need to have a relevant law to govern trade and commerce.

Objectives of the Companies Act, 2013

The Companies Act, 2013 reflects a welcome paradigm shift in its basic philosophy from control and regulation to self governance with minimum

regulation.[1] The new Act has 470 sections, 29 Chapters, and 7 Schedules. The new law proposes to make it mandatory for companies to maintain their documents in electronic format.

The main objectives:

i. To provide for more simplified and rationalized legislations.
ii. To make law which is best for global practices
iii. To promote corporate social Responsibility (CSR)
iv. To widen the protection given to investors
v. To promote e-governance by the companies
vi. To promote transparency

The main changes introduced by the Companies Act, 2013

a. The concept of One Person Company
b. More than thirty new definitions are included.
c. A uniform financial year i.e., from 1st April to 31st march for all the companies.
d. The private companies can now have maximum of 200 members as against the maximum 50.
e. The Act empowers SEBI to prescribe class/ classes of companies which can file self prospectus with the ROC.
f. Requirement to file return of allotment for all kinds of securities
g. The provisions relating to buy back of shares by companies have been fairly liberalized.
h. The Non-Banking Financial Companies (NBFCs) will now be governed by RBI rules.
i. The time period to hold Annual general meeting reduced 9 months from 18 months.
j. The books of account to be kept in electronic form.
k. One woman director to be appointed in the specified companies.
l. Every listed company appoints at least 1/3rd independent directors.
m. The maximum number of director raised 12 to 15.
n. A company to hold at least four meetings in a year and the gap between two consecutive meetings should not exceed 120 days.
o. One man company and CSR introduced
p. Submission of Auditors' auditors certificate mandatory
q. National Company Law Board created in place of Company Law Board
r. Valuation of company's assets by qualified registered values.
s. Provisions regarding dormant company created.

Features of the Companies Act, 2013

1. *Introduction of new types of Companies:* New type of companies created *i.e.,* One person company[2], Associate company[3], Small Company Dormant company
2. *Board of Directors:* The number of directors in a company has been increased from 12 to 15. The concept of woman director, resident director and independent director created.

3. *Appointment of key Managerial Personnel:* Every company belonging to such class or classes of companies as may be prescribed shall have the following whole-time key managerial personnel:
   i. Managing director or chief Executive Officer or Manger and in their absence, a whole time director;
   ii. Company Secretary; and Chief Financial Officer.[4]
4. *Related party Transaction:* Companies Act, 2013 has unveiled a new era in the Indian Corporate Sector which places more reliance on disclosure norms rather than on regulatory approvals. One such area is "related party transactions". While the Companies Act, 1956 warranted approval of Central Government for related party transaction by large cap companies, Companies Act, 2013 calls for greater disclosures with members' approval. The scope of transactions have also been widened to include transactions relating to immovable property also which were earlier left outside the ambit of Section 297 of the Companies Act, 1956.

   Under the Companies Act, 2013, the whole concept of related party transactions has been capsulated in a single section, namely Section 188 which combines the erstwhile Sections 314 and 297 of the Companies Act, 1956 and also contains many new provisions within its scope. The section is deeply layered with many set of provisions and leaves the mind perplexed with its scope and coverage.[5]
5. *Cross border Amalgamation:* The merger provisions are contained in Chapter XV, containing Sections 230 to 240, which deals with 'Compromises, Arrangements and Amalgamations.' Section 234 specifically deals with the cross-border mergers concerning merger or amalgamation of an Indian company with foreign company. The analysis of merits and demerits will be done with a view to examine the possible implications of the relevant provisions on cross-border mergers
6. *Class Action Suits*[6]: For the first time, a provision has been made for class action. A "class action" lawsuit is one in which a group of people with the same or similar injuries caused by the same product or action sue the defendant as a group.
7. *Serious Fraud Investigation Office (SFIO)*[7]*:* Under section 211 the Central Government is authorized to establish a serious fraud investigation office to investigate frauds relating to company.
8. *Prohibition of insider trading:* A new clause has been introduced with respect to prohibition of insider trading of securities.[8]
9. *Fraud defined*[9]*:* Corporate fraud is a major problem that is increasing both in its frequency and severity. Research evidence has shown that growing number of frauds have undermined the integrity of financial reports, contributed to substantial economic losses, and eroded investors' confidence regarding the usefulness and reliability of financial statements. The increasing rate of white-collar crimes demands stiff penalties,

exemplary punishments, and effective enforcement of law with the right spirit. Our country has also witnessed several corporate Frauds, few of them being Harshad Mehta scam in 1992, Satyam fiasco in 2009, Sahara fraud case 2010, and latest Kingfisher (Vijyay Mallya) Fraud Case.

Prior to the new Companies Act, 2013 fraud was largely seen as a broad legal concept. The term is not new; the old Act already provides punishment for fraud in various sections but the new Act has come with more specific and clear provisions relating to fraud and fraud reporting. The scope and coverage is very wide and unlike Companies Act, 1956 the Companies Act, 2013 provides similar punishment for all type of frauds. The Fraud provision is in force w.e.f. 12th September, 2013 and Fraud Reporting provisions are brought in force w.e.f. 01st April, 2014 under the Companies Act, 2013.[10] Comprehensive explanation of term Fraud is given in Explanation to Section 447(1) of The Companies Act, 2013.

10. *National Company Law Tribunal and Appellate Tribunal:* The Central Government has to establish a Tribunal to be known as National Company Law Tribunal. It has to consist of a President[11] and such member of Judicial and technical members as may be deemed necessary. The Central Government has to establish an Appellate Tribunal to be known as Company Law Appellate Tribunal.[12] An appeal against the order of the Appellate Tribunal may be filed by the aggrieved person to the Supreme Court within sixty days.[13]
11. *Special Court[14]:* The Central Government may, for the purpose of providing speedy trial of offences under the Act, establish or designate as many as Special Courts as may be nessary.
12. *Constitution of National Financial Reporting Authority[15]:* Under Section 132 the Central Government is authorized to constitute National Financial Reporting Authority (NFRA) as an apex body for the various matters relating to accounting and auditing standards.

Difference between the Companies act, 2013 and the Companies Act, 1956[16]

Financial Year: As per the Companies Act, 2013, all companies must have their financial year ending on 31st March every year. Under the Companies Act, 1956, companies were permitted to have financial year ending on a date as decided by the company.

Format of Financial Statements: Under the Companies Act, 2013, financial statements are to be prepared in the format as prescribed in Schedule III of the Companies Act, 2013.

Under the Companies Act, 1956, financial statements were to be prepared in the format as prescribed in Revised Schedule VI of the Companies Act, 1956. However, there is no difference between Schedule III of the Companies Act 2013 and Revised Schedule VI of the Companies Act 1956.

Definition of Company Limited by Shares Company Limited by shareshas beendefined in Section 2(22) of the Companies Act, 2013. There was no definition given in the Companies Act, 1956.

Maximum Partners in a firm As per Section 464 of the Companies Act, 2013, maximum number of partners of a firm cannot exceed the number may

be prescribed, subject to maximum of 100. The Government notified Rule 10 of Companies (Miscellaneous) Rules 2014, prescribing the maximum number of partners in a firm to be 50. As per Section 11 of the Companies Act, 1956, maximum number of partners of a firm could be 10 in banking business and 20 in any other business.

Definition of a Public Company: According to Section 2(71) of the Companies Act, 2013

Public Company means a Company which:

i. is not a private company
ii. is a private company being a subsidiary of a company, which is not a private company.

Definition of Public Company under the Companies Act, 2013 and the Companies Act, 1956 was same. The Government had prescribed that Public Companies shall have minimum paid-up share capital of Rs. 5, 00,000. The Government withdrew this prescribed limit with effect from 26th May, 2015. Hence Public Companies are not required to have minimum paid-up Capital.

Maximum Number of shareholders in a Private Company: According to Section 2(68) of the Companies Act, 2013, maximum number of shareholders in a private company increased to 200, excluding its past and present employees. According to Section3 (1)(ii) of the Companies Act, 1956, maximum number of shareholders in a private company was 50, excluding its past and present employees.

One Person Company: According to Section 2(62) of the Companies Act, 2013, One Person Company is a company which has only one member. The concept of One Person Company did not exist under the Companies Act, 1956.

Definition of Share: According to Section 2(84) of the Companies Act, 2013, Share means a share in the share capital of a company and includes stock. Under the Companies Act, 1956, the term 'Share' was not defined.

Definition of Equity Share Capital: According to Section 43(a) Explanation (i) of the Companies Act, 2013 defines Equity Share Capital as follows: Equity share capital with reference to any company limited by shares means all share capital which is not preference share capital. Section 85(2) of the Companies Act, 1956 defined Equity Shares as follows: Equity Shares are those shares which are not preference shares.

Authorized or Nominal Capital: Section 2(8) of the Companies Act, 2013 defines Authorized Capital or Nominal Capital as follows: "Authorized Capital" or "Nominal Capital" means such capital as is authorized by the memorandum of a company to be the maximum amount of share capital of the company. The Companies Act, 1956 did not define the term 'Authorized Capital' or 'Nominal Capital'.

Issued Capital: Section 2(50) of the Companies Act, 2013 defines Issued Capital as follows:

"Issued Capital" means such capital as the company issues from time to time for subscription.

The Companies Act, 1956 did not define the term 'Issued Capital'.

Subscribed Capital: Section 2(86) of the Companies Act, 2013defines Subscribed Capital as follows: "Subscribed Capital" means such part of the capital which is for the time being subscribed by the members of a company. The Companies Act, 1956 did not define the term 'Subscribed Capital'.

Paid-up Share Capital or Share Capital Paid-up: Section 2(64) of the Companies Act, 2013 defines "Paid-up Share Capital" or "Share Capital Paid-up" as follows: "Paid-up Share Capital" or "Share Capital Paid-up" means such aggregate of money credited as paid-up as is equivalent to the amount received as paid-up in respect of shares issued and also includes any amount credited as paid-up in respect of shares of a company, but does not include any other amount received in respect of such shares, by whatever name called. Section 2(32) of the Companies Act, 1956 as follows: "It includes capital credited as paid-up." Called up Capital Section 2(15) of the Companies Act, 2013 as follows: "Called-up Capital means such part of the capital, which has been called for payment. The Companies Act, 1956 did not define the term 'Called-up Capital'.

Issue of Shares at a Discount: Section 53 of the Companies Act, 2013 prohibits issue of shares at a discount. However, Section 54 of the Companies Act, 2013 permits issue of Shares at a discount when issued at Sweat Equity. Section 79 of the Companies Act, 1956 permitted issue of shares at a discount.[17]

Debentures: Section 2(30) of the Companies Act, 2013 defines debenture as follows:

Debenture includes debenture stock, bonds or any other instrument of a company evidencing a debt, whether constituting a charge on assets of the company or not. Section 2 (12) of the Companies Act, 1956 defined debenture as follows: Debenture includes debenture stock, bonds or any other instrument of a company, whether constituting a charge on assets of the company or not.[18]

Difference: The words 'evidencing a debt' is included. It means debt raised through any kind of instrument, will be treated as debenture. Thus, any debt of a Company by issue of an instrument is a debt.

Debenture Redemption Reserve: Section 71 (4) of the Companies Act, 2013 along with rule 18(7) of The Companies (Share Capital and Debentures) Rules, 2014 states that every company shall transfer at least 25% of the value of the debentures issued through public issue before redemption of debentures commences to Debenture

Redemption Reserve (DRR): The company is required to invest on or before April 30 of the current year at least 15% of the Nominal (face) value of debentures maturing by 31st March of the next year in specified securities. DRR is not required for debentures issued by Banking Companies and All India Financial Institutions regulated by the Reserve Bank of India, banking Companies and National Housing Bank. In respect of partly convertible debentures, DRR shall be created only for non-convertible portion of debentures. Section 117C of the Companies Act, 1956 provided that sufficient amount should be transferred to DRR. Listed companies were guided by SEBI Guidelines which provided that companies should provide DRR of an amount equal to at least 50% of the face value of the debentures.

Securities Premium Reserve: Utilization of Securities Premium Reserve is specified in Section 52(2) in the Companies Act, 2013. Utilization of Securities

Premium Reserve was provided in Sections 77A and 78 of the Companies Act, 1956.

Articles of Association: Under the Companies Act, 2013, Table F applies where Companies Limited by shares does not adopt their own Articles of Association. Under the Companies Act, 1956, Table A applied where Companies did not adopt their own Articles of Association.

Interest on Calls-in-arrears: As per the Companies Act, 2013, in the absence of a clause, interest chargeable on Calls-in-arrears is 10% p.a. Under the Companies Act, 1956, in the absence of a clause, interest chargeable on Calls-in-arrears was 5% p.a.

Interest on Calls-in-advance: As per the Companies Act, 2013, in the absence of a clause, interest payable on Calls-in-advance is 12% p.a. As per the Companies Act, 1956, in the absence of a clause, interest payable on Calls-in-advance was 6% p.a.

Minimum Subscription: According to Section 39 of the Companies Act, 2013,a company shall not allot securities (shares, debentures or any securities by whatever name called) unless the amount stated in the prospectus as minimum subscription has been subscribed and the sum payable on application has been paid or received by the company by cheque or other instrument. According to Section 69 of the Companies Act, 1956, the requirement of minimum subscription was with respect to shares only.

Conclusion

The sacred bull Nandi, the vehicle of lord Shiva, is a perfect metaphor for the emerging Indian economy. Shiva is the God of creation and he destroys the world in order to create a new. The companies too create and consume wealth and innovative even more as they progress. Nandi is often placed against the entrance door to Shiva's temple to show that he is not only his Lord vehicle but also his guard.[19] Thus, Nandi sign in finance of the new understanding of a company law: like a vehicle it not only facilitate the government to m make suitable regulations and policies but also encourages companies be relevant in the global context for more it also protects the interest of the shareholders. The symbol of Nandi is different of that of the bulls and bears of the stock exchanges' it stands for the stability of law and protection of those who come under it.[20]

The Company Act, 2013 is a new wine in a small bottle. Wine gets better as it ages. The Company Act 1956 has given birth to the new law in line with the changed and changing economic scenario in India and rest of the world and in line with the current economic thinking comprising liberalization, privatization and globalization. A well planned exhaustive corporate compliance programme can be of great benefit to all enterprises irrespective of their size, area of operation. The law will serve the purpose only if it is made independently, runs independently.

With the globalization of the world economy, it became necessary to encourage competition to foster speedy economic development. In the pursuit of globalization India opened its economy by removing control and resorted to liberalization. The result of this is that the Indian market should be geared to face competition from within the country and outside. The Company Act, 1956

had become obsolete in certain respects in the light of international economic developments relating to competition laws. So there arose a need to shift our focus from basic philosophy from control and regulation to self governance with minimum regulation.

Footnotes

[1] https://www.icsi.edu/WebModules/LinksOfWeeks/SEP2013.pdf
[2] The Company Act, 2013, sec. 2(62).
[3] The Company Act, 2013, sec. 2(6).
[4] The Companies Act, 2013, sec.203.
[5] http://taxguru.in/company-law/related-party-transactions-companies-act-2013.
[6] The Companies Act,2013,sec.245
[7] The Companies Act, 2013, sec.211.
[8] The Companies Act, 2013, sec.195.
[9] The Companies Act, 2013,sec.447.
[10] http://taxguru.in/company-law/companies-act-2013-fraud-fraud reporting.html#sthash.JSquZsKn.dpuf
[11] The President has to be person who is or has been a judge of High Court for five years. (Sec. 409)
[12] The Companies Act, 2013,sec.410.
[13] The Companies Act, 2013,sec.423.
[14] The Companies Act, 2013, sec.435.
[15] The Companies Act, 2013, sec.132.
[16] http://tsgrewal.co.in/Images/Comparison_Between_The_Companies_ Act__2013_with_The__Companies_Act__1956-new%20_1_.pdf.
[17] The Company Act, 2013, sec. 53.
[18] The Company Act, 2013, sec. 2(30).
[19] Daniel Albuquerque, Legal Aspects of Business 387 (Oxford University Press 1st edn., 2013)
[20] Ibid.

Impact of Agriculture Development on Water Resources

Om Prakash and Dr. Shiv Raj Singh Tomar

Department of Geography, Ambah P.G. Autonomous College (Jiwaji University), Ambah (M.P.)

Abstract

Agricultural production releases residuals that may degrade the quality of water resources and creates problems to water users. The magnitude of this degradation is difficult to assess due to its nonpoint nature. However, agriculture is the leading source of remaining impairments in the rivers, lakes and other water bodies.

Water is essential for maintaining an adequate agriculture production and a quality environment for the human population, plants, animals, and microbes on the earth. Per capita food supplies may be decrease, because of shortages of freshwater, cropland, and the concurrent increase in human population. This article emphasized on various activities in agriculture sector and their possible impacts on water resources. Some possible solutions of these problems are also described in this regard. It deals specifically with the role of agriculture in the field of freshwater quality. Categories of non-point source impacts - specifically sediment, pesticides, nutrients, and pathogens - are identified together with their ecological, public health and, as appropriate, legal consequences. Recommendations are made on evaluation techniques and control measures.

Key words: Agriculture, Water resources, Uttar Pradesh, water Pollution

Introduction

Access to food supply is one of the the greatest priority for human beings, just after the availability of drinking water. Hence, agriculture is a dominant component of the global economy. In some countries, food necessities have required expansion of irrigation and steadily increasing the use of fertilizers and pesticides to achieve and sustain higher yields. FAO (1990), in its Strategy on Water for Sustainable Agricultural Development, and the United Nations Conference on Environment and Development (UNCED) in Agenda 21, have highlighted the challenge of securing food supply into the 21st century (UNCED, 1992).

Sustainable agriculture is one of the greatest challenges in the present context. Sustainability implies that agriculture not only secures a sustained food

supply, but that its environmental, socio-economic and human health impacts are recognized. It is well known that agriculture is the single largest user of freshwater resources, using a global average of 70% of all surface water supplies. Except for water lost through evapo-transpiration, agricultural water is recycled back to surface water or groundwater. However, agriculture is both cause and victim of water pollution. It is a cause through its discharge of pollutants and sediment to water resources, through net loss of soil by poor agricultural practices, and through salinization and waterlogging of irrigated land. It is a victim through use of wastewater and polluted surface and groundwater which contaminate crops and transmit disease to consumers and farm workers (Graz, 1998; Bharti, 2012).

Much of the scientific literature on agricultural impacts on surface and groundwater quality is from developed countries, reflecting broad scientific concern and, in some cases, regulatory attention since the 1970s. The scientific findings and management principles are, however, generally applicable worldwide.

Water Resources and Agriculture:

Agriculture, as the single largest user of freshwater on a global basis and as a major cause of degradation of surface and groundwater resources through erosion and chemical runoff, has cause to be concerned about the global implications of water quality. The associated agrofood-processing industry is also a significant source of organic pollution in most countries. Aquaculture is now recognised as a major problem in freshwater, estuarine and coastal environments, leading to eutrophication and ecosystem damage (Miller, 2004).

Agricultural practices may also have negative impacts on water quality. Improper agricultural methods may elevate concentrations of nutrients, fecal coliforms, and sediment loads. Increased nutrient loading from animal waste can lead to eutrophication of water bodies which may eventually damage aquatic ecosystems. Animal waste may also introduce toxic fecal coliforms which threaten public health. Grazing and other agriculture practices may intensify erosion processes raising sediment input to nearby water sources. Increased sediment loads make drinking water treatment more difficult while also affecting fish and macroinvertebrates (USU, 2016; Avcievala,1991).

Runoff process from agriculture fields leading to surface and groundwater pollution in different ways. Vegetable handling, especially washing in polluted surface waters in many developing countries, leads to contamination of food supplies. Growth of aquaculture is becoming a major polluting activity in many countries. Irrigation return flows carry salts, nutrients and pesticides. Tile drainage rapidly carries leachates such as nitrogen to surface waters (Laurenson, 1987).

The quality of water entering an agriculture area is extremely important for agriculture success. Too often, water quality is not suitable for agriculture uses. High salt concentrations limit the amount of water a plant can take up, resulting in high plant stress and decreased crop yields. High concentrations of metals also have negative effects on crop production (Bharti, 2014).

Impact

Point Sources

The term 'point source' means any discernible, confined and discrete conveyance, including but not limited to any pipe, ditch, channel, tunnel, conduit, well, discrete fissure, container, rolling stock, concentrated animal feeding operation, or vessel or other floating craft, form which pollutants are or may be discharged. This term does not include agricultural storm water discharges and return flows from irrigated agriculture (Gupta and Bharti, 2016).

Disposal of liquid wastes from municipal wastewater effluents, sewage sludge, industrial effluents and sludges, wastewater from home septic systems; especially disposal on agricultural land, and legal or illegal dumping in watercourses is the examples of major point sources of water pollution from agriculture areas (Bharti and Ikemefuna 2014).

Non-point Sources

Non-point source water pollution, once known as 'diffuse' source pollution, arises from a broad group of human activities for which the pollutants have no obvious point of entry into receiving watercourses. In contrast, point source pollution represents those activities where wastewater is routed directly into receiving water bodies by, for example, discharge pipes, where they can be easily measured and controlled. Obviously, non-point source pollution is much more difficult to identify, measure and control than point sources (Wright and Nebel, 2002).

Increased runoff from disturbed land is one of the important sources, while most damaging is forest clearing for urbanization. Non-point source pollutants, irrespective of source, are transported overland and through the soil by rainwater and melting snow. These pollutants ultimately find their way into groundwater, wetlands, rivers and lakes and, finally, to oceans in the form of sediment and chemical loads carried by rivers.

As discussed here, the ecological impacts of these pollutants range from simple nuisance substances to severe ecological impacts involving fish, birds and mammals, and on human health (FAO, 1990a). Table 1 and table 2 are showing the leading sources of water bodies and pollution (%) from various sources. Various types of pollutants in the water resources are given in Table 3.

Table 1: *Leading sources of water quality impairment (USEPA, 1994)*

Rank	*Rivers*	*Lakes*	*Estuaries*
1	**Agriculture**	**Agriculture**	Municipal point sources
2	Municipal point sources	Urban runoff/storm sewers	Urban runoff/storm sewers
3	Urban runoff/storm	Hydrologic/habitat modification	**Agriculture**
4	Resource extraction	Municipal point sources	Industrial point sources
5	Industrial point sources	On-site wastewater	Resource extraction

Table 2: *Percent of assessed river length and lake area impacted (USEPA, 1994)*

Source of pollution	***Rivers (%)***	***Lakes (%)***
Agriculture	**72**	**56**
Municipal point sources	15	21
Urban runoff/storm sewers	11	24
Resource extraction	11	
Industrial point sources	7	
Silviculture	**7**	
Hydrologic/habitat modification	7	23
On-site wastewater disposal		16
Flow modification		13

Table- 3: *Pollutants in water resources due to agriculture (FAO, 2016)*

S.N.	***Nature of pollutant***	***Rivers (%)***	***Lakes(%)***
1	Siltation (sediment)	45	22
2	Nutrients	37	40
3	Pathogens	27	
4	Pesticides	26	
5	Organic enrichment DO	24	24
6	Metals	19	47
7	Priority organic		20
8	chemicals		

In addition to problems of waterlogging, desertification, salinization, erosion, etc., that affect irrigated area; the problem of downstream degradation of water quality by salts, agrochemicals and toxic leachates is a severe environmental problem.

It is of relatively recent recognition that salinization of water resources is a major and widespread phenomenon of possibly even greater concern to the sustainability of irrigation than is that of the salinization of soils.

Indeed, only in the past few years has it become apparent that trace toxic constituents, such as Se, Mo and As in agricultural drainage waters may cause pollution problems that threaten the continuation of irrigation in some projects.

Table 4 is describing the impacts of agriculture on water resources (FAO, 2016).

TABLE 4: *Agricultural impacts on water quality (FAO, 2016)*

	Surface water	*Groundwater*
Tillage/ploughing	**Sediment/turbidity**: sediments carry phosphorus and pesticides adsorbed to sediment particles; **siltation** of river beds and loss of habitat, spawning ground, etc.	
Fertilizing	Runoff of nutrients, especially phosphorus, leading to eutrophication causing taste and odour in public water supply, excess algae growth leading to deoxygenation of water and fish kills.	Leaching of nitrate to groundwater; excessive levels are a threat to public health.
Manure spreading	Carried out as a fertilizer activity; spreading on frozen ground results in high levels of contamination of receiving waters by pathogens, metals, phosphorus and nitrogen leading to eutrophication and potential contamination.	Contamination of ground-water, especially by nitrogen
Pesticides	Runoff of pesticides leads to contamination of surface water and biota; dysfunction of ecological system in surface waters by loss of top predators due to growth inhibition and reproductive failure; public health impacts from eating contaminated fish. Pesticides are carried as dust by wind over very long distances and contaminate aquatic systems 1000s of miles away (e.g. tropical/subtropical pesticides found in Arctic mammals).	Some pesticides may leach into groundwater causing human health problems from contaminated wells.
Feedlots/animal corrals	Contamination of surface water with many pathogens (bacteria, viruses, etc.) leading to chronic public health problems. Also contamination by metals contained in urine and faeces.	Potential leaching of nitrogen, metals, etc. to groundwater.
Irrigation	Runoff of salts leading to salinization of surface waters; runoff of fertilizers and pesticides to surface waters with ecological damage, bioaccumulation in edible fish species, etc. High levels of trace elements such as selenium can occur with serious ecological damage and potential human health impacts.	Enrichment of groundwater with salts, nutrients (especially nitrate).
Clear cutting	Erosion of land, leading to high levels of turbidity in rivers, siltation of bottom habitat, etc. Disruption and change of hydrologic regime, often with loss of perennial streams; causes public health problems due to loss of potable water.	Disruption of hydrologic regime, often with increased surface runoff and decreased groundwater recharge; affects surface water by decreasing flow in dry periods and concentrating nutrients and contaminants in surface water.
Silviculture	Broad range of effects: pesticide runoff and contamination of surface water and fish; erosion and sedimentation problems.	
Aquaculture	Release of pesticides (e.g. TBT[1]) and high levels of nutrients to surface water and groundwater through feed and faeces, leading to serious eutrophication.	

[1] TBT .= Tributyltin

Polluted water is a major cause of human disease, misery and death. According to the World Health Organization (WHO), as many as 4 million children die every year as a result of diarrhoea caused by water-borne infection. The bacteria most commonly found in polluted water are coliforms excreted by humans. Surface runoff and consequently non-point source pollution contributes significantly to high level of pathogens in surface water bodies. Improperly designed rural sanitary facilities also contribute to contamination of groundwater.

Agricultural pollution is both a direct and indirect cause of human health impacts. The WHO reports that nitrogen levels in groundwater have grown in many parts of the world as a result of intensification of farming practice (WHO, 1993). This phenomenon is well known in parts of Europe. Nitrate levels have grown in some countries to the point where more than 10% of the population is exposed to nitrate levels in drinking water that are above the 10 mg/l guideline. Although WHO finds no significant links between nitrate and nitrite and human cancers, the drinking water guideline is established to prevent methaemoglobinaemia to which infants are particularly susceptible (WHO, 1993). Although the problem is less well documented, nitrogen pollution of groundwater appears also to be a problem in developing countries.

Possible Solution

Decisions by agriculturalists for control of agricultural non-point source pollution can be at various scales. At the field level, decisions are influenced by very local factors such as crop type and land use management techniques, including use of fertilizers and pesticides. These decisions are based on best management practices that are possible under the local circumstances and are meant to maximize economic return to the farmer while safeguarding the environment. Local decisions are made on the basis of known relationships between farm practice and environmental degradation but do not usually involve specific assessment of farm practices within the larger context of river basin impacts from other types of sources. Decisions regarding use of waste water, sludges, etc., for agricultural application are also made using general knowledge of known impacts and of measures to mitigate or minimize these impacts (Ongley, 1996).

Farmers can take many steps to reduce loadings of agricultural pollutants to water resources. Both structural and management practices are available for managing water and chemical inputs more efficiently, or by controlling runoff. Practices include integrated pest management, comprehensive nutrient management planning, irrigation water management, animal waste management, conservation tillage, and vegetative buffers (Bharti and Ikemefuna, 2014).

The final phase of the agricultural water use cycle is discharge, in which water returns by runoff or seepage to the larger hydrologic cycle. This phase is a problem in as much as the discharges carry pollutants like nitrates and pesticides. Since agriculture is a non-point source polluter its output generally cannot be collected and treated. Therefore, those solutions typically applied to industrial and municipal polluters are not useful in an agricultural setting. Some agricultural pollution problems can be mitigated by the adoption of best management practices (BMPs), which are the primary options available to alleviate non-point source pollution (Avcievala, 1991).

Conclusion

Agriculture is an important source of sediment, nutrients, pesticides, salts, and pathogens. The presence of these materials in water resources can impose costs on water users. Some estimates of the cost to water uses have been made,

but overall, an accounting of the economic damages caused by poor water quality is lacking, due to a lack of physical monitoring and the difficulties in estimating economic costs and benefits for environmental goods and services. Hence, water resources must be conserved due to the poor agriculture practices and it can be somehow controlled by using sustainable agriculture practices or management in the Indian agriculture sector.

Acknowledgement

The author is grateful to HoD for providing opportunity to conduct research work in the campus and want to express his gratitude to colleagues for their continuous support and helps.

Reference

Avcievala, S. (1991): The nature of water pollution in developing countries. Natural Resources Series No. 26. UNDTCD, United Nations, New York.

Bharti, P. K. (2012): Groundwater Pollution, *Biotech Books*, Delhi, pp: 243.

Bharti, P. K. (2014): Global water resources and water demand, In: Water Resources and Agriculture (Eds.- Bharti, P. K. and Ezeaku, P.I.), *Discovery Publishing House*, Delhi, pp: 1-17.

Bharti, P. K. and Ezeaku Peter Ikemefuna (2014): Water Resources and Agriculture, *Discovery Publishing House*, Delhi, pp: 214.

FAO (1990): *Water and Sustainable Agricultural Development: A strategy for the implementation of the Mar del Plata Action Plan for the 1990s.* FAO, Rome.

Graz, L. (1998): Water source of life. FORUM: War and Water. International Committee of the Red Cross, Geneva, Switzerland, pp. 6-9.

Gupta, Sandeep and Bharti, P. K. (2016): Water Resources Management: Monitoring and Assessment, *Discovery Publishing House*, Delhi, pp: 202.

Laurenson, E. M. (1987): Assessment of Water Resources – Group Report, in D. J. McLaren and B. J. Skinner, editors. Resources and World Development. New York, NY: Wiley-Interscience, p. 16.

Miller, G. T. (2004): Living in the Environment: Principles, Connections, and Solutions. 13th Edition. Brooks/Cole, a Division of Thomson Learning, Inc., p. 314.

UNCED (1992): *Agenda 21 of the United Nations Conference on Environment and Development.* United Nations, New York.

US-EPA (1994): *National Water Quality Inventory.* 1992 Report to Congress. EPA-841-R-94-001. Office of Water, Washington, DC.

Ongley, Edwin D. (1996): Control of water pollution from agriculture - FAO irrigation and drainage paper 55.

USU (2016): Agriculture and Water Quality, as accessed on 5 may 2016 from http://extension.usu.edu/waterquality/agriculturewq/

Wright, R. T. and B. J. Nebel (2002): Environmental Science Toward a Sustainable Future, 8th Edition. Prentice-Hall, Inc. Upper Saddle River, New Jersey, pp. 214-217.

WHO (1993): *Guidelines for Drinking-Water Quality, Volume 1: Recommendations.* (Second Edition), World Health Organization, Geneva.

www.fao.org/docrep/w2598e/w2598e04.htm as accessed on 05 May 2016.

www.oecd.org/tad/sustainable-agriculture/

Psychology

Educational Achievement and Family Environment

Dr. Lakshmeshwar Thakur

Associate Professor, Department of Psychology, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur

Smt. Rashmi

Research Scholar, Faculty of Education

Introduction

While discussing "Achievement" it is essential to see that meaning of the word achievement. As explained by Kerlinger "Achievement is customarily defined operationally by citing a standardized test of Achievement, for example Iowa pupil–test of Basic skills, Elementary Traxler Silent Reading test, by grade point Averages or by Teacher estimates (via direct questions or grade assigned).

In 1938 Murry presented a classification of needs there were altogether 20 different needs, needs for achievement (n achievement) being one of them. It refers to behaviour which show effort to accomplish something, to do one's best to excel over others in performance. It is to be differentiated from exhibitionism (showing off without doing anything useful) and from do eminence (desire to boss others around) while this concept of need achievement was invested by Murry. Mc Clelland 1953 and Atkinson 1954 have worked hard on this dimension of human personality. The devices used by them were mainly projective devices and most commonly they used T.A.T. Picture. Working with college students they found that need for achievement defined "as competition with standard of excellence" constituted a workable construct which permitted prediction to a variety of achievement related situation.

In fact achievement motivation has been conceptualized as a multiplicative function of (i) The strength of motive to approach success and to avoid failure (ii) The Probabilities. That a given act. Will result in success or failure and (iii) the incentive value success of failure in that activity.

Individuals responds differently to situations in which some standard of excellence might be applied to their behaviours. At one extreme persons set light standard for themselves, strive very hard to achieve them and respond with considerable feeling to their success, or failure in meeting them. At the other extreme persons are unlikely to set such standards. Exert little effort and feel relatively indifferent about achieving the standards. These two kinds of persons are said to differ in achievement motivation.

By now an extensive literature has grown up around the need for achievement. As discussed by Hoffman and Hoffman (1966) achievement motivation has been founded to be related to maternal child rearing attitudes, and middle class adolescents tend to show more achievement motivation than lower class adolescents. There are also sex differences in the correlates of Achievement motivation scores and social class differences in the nature of incentives which will elicit achievement motive and promote performance. Second and Backman (1974) has discussed the childhood antecedent of the motivation to achieve. Accordingly children with strong motivation to achieve had parents who expected independent accomplishment at an earlier age and who gave more frequent and stronger reward for independent accomplishment. These findings were supported further in a study in which interaction between parents and their child in a problem solving situation was observed.

The effect of variables such as attitude of Parents, Social class, sex etc. on child's motive or desire to achieve high educational success or to excel in class can be very easily seen taking, the students of my one class in a school in to account. It is found that some of the children pass their examination with very good marks, others just pass the examination and there are still others who failed or are detained. If we go through the cause of these failures, we see that the classroom, atmosphere is not the only important factor because all the students of a class are thought by the same teacher in the same situation. Besides intelligence, aptitude and classroom teaching, these are several, attitudinal and environmental factors, which are responsible for the achievement of the students. During the past quarter of a century there has been a steady growth of evidence that the quality of the parental care which a child receives in his early years is of vital importance for his future educational growth.

Aim of Hypothesis

Taking all these in a consideration the present study was undertaken with a view to make a comparative assessment of effects of two types of families. The joint and the unit families on children's growths and adjustments in various fields.

Children coming from unit families will show greater improvement on tests of intelligence and examination marks in comparison to children coming from joint families.

Method and Sample Selection

For selecting the sample, the scholar visited many Schools of Chapra district Urban, Rural area and gathered information regarding the socio-economic status of children, studying in those schools. From this it become clear that children coming from middle class socio-economic group mainly populated some schools. Only such schools were selected for the purpose of this study. Schools in which large number of children come from high S.E.S. group or from low S.E.S. group were not selected. The scholar picked up the names of about (200) two hundred children ages 9-10 years. Hundred (100) boys and Hundred (100) Girls' students. Thus the two were equal so far as the following variables were concerned.

1. Schooling–nearly equal number from each school.
2. Number of boys and girls–Hundred (100) boys and girls each group. The boys were selected from boy's schools and girls were selected from girl's schools.

So far as the educational success of the children was concerned the half yearly and annual examination marks Hindi, english Arithmetic, science and social studies were taken from the school registers and their averages were computed.

Although much has been said and is being said about the unreliability of school examination marks, they were always used for almost all types of decision such as selecting candidates for different type of teaching and also for different jobs. They are the most commonly used indices for sending pupils from lower to upper classes; from school to colleges and from colleges to universities. In fact this is the basis on which all practical judgements depend. Hence, the scholar thought it proper to use school examination marks as indices of their school success.

Result and Discussion

For assessing the educational progress marks obtained at the half-yearly annual examination held in 2013 and 2014 were noted down from the school registers and were added and averaged. Separate averages for Hindi, English, Arithmetic, Social Studies and science were computed.

Table I

Table of means, Differences between mean and Z-rations of school marks of urban group

Subject	*Family testing*	*U.F.*	*J.F.*	*Diff.*	*Z-ratio*
Educational	First Mean	42.45	31.81	10.59	6.13 HS
	Second Mean	49.50	46.95	2.50	1.629 NS
	Diff.	7.05	15.14		
	F-ratio	4.46 HS	8.91 HS		

Table II

Table of mean, Differences between Mean's and Z-ratio of School marks of rural group

Subject	*Family testing*	*U.F.*	*J.F.*	*Diff.*	*Z-ratio*
Education	First Mean	44.49	51.165	5.675	3.93 HS
	Second Mean	49.262	37.708	11.554	1.65.98 HS
	Diff.	4.772	13.457		
		2.51			
	F-ratio	Hig. 0.01	5.78 HS		
		0.05			

Table III

Table of F-ratio for the comparisons between two groups of boys and two groups of girls with regards to total examination marks

Group	*Sources*	*F-ratio*	*Level of significance*
Boys & Girls Urban	Types of family	0.2075	N.S.
	Passage of time	4.1255	Sig.-0.05 Level
	Interaction	10.7458	Sig.-0.01 level
Boys and Girls Rural	Types of family	1.8184	N.S.
	Passage of time	0.0728	N.S
	Interaction	0.3429	N.S.

Analysis of variance technique applied in the aggregate marks yielded in significant F-ratio for family type in both boys and girls groups among the boys one years' time and interaction of time with family type resulted in significance differences but among the girls no difference was statistically significant.

In languages both social and educational: the marks of the first year examination of the joint family girls were higher than the marks of the unit family girls. In Hindi they remained superior even in the second year though the differences decreased from 2.76 to 0.36 in English however. The Unit family girls exceeded them and also the difference increased from 6.66 to 11.55 percent. Thus in both the language subjects in one year's time the unit family girls gained more than Joint family girls. In English boys of the unit family group exceeded the Joint family boys by 10.59 percent in first year and only by 2.50 percent in the second year and in Hindi the unit family boys were inferior than the joint family boys in the first year but become superior later on, the two differences being 0.35 and 1.02 respectively. That is, in one case the Joint family boys had improved more and in the other the unit family boys had shown greater improvement.

Conclusion

The result of this study are supported by the result of Srivastava's 1966 study in which size of family and number of children in the family correlated negatively with academic achievement. In his study the children of families with smaller size and smaller number of children were found to have high scholastic achievement. He has concluded "Small family size and fewer number of children in the family promote achievement because in these types of families the parents are progressive and educated, value education and thus provide children with adequate facilities for study."

Although a comparison between the unit and Joint family was not undertaken by earlier researchers, the results of the present study get support from the studies of large and small size family.

References

1. Kerlinger F.N. (1964): Foundation of Behavioural research Hoff. Rinchart and Winston, Inc., New York.
2. Mc. Clelland (1963): Personality, New York Halt.
3. haffman L.W. and Hoffman N.L. (1966): Review of Child Development Research, Vol. 2, New York.
4. Almy Millic *1955): Child Development, Teacher's College Columbia University.
5. Guessel (1941): Wolf child and Human child, Harper, New York.
6. Fleming (1944): The Social Psychology of Education

Development of Arabic Fiction during Twenty Century

Farida Parbin

Assistant Professor, Department of Arabic, Mahatma Gandhi College, Chalantapara, Bongaigaon, Assam

The tradition of Arabic literature stretches back some 16 centuries to unrecorded beginnings in the Arabian Peninsula. At certain points in the development of European civilization, the literary culture of Islam and its Arabic medium of expression came to be regarded not only as models for emulation but also, through vital conduits such as Moorish Spain and Norman Sicily, as direct sources of inspiration for the intellectual communities of Europe. The rapid spread of the Islamic faith brought the original literary tradition of the Arabian Peninsula into contact with many other cultural traditions—Byzantine, Persian, Indian, Amazigh (Berber), and Andalusian, to name just a few—transforming and being transformed by all of them. At the turn of the 21st century, the powerful influence of the West tended to give such contacts a more one-sided directionality, but Arab litterateurs were constantly striving to find ways of combining the generic models and critical approaches of the West with more indigenous sources of inspiration drawn from their own literary heritage. Every language is a field of forces where the same principles work simultaneously for change and for loyalty to the past. Change and continuity, according to noted linguist Ferdinand de Saussure, are founded on one of language's properties: the arbitrary nature of the linguistic sign. The two forces seem to have worked in a peculiar way during the last millennium in the history of the Arabic language. The principle of continuity seems at work only in the classical (or literary) Arabic, while the principle of change and variation between local idioms seems to be at work in Arabic dialects.

The First Half of the 20th Century

However, this model has been significantly modified during the 20th century, when literary Arabic became transformed from a language of the elites, mainly used in the fields of religion and jurisprudence, to the language of the masses. This change affected not only literary Arabic but its relationship with Arabic dialects, which in turn were changed under the influence of powerful social factors.

The 20th century began under the slogan of the language. The emergence of nationalism, whether it was Pan Arab such as in Syria and Lebanon, or regional such as in Egypt, was invariably linked to the language. In order to reclaim the medieval Arabic language known as al-Arabiyya , a modern form of literary Arabic evolved - commonly known as standard Arabic, which distinguished itself from the al-Arabiyya at the lexical, syntactical, and stylistic levels.

The first half of the 20th century was a continuation of the spirit of the Nahda or renaissance. The Arab press played a decisive role in the renaissance of the Arabic language as Ibrahim al-Yazigi noted towards the beginning of the century. Continuity and change, purism and modernization were not perceived as contradictory. For instance, al-Yazigi devoted his article, "Language and Time" in Al Bayan literary magazine (1898) to enumerating the morphological processes that permit the creation of new words. But at the same time, he was also a pioneer in vilifying common language errors in the press.

The simultaneous attempts of renewal and attachment to the canons of the language characterized the position of the Arab academies, particularly the Damascus Academy (founded in 1919) and the Cairo Academy (founded in 1932), both of which played an important role in what appeared to be the most urgent task in the beginning of the century: the modernization and the expansion of the lexicon. The 19th century had made literary Arabic a language of political and social debate, thanks to the reform movement in Egypt and to the Christian Lebanese intellectuals who wrote important dictionaries according to contemporary methods. However, a lot more work remained to be done.

Influenced by the French academy, the Arabic academies of Cairo and Damascus aimed to preserve the purity of the Arabic language as well as adapt its lexicon to modern scientific and technical needs, a concern that has dominated the Cairo Academy since 1960. The difficulties in coining precise political terminology which marked the 19th century gave way in the 20th century to more daring innovations in the expansion of the lexicon. For instance, in a society governed by a religious law known as sharia , the verb sharra'a , to mean civil legislation, was adopted after great initial reluctance. In other instances, in the second half of the 19th century the Young Turks had borrowed some Arabic terms to designate Western political concepts like hukumat (government) or jumhurriyya(republic). These terms came to be used in Arabic discourse early in the 20th century.

Methods of Lexical Innovation

The methods of innovation during the 20th century varied. Terms or concepts were transferred to the Arabic language - an example is the term aristoqratiyya , which is borrowed from the French aristocratie. In other instances, semantic components of terms were literally translated into their Arabic equivalents, a method called calque. One example of this is 'awlama , which means "globalization," a term that has gained wide acceptance in contemporary Arab social science. Yet another approach, neologism - inventing new words and expressions - was used in a number of ways, among which are: the analogical derivation such as suffixation of the iyya in order to form abstract nouns such as qawmiyya which means nationalism; the multiple Arabic schemes

as the instrumental scheme used to form new words like mis'ad , meaning the instrument to elevate; the extension of the meaning of an existing word such as jarida which presently means newspaper; the composition that gave us some current words like raddfi'l , which means reaction, and which was formed of two nouns, radd and fi'l ; and the integration of new notions passed often from the simple transfer of a foreign word to the formation of a new word better integrated in the structure of the language. For instance, the word communisme was transferred into Arabic in the 19th century, but was Arabized into shuyu'iyya in the 20th. Some borrowed words produced new derivations: for example talfana(to call on the phone) from tilifon (telephone).

We must go back to the 10th century to find a similar expansion of the Arabic lexicon, thanks to a wide movement of translation at that time. While Baghdad was the only center of translation in the 10th century, in the 20th century translation has been undertaken at multiple centers in the Arab world. Notwithstanding these multiple centers, we note a real uniformity of vocabulary in scientific disciplines such as medicine, physics, and finance, while the national terminologies, particularly the governmental ones, have remained distinct, and often reflect the history of the individual countries.

Because of its oral nature, it is difficult to trace the development of the Arabic dialect in the first half of the 20th century. However, the available grammar shows that the linguistic change was fast, as we notice when we compare the grammar of the Lebanese dialect written in 1928 by Michel Feghali with the grammar of the Syrian dialect written in 1964 by Mark Cowell. Uniformity and simplicity characterize the changes to the syntax and phonology of the language. As Cowell highlights, the change that started around the mid-20th century shows the influence of the written language over the spoken. This facilitated the adoption of numerous words that affected both syntax and phonology. Meanwhile, the massive urbanization in conjunction with the rise of the media created a setting where regional words were abandoned and replaced by equivalent cosmopolitan ones.

The Second Half of the 20th Century

The breakaway from the Nahda characterizes the second half of the 20th century. The first concern was to find in the language means to express the self. The development of the novel, a major literary event of the 20th century, succeeded in transforming the language from being confined to law, religion, and politics into becoming the language of the every day. The concern with being grammatically correct was gradually abandoned, especially in Egypt, in favor of expressing the self free from rules. Because they are primarily interested in describing reality, authors in the last two decades have resorted to using European words borrowed by various dialects. They have also used the dialect vocabulary, and in certain contexts used dialect in whole passages. Since its expansion, and in order to get closer to the reader, the print press has undergone a similar evolution. On the other hand, undoubtedly, the audiovisual media have been decisive in creating new linguistic usages, where the spoken has become both formal and intelligible. Finally, the sociolinguistic factor has been decisive in the evolution of the language, primarily due to the varying degrees

of language skills in literary Arabic. While the Arabic language has become both popularized and the official language of Arab countries, the methods by which it has been taught have failed to keep up with this evolution. Since language mastery was lacking early in the century, a passionate debate ensued, leading intellectuals like Taha Hussein and others to call for simplifying the teaching of both grammar and language. These debates bore no fruit, however, perhaps because they were not integrated into a coherent didactic vision.

The linguistic question in the Maghreb became a major issue in the second half of the 20th century. In the post-colonial period, the Maghreb states followed different policies of Arabization, a process influenced by each country's history, politics, and the importance of the Berber minorities. For example, Algeria and especially Morocco have large minorities of Berbers who are bilingual (Arab/Berber). Unlike in the Mashreq, the French language has rivaled the Arabic for prestige status. In the midst of this rivalry, those using literary Arabic became overzealous in adhering to the strict rules of the language, for example, employing case endings even in an oral discourse on the radio. Consequently, the switch from literary Arabic to the vernacular makes a striking contrast in the Maghreb. Unlike in the formal usage, in the colloquial it is common to hear a Moroccan or a Tunisian switch from French to the local dialect within the same sentence.

In societies where a substantial segment of the population is literate, and two variants of language usage exist, the gap between the literary/written and spoken Arabic tends to diminish. With the gap disappearing, a continuum emerges, offering the speaker a rich array of possibilities. In many oral situations, the speaker uses a mixed language, neither purely literary nor purely dialectal, known as middle Arabic. This term designates a form of Arabic where both a departure from the classical norm and dialectal interferences are noted. Middle Arabic is an established form which can be found in texts starting from the 7th to the 20th century. The modern version of Middle Arabic establishes bridges between literary Arabic and dialects on one hand, as well as a closer understanding between the two large dialectal groups - the Maghreb and Mashreq. Dependent on the language skills of the speaker, the place, and the topic of discussion, a radio broadcaster may employ dialectal particles in literary Arabic texts, mainly to enhance better understanding and to create a bond with the listener. Similarly, the same broadcaster may use the passive form of the literary Arabic in a dialectal speech as well as case endings to impress his listener or to produce a certain impact. In the same sentence, the broadcaster may switch from a literary syntax to dialectal conjugation, while suppressing the most local expressions. This Middle Arabic does not constitute a variant of the language, for it lacks a grammatical coherence: we simultaneously find correct forms of the literary Arabic and deviations from these forms. We even find hybrid forms that are neither literary nor dialectal.

The deliberate use of dialect within the written text has resulted not in the dialect as a distant variant but as a level of literary Arabic. Whether in news broadcasting or the novel, this use appears every time the text is organized in reference to the first and second person, mainly in dialogue situations. When

narration is needed, the literary Arabic is invariably used. In the press, the purpose of the text determines the appropriate grammar. On one hand, normative political speeches articulate their goals in a universal language, i.e. the literary Arabic. On the other, the comments in caricature or satirical drawings are exclusively expressed in dialect. The use of dialect permits an immediate reference to everyday life and produces a dramatic impact on readers. Apart from the dialogue in the novel, the use of dialect often appears in the conclusions of texts in order to identify moral themes and to establish an affective relationship with the language.

These linguistic practices denote new mental representations. From the first known texts of literary Arabic, an intricate relationship existed between the norm, the aesthetic, and "truthful" discourse. According to these early standards, there is neither truthfulness nor beauty in the spoken language if it does not conform to grammatical norms. Speech mistakes are not only linguistic in nature, but also have ethical and ontological implications: they are considered as hideous scars and a cause for perdition according to medieval texts.

The novel's contribution has been central to the modern understanding of language, for it has produced an inversion of values. Against the prevalent concept that language is timeless, unchanging, pure, and unequivocal, the novel affirms that language is time-bound, and that the mixed forms have ethical and aesthetic value. The novel also highlights the dignity of the dialect. Reflecting a plurality of language levels, the novel tries to escape the moralizing of the conventional literary language. However, two contrary tendencies still exist: the first insists on rigorous, pure, and sacred usage of the literary Arabic; the second rejects the literary Arabic in favor of the written dialect. The former tendency is much more powerful than the latter.

From its journey across the 20th century, the Arabic language carries two remarkable traits: never in the past have the written and spoken languages been intricately intertwined; never before have the centrifugal forces of standardization affected the dialects as much as now. However, the question remains, what will become of the Arabic language in the future? If the past century has sensibly modified the modalities of functions between literary and dialectal Arabic, present for more than one and a half millennia, multiple paths remain possible. The literary Arabic is a source of fascination because of its relation to the written and to the sacred. Both economic constraints and globalization favor literary Arabic, making a common language in a vast geographic area more advantageous than multiple languages. What will therefore be the modalities of the presence of literary and dialectal Arabic in the 21st century? Will a form of Middle Arabic be the future? Will the dialects become the national languages of tomorrow? These fascinating questions cause passionate debate. Some of these questions are Euro-centric, assuming a pattern of evolution similar to Roman languages derived from Latin. But neither the constraints of the time nor the social determinations of the language are identical to those of European languages, for the future of languages does not necessarily follow the same paths.

Beginning in the 19th and early 20th centuries, as part of what is now called "the Arabic renaissance" or "*al-Nahda*", poets like Francis Marrash, Ahmad

Shawqi and Hafiz Ibrahim began to explore the possibility of developing the classical poetic forms. Some of these neoclassical poets were acquainted with Western literature but mostly continued to write in classical forms, while others, denouncing blind imitation of classical poetry and its recurring themes, sought inspiration from French or English romanticism. The next generation of poets, the so-called romantic poets, had begun to a far greater extent to absorb the impact of developments in Western poetry, and felt constrained by neo-classical traditions which the previous generation had tried to uphold. The Mahjari poets were emigrants who mostly wrote in the Americas, but were similarly beginning to experiment further with the possibilities of Arabic poetry. This experimentation continued in the Middle East throughout the first half of the 20th century. After World War II, there was a largely unsuccessful movement by several poets to write poems in free verse (*shi'r hurr*). Iraqi poets Badr Shakir al-Sayyab and Nazik Al-Malaika(1923-2007), are considered to be the originators of free verse in Arabic poetry. Most of these experiments were abandoned in favour of prose poetry, of which the first examples in modern Arabic literature are to be found in the writings of Francis Marrash, and of which two of the most influential proponents were Nazik al-Malaika and Iman Mersal. The development of modernist poetry also influenced poetry in Arabic. More recently, poets such as Adunis have pushed the boundaries of stylistic experimentation even further.

Poetry retains a very important status in the Arab world. Mahmoud Darwish was regarded as the Palestinian national poet, and his funeral was attended by thousands of mourners. Syrian poet Nizar Qabbani addressed less political themes, but was regarded as a cultural icon, and his poems provide the lyrics for many popular songs. Two distinct trends can be found in the *nahda* period of revival. The first was a neo-classical movement which sought to rediscover the literary traditions of the past, and was influenced by traditional literary genres—such as the *maqama*—and works like *One Thousand and One Nights*. In contrast, a modernist movement began by translating Western modernist works—primarily novels—into Arabic. In the 19th century, individual authors in Syria, Lebanon and Egypt created original works by imitating classical narrative genres: Ahmad Faris Shidyaq with *Leg upon Leg* (1855), Khalil Khoury with *Yes... so I am not a Frank* (1859), Francis Marrash with *The Forest of Truth* (1865), Salim al-Bustani with *At a Loss in the Levantine Gardens* (1870), and Muhammad al-Muwaylihi with *Isa ibn Hisham's Tale* (1907). This trend was furthered by Jurji Zaydan (author of many historical novels), Khalil Gibran, Mikha'il Na'ima andMuhammad Husayn Haykal (author of *Zaynab*). Meanwhile, the woman writer Zaynab Fawwaz's first novel *$usn al-'Awâqib aw Ghâdah al-Zâhirah* (*The Happy Ending*, 1899) was also influential. According to the authors of the *Encyclopedia of the Novel*: Almost each of the above [works] have been claimed as the first Arabic novel, which goes to suggest that the Arabic novel emerged from several rehearsals and multiple beginnings rather than from one single origin. Given that the very Arabic word "*riwaya*", which is now used exclusively in reference to the "novel", has traditionally conjured up a tangle of narrative genres [...], it might not be unfair to contend that the Arabic novel owes its early formation not only to the appropriation of the novel genre from Europe [...] but also, and more importantly, to the revival and

transformation of traditional narrative genres in the wake of Napoleon's 1798 expedition into Egypt and the Arab world's firsthand encounter with industrialized imperial Europe. A common theme in the modern Arabic novel is the study of family life with obvious resonances of the wider family of the Arabic world. Many of the novels have been unable to avoid the politics and conflicts of the region with war often acting as background to intimate family dramas. The works of Naguib Mahfuz depict life in Cairo, and hisCairo Trilogy, describing the struggles of a modern Cairene family across three generations, won him a Nobel prize for literature in 1988. He was the first Arabic writer to win the prize.

References

Allen, Roger (1995). *The Arabic Novel: an Historical and Critical Introduction* (2nd ed.). Syracuse University Press.

Allen, Roger (2006). *The Arabic Literary Heritage: the Development of its Genres and Criticism*. Cambridge University Press.

Ashtiany, Julia; Johnstone, T. M.; Latham, J. D.; Serjeant, R. B.; Smith, G. Rex, ed. (1990).*Abbasid Belles-lettres*. Cambridge University Press.

Auchterlonie, Paul (1986). *Arabic Biographical Dictionaries: a Summary Guide and Bibliography*. Middle East Libraries Committee.

Beeston, A. F. L.; Johnstone T. M.; Serjeant, R. B.; Smith, G. R., ed. (1983). *Arabic Literature to the End of the Umayyad Period*. Cambridge University Press.

Bosworth, Clifford Edmund (1976). *The Mediaeval Islamic Underworld: the Banû Sâsân in Arabic Society and Literature*. Brill.

El-Enany, Rasheed (1993). *Naguib Mahfouz: the Pursuit of Meaning*. Routledge.

Glassé, Cyril (2001). *The New Encyclopedia of Islam*. AltaMira Press.

Hamori, Andras (1971). "An Allegory from the Arabian Nights: the City of Brass". *Bulletin of the School of Oriental and African Studies*. Volume XXXIV.

Hashmi, Alamgir, ed. (1986). *The Worlds of Muslim Imagination*. Gulmohar.

Hassan, Nawal Muhammad (1980). *Hayy Bin Yaqzan and Robinson Crusoe: a Study of an Early Arabic Impact on English Literature*. Al-Rashid House for Publication.

Irwin, Robert (2005). *The Arabian Nights: a Companion*. Tauris Parke Paperbacks.

Jayyusi, Salma Khadra (1977). *Trends and Movements in Modern Arabic Poetry*. Volume I. Brill.

Jayyusi, Salma Khadra (1992). "The Romantic Poets". In Badawi, Mohammed Mustafa.*Modern Arabic Literature*. Cambridge University Press. .

Jones, Alan (2003). "Foreword". In Rodwell, J. M. *The Koran*. Phoenix. Logan, Peter Melville, ed. (2011). *The Encyclopedia of the Novel*. Volume I. Wiley-Blackwell.

Impact of Mal Nutrition on the Health of Child Labour: An Analysis

Sushma Kumari

Research Scholar, Department of Home Science, Magadh University, Bodhgaya

Abstract

The ILO definition of the worst forms of child labour includes work that is likely to jeopardise health and safety. Effective targeting of those child work activities most damaging to health requires both conceptual understanding and empirical evidence of the interactions between child labour and health. The aim of the paper is to review the current state of such knowledge, which is central to the design of policies that, whilst protecting children from work activities most damaging to their health, do not jeopardise the subsistence livelihood of their families. The relationships between child labour and health are complex. They can be direct and indirect, static and dynamic, positive and negative, causal and spurious. The diversity of potential relationships makes their empirical disentanglement a difficult exercise. A conceptual framework of analysis is required and important issues of measurement and of estimation must be given careful consideration. The International Labour Organisation (ILO) estimates there are 120 million children engaged in work in the developing world.

This is an alarming statistic. Not only is child labour, arguably, an infringement of the basic rights of the child, it is also potentially damaging to educational, physiological and psychological development. A first reaction might be to support a legal ban on child work. More considered opinion suggests that a legal ban is likely to have limited effectiveness given the difficulty of regulating the informal labour markets in which many children work and, furthermore, if a ban were effective, it might not be in the bests interests of children from poor families reliant upon their children's productive contribution to maintain a subsistence existence. Recent in ternational activity has focussed on efforts to prevent the most harmful forms of child labour. ILO Convention 182 calls for the prohibition and elimination of the worst forms of child labour which, besides the involvement of children in slavery, prostitution, pornography and drug trafficking, includes work that is likely to jeopardise the health, safety or morals of young persons (ILO, 1999). Children engaged in work are exposed

to a variety of hazards that have the potential to seriously damage their health. In addition to such health risks, the shear exhaustion induced by physical labour can be expected to place stress on the body and provoke illness. More than two-thirds of programmes undertaken as part of the ILO International Programme for the Elimination of Child Labour (ILO-IPEC) are directed at hazardous work or hazardous working conditions.

In an imperfect world, prioritisation of initiatives directed at the most harmful manifestations of child work is certainly appropriate, as is the inclusion of work activities detrimental to the health of the child among the worst forms of child labour. Effective targeting of those activities most damaging to health requires both conceptual understanding of how child labour and health interact and empirical evidence on the health consequences of various forms of child labour. Possession of such knowledge is central to the design ofpolicies that, whilst protecting children from work activities which are most damaging to their health development, do not jeopardise the short-term subsistence livelihood of their families. The importance of information to the successful implementation of the priority setting approach is well recognised by the ILO.

The purpose of this paper is to review current knowledge of the health consequences of child labour and to identify methodologies that have the potential to enrich the information base available for the effective targeting of health damaging child work activities. Acquisition of evidence on the health effects of child labour is not easy given the complexity of the relations hips involved. This is demonstrated by the fact that simple bivariate descriptions of the correlation between child labour and child health do not support fears, possibly well founded, that work is damaging to the health of children. For example there is no evidence of any consistent correlation between the percentage of children reporting health problems and the type of activity in which they are engaged. In five countries children working most intensively are most likely to report health problems but in another five countries this is actuallythe healthiest group of children. In seven cases, those children combining work and school are most likely to suffer illness but there are three countries in which children attending school (and not working) are the least healthy.

In summary, the relationships between child labour and health are complex. They can be multidimensional, dynamic, positive and negative, causal or spurious, and, in the former case, running from work activity to health or vice versa. The diversity of potential relationships makes their empirical disentanglement a difficult exercise. A conceptual framework of analysis is required and important issues of measurement and of estimation must be given careful consideration. These issues are examined in the remainder of this paper. A distincti on is made between relationships between child labour and health which materialise in childhood and longer run effects which may become manifest only in adulthood.

Negative Effects

Concern about the health consequences of child labour derives primarily from the belief that work increases the child's exposure to health hazards that

threaten to subject the child to illness or injury. The hazards may be obvious and threaten immediate damage to health, such as those risks arising in construction, manufacturing and mining from the use of dangerous tools and machinery and exposure to high temperatures and falling objects. Alternatively, the hazards may be less perceptible and hold longer-term consequences for health such as risks from contact with dust, toxins, chemicals and pesticides, the lifting of heavy loads and the forced adoption of poor posture. Hazards may also threaten psychological health through exposure to abusive relationships with employers, supervisors or clients (ILO, 1998). The health consequences of child labour will vary with the type of hazards to which the child worker is exposed. Variation in the nature of child work across industries and across countries means there is no one relationship between child work and health but a variety of such relationships.

A large scale ILO sponsored survey undertaken in the Philippines, found 60% of all economically active children to be exposed to hazardous working conditions: 19% being exposed to biological hazards, 26% to chemical and 51% to environmental (NSOP, 1998). Of all child workers, 24% were found to suffer work related illness and/or injury, a prevalence rate much higher than that for adult workers. Most common injuries were cuts, wounds or punctures, accounting for 69% of the total.

Body aches and pains (59%) and skin diseases (22%) were the most common work related illness. A number of factors raise the health risks which children face from work relative to adults. First, child labour tends to be concentrated in particularly dangerous industries. Globally, agriculture is by far the dominant sector of child employment, accounting for 70% of all child workers, and is an industry with a very poor record of safety, with 1 in 8 child workers suffering illness or injury. Relative to agriculture, manufacturing and wholesale/retail trade, which together account for almost 17% of all child workers, are less hazardous but, with 1 child worker in 12 in these industries succumbing to illness or injury, safety levels are far from acceptable.

Fewer child workers are located in transport, construction and mining (collectively 6.6% of the total) but extremely poor safety records in these industries - 1/6 to 1/4 child workers become ill or injured - mean that they account for a substantially disproportionate fraction of all work related child illnesses and injuries.

With respect to health hazards, work in transport, construction and mining appear to be the most hazardous forms of child labour. Marginal gains in child health and safety could be realised most easily by measures targeted at these most hazardous industries. However, given the dominance of agriculture in respect of child labour, significant advances in the average level of child health require policies to improve the safety of child work in that sector.

More detailed information on child work and health are presented in Appendix 1 for a number of countries. These tables give a break down of the incidence of health problems for working children by kind of industry and by form of employment. Not with standing national differences they confirm the patterns described above. A second factor raising the health risks faced by child labourers relative to adults derives from the fact that children often work in

informal, small scale and illegal settings which, by their very nature, are difficult to regulate. Most child labour is undertaken within the family unit. Well over 70% of all working children are found within this mode of employment for each of the countries. More surprisingly perhaps, in all but one of these countries, children working within the family account for a disproportionately high percentage of all working children with health problems. Relative to other forms of child labour, it does not appear that work for the family is as innocuous with respect to consequences for health as might be imagined.

Children working in small scale farming and manufacturing are often not given the protection promised by health and safety regulation. Even when this protection is available, it is likely to be much less effective for children since the measures are usually designed for adult, and not child, workers (ILO, 1998; Fassa et al, 2000). Hence, safety devices and clothing may not be usable by children and permissible exposure limits are usually established for adults and may not be appropriate for children. The substantial number of children worldwide working in domestic services and the sex industry are left particularly vulnerable to physical and psychological abuse. Given their physiological and psychological immaturity and the biological process of growth, children may be more vulnerable than adults to abuse and to given health risks. Children are more prone to injury through accidents and have been found to be more sensitive to noise, heat, lead and silica toxicity, and ionising radiation.

The literature is richer in hypothesising negative effects of child work on health than it is in testing these hypotheses. In the absence of comparison with the health experience of a control group of non-working children, prevalence rates of illness and injuries among working children do not constituteevidence of a deleterious effect of work on health. Studies that involve controlled comparisons tend to be small scale and rather context specific (Parker, 1997). This is understandable given that the rich array of data required in order to unravel the linkages between child labour and health makes large scale studies extremely expensive. One study of a rural part of India reports growth deficits among working boys in comparison with boys in school (Satyanararayanan et al, 1986) but other data from rural India do not support this finding (Cigno and Rosati, 2001). Fentiman etal (2001) find no growth differences between children enrolled and not enrolled in school in rural Ghana. Assuming the non-enrolled children are more likely to be working, this does not support a negative effect of work on child growth.

However, the non-enrolled children were found to suffer greater morbidity, apparently deriving from the health hazards of lake fishing, the main occupation of boys not attending school. In Bombay, the prevalence of health problems (e.g. muscular, chest and abdominal pains, headaches) among children working primarily in hotels, restaurants and construction was found to be greater than that among children in school. In summary, good evidence on the direct effects of child labour on child health is lacking. With respect to the impact of child growth rates, the evidence is mixed. There is more support for deleterious effects of labour on particular forms of morbidity related to the nature of the work undertaken.

In addition to any direct negative impact of labour on the working child's health, there may be an indirect impact on the health of siblings operating through the intra-household allocation of resources. Even without bias in a household's preferences toward its working members, a welfare maximising family unit will direct disproportionate resources to maintaining the nutritional and health status of its productive members.

This is particularly true in the context of low-income countries where productivity is most sensitive to nutrition and health status. Consequently, notwithstanding the impact of health hazards confronted in the workplace, siblings might be expected to experience lower nutritional status and greater morbidity than working children themselves. There is empirical support for this hypothesis. A study in rural Guatemala found that while participation of school-age children in farm production was not associated with a reduction in their own growth and development, younger siblings did experience growth deficits.

Ralston (1997), with data on calorie intakes from rural Indonesia, found the intra-household calorie allocation to be related to children's labour contributions. In turn, lower calorie intake was associated with higher levels of morbidity. In addition, there is a bulk of evidence indicating gender bias in the household allocation of resources (c.f. Rosenzweig and Schultz, 1982; Das Gupta, 1987; Behrman, 1988; Pitt et al, 1990). This bias may reflect a variety of social and cultural prejudices but, at the very least, the economic expediency of directing resources toward family members who bear the greatest burden of heavy labour is likely to be a contributing factor (see Rosenzweig and Schultz, 1982 and Pitt et al, 1990 for evidence). In the extreme, it might be argued that the prejudices are themselves supported by, or even a reflection of, economic expediency.

Positive Effects

The final point of the previous sub-section implies the possibility of a positive impact of child labour on child health. Whilst child labourers are exposed to health hazards they would not otherwise encounter, they also generate resources, which help maintain themselves and their families. If a positive impact of a child's labour market participation on the resources at a household's disposal is accepted, then strong empirical support for a positive impact of living standards on health can be cited to support the argument that child labour potentially affects child health positively.

In conditions of extreme poverty, this is a plausible and persuasive argument. However, several caveats are warranted. First, any positive effect of child labour on health through living standards must be offset against the deleterious effect of occupational health hazards. A child, and its family, might enjoy a few years of fruitful work before suffering an accident and the subsequent loss of both livelihood and health. This potential risk implies a difficulty for empirical work. Contemporaneous correlations between children's work and their health may reveal little of the true impact of child labour on health since those who have suffered severe workplace accidents will be recorded as currently not working and in poor health. Longitudinal, or at least retrospective,

data are required to uncover such effects. This leads to the second caveat; much of the relationship between child labour and health is likely to be dynamic. While child labour may raise family living standards and child health in the short run, the long-term health effects of working, and any corresponding loss of education, need to be considered. A third caveat concerns the hypothesis that child labour has a positive impact on household resources. This seems a reasonable proposition when children are used to supplement the labour input of their parents. However, abusive parents might use their children to substitute for their own labour. No doubt examples of this can be found, but where child labour is a widespread phenomenon, it is not plausible that it is the result of parents exploiting their offspring (Basu, 1999). The final caveat to the argument that child labour may impact positively on child health through a positive contribution to household living standards concerns the distinction between effects at the individual and aggregate level. Whilst a child's work may make a positive contribution to the family's standard of living, it does not necessarily follow that, in the aggregate, child labour raises living standards and consequently health.

A large supply of child labour can be expected to reduce market wages and may leave the economy at a low level equilibrium with a large supply of low skilled (child) labour, low wages, low education levels and poor health (see Basu, 1999). Such general equilibrium effects point to a further difficulty with the interpretation of any empirical relationships between child labour and health established from household survey data. Such micro data can only improve our knowledge and understanding of individual level relationships and are not necessarily informative of how population health would change in response to a dramatic change in the aggregate labour input of children.

Evidence on Long-run Health Effects

For the obvious reason of the strenuous data requirements, empirical examination of the long-term health consequences of child labour is limited. One small-scale study following children over a 17 year period in a rural region of India finds that children who work in agriculture, small-scale industry and services grow up shorter and lighter than those who attend school (Satyanararayanan et al, 1986). Two larger-scale studies based on different Brazilian data sets provide further support for a negative impact of child labour on health in adulthood (Kassouf et al, 2001; Guiffrida et al, 2001).

Kassouf et al use a cross-section of adults living in both urban and rural settings in north-east and south-east Brazil to examine the correlation between participation in work as a child and self-reported health in adulthood. Simple bivariate analysis reveals that the probability of reporting less than good health in adulthood rises as the age of entry into the labour force falls, although the correlation attenuates with increasing current age. The depletion of the correlation with age could be the result of selective mortality – only the healthiest survive to older ages, whether they have worked or not. In the case that child work activity and schooling are mutually exclusive, age of entry into the labour force will be extremely closely correlated with years of education and it is impossible to conclude whether a simple correlation between age at first job and health reflects a (child) work effect, an education effect or both. If some

kids combine work and school, the independent variation in the two factors allows both to be included in the analysis. Any remaining influence of age at entry to the labour force must reflect a direct effect of child labour on health. Kassouf et al find evidence of such an effect but only for males 28-47 years and females 18-27 and 38-47. The dilution of the effect suggests that either the initial correlation between child work activity and health is largely spurious, reflecting the influence of omitted education, or that a substantial proportion of the impact of child labour on adult health is indirect, operating through forgone education.

Interestingly, current household income had no additional effect on the gradient, which might indicate that the health impact of lost education operates through reduced knowledge of health production mechanisms rather than through lowering lifetime living standards. Alternatively, it could be that education is simply a better indicator of lifetime income than current income.

Conclusion

The most harmful forms of child labour certainly include those that damage the short and long run health prospects of the working child. To an extent, identification of the forms of child labour that are potentially most damaging to health is not difficult. Children working under appalling conditions in construction, mining and manufacturing face immediate threats to their health which are all too often realised. However, the majority of working children are not found in these sectors but in agriculture. While the safety record of agriculture is very far from exemplary, threats from health hazards must be set against the possibility that the working child sustains its own health by helping to maintain subsistence living standards of the family. At present, evidence on the health consequences of child work activity is limited. Illness and injury hazard rates by sector of employment describe the risks faced by the working child but, in the absence of comparison with the "no work" counterfactual, they do not provide a basis for evaluating the impact of work on health. Comparisons between the growth rates of working and non-working children in rural settings provide mixed results. There is more support for deleterious effects of work on particular forms of child morbidity related to the nature of the work undertaken.

There is also some evidence from retrospective studies (based on Brazil) of a negative correlation between work activity in childhood and health in adulthood. Interpretation of all current estimates of the relationship between child labour and health is difficult given the absence of analyses that account for the potential endogeneity of child work activity to health outcomes. If individuals born with a predisposition to poor health are also those who are most likely to engage in work as a child, correlations between child work activity and health will overstate the impact of the former on the latter. On the other hand, if healthy individuals are selected into work early as a child, the true health impact of child labour will be understated. Resolution of the endogeneity problem should be a priority of future research.

The design of effective policy requires the accumulation of more detailed evidence of the relationships between work activity in childhood and health both in childhood and in adulthood.

Future empirical work should endeavour to take account of a number of characteristics of the true relationship between child labour and health and of factors that govern the statistical relationship between the variables. There are a number of channels through which childwork activity can influence health. A direct negative effect as a result of workplace hazards and stress is obvious but there may also be indirect effects, positive and negative, operating through impacts on family living standards and education. The total (net) effect of child work on health can be estimated by examining the relation between work activity and health, while controlling for all factors, other than child work, which influence living standards and education. A more complete understanding requires disaggregation of the total effect into the direct effect of work on health and the various indirect effects. The direct effect can be estimated through the regression of work activity on health while controlling for family living standards and education. Identification of the indirect effects requires further estimation of the impacts of child work activity on family resources and the children's education.

References

Akabayashi, H. and Psacharopoulos, G. (1999): "The trade-off between child labour and human capital formation: A Tanzanian case study." The Journal of Development Studies, 35(5): 120-140.

Alderman, Harold. (2000). "Anthropometrics" in M.E. Grosh and P. Glewwe (eds.) Designing Household Survey Questionnaires for Developing Countries: Lessons from Ten Years of LSMS Experience. Oxford, Oxford University Press.

Anker, R. (2000): "The economics of child labour: A framework for measurement." International Labour Review, 139(3): 257-280.

Appleton, S. and Song, L. (1999): "Income and human development at the household level: evidence from six countries." Mimeo, University of Oxford.

Baland, J-M. and Robinson, J. (2000): " Is child labor inefficient?" Journal of Political Economy, 108.

Barrera, A. (1990): "The role of maternal schooling and its interaction with public health programs in child health production." Journal of Development Economics, 32(1): 69-91

Basu, K. (1999): "Child labor: Cause, consequence and cure with remarks on international labor standards." Journal of Economic Literature, 37: 1083-1119.

Becker, G. (1965): "A theory of the allocation of time." The Economic Journal, 75: 493-517.

Bequele A. and Myers W.E. (1995): "First Things First in Child Labour: Eliminating work detrimental to children." Geneva, ILO.

Behrman, J. (1988): " Intrahousehold Allocation of Nutrients in Rural India: Are Boys Favoured? Do parents exhibit inequality aversion?" OxfordEconomic Papers 40: 32-54.

Behrman, J.R. and Lavy, V. (1994): "Child health and school achievement: Causality, association and household allocations." LSMS Working Paper 104, Washington D.C., World Bank.

Cameron, L. (2000): " The impact of the Indonesian financial crisis on children: an analysis using the 100 Villages Data", Innocenti Working Paper No. 81, Florence, UNICEF.

Cigno, A. and Rosati, F.C. (2001): "Child labour, education, fertility and survival in rural India." Pacific Economic Review.

Themes in Early Medieval India: An Analysis of The Whole Era

Manisha Malik

Ph.D., Maharishi Dayanand University, Rohtak

Many historians, Indian and British, have tended to look at South Asian history from the point of view of the north, and defined the medieval period mainly in terms of the Muslim conquests and Islamic institutions. These did not play a major role, however, until the l3th century. Until the last 25 years, those that bothered to talk about the previous seven hundred years between the fall of the Gupta Emperors and l200 A.D. saw these centuries as a sort of preparation for the Islamic governments which followed. So these years of the early medieval period have been characterized as witnessing the degradation of the culture of the classical Gupta period and its political order. This northern-centred view dismisses the parts of the subcontinent in the south where Islamic states never established stable governments. But this view was oriented in the end more toward justifying or condemning British Rule than it was in exploring the actual historical experience of South Asia between 500 A.D. and 1200 A.D.

The focus here is on two major characteristics of the early medieval period, the structure and scale of the political forms which evolved and the gradual development of regional cultures and economies.

Some authors divide the subcontinent up into four major regions, or megaregions: south, east, central and north India. Medievalist Burton Stein has pointed to the existence of six major regions, the south, the west, the east, the north, the central and the northwest. These divisions are relevant to Stein's discussion of the kinds of states which appeared between 500 AD and 1700. He figured that about 20 kingdoms succeeded in extending their sovereignty beyond a single megaregion, if we count the megaregions as six in number. Two thirds of these were ruled by Hindu dynasties, but the most durable of these imperial states was the Muslim Mughal empire, from about the middle of Akbar's reign, around l580, to the reign of Muhammad Shah in 1730. Dominance in more than one region by almost all of these states was usually the accomplishment of a single ruler, a great conquering warrior like Pulakesin II of the seventh century Chalukyan kingdom or the mid-tenth century Krisna II of the Rashtrakutas, both of the Deccan.

Besides these 20 kingdoms which for a time at least spanned two or more large regions, there were numerous others the scale of whose authority was far

more limited, but whose duration could nevertheless be considerable. From inscriptions and literary sources we get information on over 40 royal dynasties who endured for a period in the megaregions. The chronicles of temples, royal genealogical texts, and oral traditions tell of both wealthy kings and local chiefs who attempted to achieve royal status.

The existence of so many rulers tells us that the early medieval period witnessed the emergence of new state forms, compared to the late Vedic and classical periods. There is, however, little agreement among historians about the character of these states and their form. However, the kingdom of Harsha is often taken as the typical state when scholars talk of Indian feudalism.

Harsha ruled a realm nearly as large as the Gupta kingdom during the first half of the seventh century. His capital was Kanauj, modern Kanpur, in the fertile plain between the Ganges and the Yamuna rivers, the doab. The capital had originally been at the old Mauryan capital of Patalipurtra in the eastern Gangetic basin. Here there was rich agricultural potential and the revenues from trade which entered the Gangetic Plain at this point. However, with a shift to the west came improved defence of the entire plain from the Hun tribesmen who had preyed upon the Guptas.

A set of inscribed copper-plates of 632 AD provides insight into the structure of Harsha's state. This inscription recorded a gift of land to two Brahmins by a military officer in Harsha's service.. Among the protectors of the gift were a set of political personnages in whose hands major elements of state power appeared to be vested. Some were 'great neighbors' of King Harsha, his *mahasamantas*. Others were 'great kings' (*maharajas*) who acknowlegded Harsha's overlordship. Still others served the chakravartin, as he styled himself, in various capacities, including as soldiers. Lowest among the guarantors of permanence of the gift were the local community, the 'janapada', where the gifted lands were located. Donations to Brahmins, Buddhists and Jainas before the time of Harsha had usually come from a royal prince or a provincial governor. In these copper-plates, however, the first of the dignitaries to be mentioned was the Mahasamanta who ruled a territory adjoining the core tract of the king around Kanauj. This, even though the donor of the land was a military servant of Harsha and the executor of the grant was an accountant in the king's service. Mahasamantas, or as they often also called themselves, *mahasamantaraja*, were independent rulers of realms near the core tracts of an overlord and might have paid tribute to the latter as well as providing military service. In most cases they were territorial magnates in their own rights, either by inheritance or conquest. Among them would also have been some who served kings like Harsha and were given lands to support their official duties in a manner similar to a feudal grant in Europe.

Titles and land grants were the means that higher lords expressed ties to lesser rulers in a massing of followerships. The great kingships of early medieval India were constituted by such followings. Rulers of this time spoke of their *samantachakra*, their circle of subordinates: the large the circle, the greater the lord. A lord gained a high royal rank with a large following of minor rulers who served him in some fashion and honored him in political ritual. Both superior and inferior lords enhanced their security by such arrangements. Whether Harsha's kingdom was actually less centralized than the Guptas is uncertain, but the pattern of political agreements was different.

What is clearly different between the polity of Harsha and that of the Guptas is that the Guptas had few formidable opponents within northern India and, until quite late in the dynasty, not very formidable enemies without. The contrast with Harsha could not have been greater. He was humbled by the Chalukyan king Pulakeshin II when he sought to extend his authority southward into the Deccan. Harsha's successor was immediately crushed by the king of Bengal. This opened an era of incessant conflict covering several centuries and centering on Kanauj and Harsha's rich patrimony there. During that time warlords from every direction—from Bengal, from the Deccan, from Rajasthan in the west and from Kashmir in the north—strove to hold Kanauj. Central Asian Muslims finally ended their conflicts by imposing their rule over the whole of the Gangetic region.

Elsewhere in India the centralization of the Mauryan and Gupta regimes is wholly absent. There is no question but that the states in Deccan and the south did not have administrations as describe in the arthasastra. First notice of these states came in Ashoka's edict speaking of the kingdoms to which he sent Buddhist missionaries. Here the kings of the Cholas and the Pandyans in the far south are mentioned, along with kings of Syra, Macedonia, Epirus on the Ionian coast and Cyrene in north Africa. By the early centuries of the first millenium, next to the ancient Cholas and Pandyas were the Chera kings of the south-west coast of Kerala, the Satavahanas over the entire Deccan plateau, and the Chedi rulers of Kalinga on the north-east coast of modern Orissa. Some of the minor ruling houses of the fourth century were to attain very considerably greater sovereignty by 500 AD when Guptas still ruled their core Gangetic territory: Pallava and Kadamba kings ruled over eastern and western Deccan tracts, Vakatakas over the central and northern Deccan and a set of small kingdoms were found along the Orissan coast: eastern Gangas, Nalas, Mahakantaras. By the early seventh century, when Harsha's kingdom flourished in the central Ganges, the far south had come under Pallava kings of Kanchipuram and much of the central and eastern Deccan was under the Chalukyas of Badami, Pulakesin's line. Where did these peninsular kingdoms come from? We have mentioned the impact of the Mauryan Empire on state formation—here we will elaborate on that.

The earliest peninsular kingdoms date from around the turn of the present era and appear to contain some Mauryan institutions which had emerged in two peripheral parts of Ashoka's realm. A king Kharavela established an extensive state centered on Kalinga. This you may remember as the area which Ashoka had brought into his empire with a military campaign that was so bloody that he announced that he would renounce violence. Kharavela was a Jain and though he should accordingly, it seems, have adopted the non-violence principle of that faith (ahimsa), he proved to be a masterful soldier. His conquests to the north and south brought him enormous wealth. Trade also added to the wealth of his state, whose coast was mentioned by Pliny the Elder, a Roman writer, in his work *Natural History.*

Evidence suggests, in fact, that Buddhist and Jaina monasteries consituted nodal points on a far-flung trade system linking coastal Kalinga to the interior. Kharavela had no successor, so that kingdom ceased with his death, but further south the Satavahana kingdom sprawled across the whole of the peninsula, connecting the interior centres of trade and metal production (which had emerged during the period of Ashoka) with both trade coasts. The Saravahanas

proved a longer-lived kingdom owing partly to a series of able rulers and also to the offer of more political scope to local magnates than seemed available under the Mauryas, who had appointed governors to these distant places. Trade between both of the coasts of the realm remained important according to the first century writings of the Greco-Egyptian geographer Ptolemy. And, as in the case of Kalinga earlier, Buddhist and Jaina monastic establishments were supported by royal endowments even though its rulers were Hindu. These attracted crowds of pilgrim-consumers making these institutions nodes in an extensive trade network. Trade, then, was an important basis of penninsula kingdoms and that in close association with Jaina and Buddhist institutions.

These enjoyed high prestige and prominent positions in many parts of India during the early centuries of the first millenium, but no where so much as in the Pala kingdom of Bengal during the ninth century. Hinduism had experience a comeback and further development in the emerging centers of regional culture in south India, in the Deccan and in many parts of northern India, but not in Bengal. Its Pala kings gave massive support to Buddhists of the Mahayana sect, giving it the flavor of the Tantric tradition of Bengali religious practice. From Bengal this variant was carried by missionaries to Tibet where it shaped the Buddhism there. The Bengali city Nalanda was the major centre of Buddhist learning in the eastern Gangetic region, and its educative functions were supported by income from hundreds of villages granted by Pala rulers. Buddhist scholars from South-east Asia were drawn there for instruction in Mahayana doctrines and practices. Nalanda and the contemporary center of high learning at Taxila, on the opposite side of the subcontinent, trained many of the monks that served Buddhist institutions in and beyond India. Thus, these monastaries along with Jain monastaries, were involved in state and community formation and the major commercial develoopments that were taking place in the last half of the first millenium AD. The repressions of Jains and Buddhists in the early medieval period may have resulted partly from the deep involvement of both sects in secular activities. By l000 AD both sects had been rendered marginal by the Hindu sects which were expanding in the new regional cultures of the subcontinent.

As mentioned earlier, a major characteristic of the early medieval period was the development of regional societies. The regional kingdoms had fluid boundaries. They were polities defined less by administration and alliance than by language, sectarian affiliations and temples. Within the limited regions defined by the distribution of any king's shifting suzerainty, new political, linguistic and literary and social histories took a shape that remain recognizable even in contemporary modern India. Religion was at the heart of this regionalizing process: gods, temples, inspired poets and philosophers. Expanding trade may have set off political processes with new patterns of competition, but religious doctrinal and institutional developments affected patterns of state formation and the political institutions which emerged.

Buddhism and Jainism were displaced from their towering positions after Mauryan times with considerable difficulty in some places. Only with the Islamic conquests of the 12th century, when Muslims destroyed many of their sacred places, were Buddhists in Bengal overwhelmed, as Bengalis either converted to Islam or were recruited to the worship of the Hindu god, Vishnu.

More characteristic in some ways was the experience of the Tamil Country, which proved the model for the southern penninsula. It was the Tamil variant of Hindu culture which spread as well to South-east Asia.

Religious change inevitably merged in a variety of ways with both linguistic and political development: all shaped the regionalisation process. Driving the Tamil cultural process was a deadly struggle between a new sort of Hindu worship and the religious hegemony of Buddhists and Jains, their doctrines, and the political support they had from some rulers of TAmils around the sixth century. Little is known about these kings. We have mostly hostile commentators who describe them as 'evil', but they may have been hill chiefs that extended political control over the plains of Tamil Country and patronized Buddhist and Jain institutions and teachers. Even when these so-called 'usurpers' were driven off by kings such as the Pallavas, the latter followed and supported Jainism until persuaded otherwise by teachers of a new devotional faith. The Pallava Mahendravarman (d. 630 AD) renounced his Jain affiliation and became a worshipper of Shiva, turning against and prosecuting Jains. Other Tamil rulers did the same then and later as the Shiva cult armed itself with a power theology to compete against that of Buddhist and Jains.

A major formulator of that Hindu theology was a Brahmin named Shankara (788-820 AD), who combined philosophical thinking with impressive administrative skill. To defeat the Jains and Buddhists and to brand them as heterodoxies, Shankara returned to the ancient Upanishads from which the Buddhist doctrines had evolved. Shankara offered newe explanations of salvation and of knowledge equal to those of the powerful non-Hindu sects of his time. Besides incorporating and surpassing Buddhism's doctrines, Shankara copied their institutions by establishing monastaries in many places. Four which were famous as missionary centres became especially important and their leaders became known as Shankaracharyas.

Thus, Shankara's influence was not wholly intellectual. In addition to incorporating Buddhist and Jain models for faith and organization, he also incorporated popular worship of lord Shiva, particularly songs of praise. These hymns of devotion – of overwhelming love for Shiva or Visnu – became the foundation for the new and popular cult of Hinduism that has endured until the present throughout India. Called bhakti, this form of religious devotionalism began in Tamil country during the sixth century. There had been earlier forms of devotionalism, in particular that found in the Bhagavadgita, devotional poetry to the god Krishna. This had been composed abourt the first century AD and was incorporated into the Mahabharatha about a century prior to Shankara.

Further developments of bhakti religion among Tamils were the work of poet devotees and other theologians. Between the sixth and tenth century 63 Shiva and 12 Vishnu-worshipping poets created a large corpus of Tamil devotional songs and all are revered as saints by Tamils. Theological works of doctrines for worship of both Siva and and Vishnu followed shortly as Brahmins took advantage of the intellectual base which Shankara had provided. This work protected Brahminical leadership role in religious affairs.

This popular religious development spurred the development of first Tamil and then other languages between 1000 and 1300 AD. In the 12th century bhakti hymns were composed in Bengal by the saint Jayadev, and in Mathura by Nimbarka. The latter was a south Indian Brahmin whose devotion of the god Krishna led to a missionary call that helped to make Mathura the center of the Krishna cult. Literary works along with such technical aids as grammars and dictionaries could be found in Marathi, Bengali, and several other languages. Two other literary projects were expecially important besides the bhakti songs. One genre preserved or invented temple myths about the gods sheltered in

temples, gods who were the objects of bhakti songs and devotional theology. Temples gave institutional focus to this reformed Hinduism. The other stimulous to the literature of the early medeival age were chronicles of ruling families of the period.

Temples and kings were decisive shapers of regional cultures; both institutions had the further effect of stimulating urbanization. Looking to Tamil Country for examples, we find that the Shiva temples of the sacred places of Chidambaram and Madurai became the chapel shrines of the Chola and Pandya kings respectively. Both ruling families lavished treasure for adorning the dieties and attracted a large permanent population of priests at each temples and throngs of pilgrims whose needs created the foundations for substantial urban centres. We know this from documents inscribed on the stone basements and walls of both temples and from the chronicles (*mahatmya*) praising the god in each. These inscriptions show how each diety was transformed from being a local protecting divinity by stories which assimilated them to Shiva legends found in Sanskrit puranas or earlier literature.

This process is sometimes called Sanskritization and illustrates one way the values and symbols of the Gangetic Plain spread throughout the subcontinent. Former territorial spirits were redefined to be great gods with cosmic powers. At the same time as Sanskritization was going on, however, royalization was also taking place. Chiefs who wanted the power and status of kings found that one way to legitimize their claims as chakravartins was to transform their guardian divinities into Shiva or Vishnu, deities worthy of the adoration and devotion of would-be emperors.

It is important to point out that Shiva and Vishnu were seen also as kings, as ruling gods. The human king in a region ruled on their behalf. As Kulke and Rothermund relate, the divine gods held court surrounded in their temples by sub-regional gods. These were the family gods of the human king's samantas. The sub-regional gods again rallied the village gods around them during festivals, just as headmen were occasionally invited to attend the court of a prince. The legitimacy of a human ruler was enhanced in this way. The more "royal" the cult of the territorial god, the more legitimate the claim of a king to rule that territory on behalf of the god. The bhakti cults contributed to this devotion to gods and kings in medieval India.

Temples played a major role in royal politics not only because the ruling aspect of the diety was emphasised, but because of the nature of temple ritual. Temple administrators, acting for the god, honored the men and women who endowed worships at a temple, giving gifts of land, produce or jewels. The greater the gift, the greater the honor which was given/shown as part of the ritual of worship.

The major texts outlining the ritual of temple worship are called the Agamas, the oldest of which were written in Sanskrit between the 3th and 7th centuries. Worship, called *puja*, was to be performed three to six times a day. It was done daily, but there were special pujas for special occasions and for the expiation of sins to aleviate a great problem. These rites were rites of adoration of the diety during which food was offered to him or her. Arccanai were rituals done just for the beneit of the worshipper. Puja was costly, involving washing the icon in special substances like milk and clarified butter, giving food, providing dancing to entertain the diety, dressing the icon in flowers, cloth and jewels, offering incense and making a sacrifice. The honors could be costly as well, ranging

from giving a donor the food and water left over from the puja to the silk turban worn by the diety when he went in procession.

Not just kings, but all donors received honors in the court of the god. Thus they came to share the god's sovereignty in the same way as did those men who took part in rituals organized in the courts of human kings. Donors competed for these honors in temples, as they did for honors in the courts of princes. Thus we can see how the expansion of temple worship implied also the expansion of royal values, or royal ideologies.

In the early medieval times, the kings' temples were also palaces where royal business was conducted and royal ritual enacted. The word for temple in Tamil, for example, also means palace. Royal capitals thus became or were temple-centers. Many of these capitals became the major temples of the time. Each was not only a sacred place for the royal deity, but also the place where the kings lived. Both god and king attracted subjects and devotees in large number. The care of both kinds of pilgrims and the objects of their adoration, human and divine, made each capital city an economic centre as well. To that spur to urbanization was added the imitations of the subordinates of kings, those magnates to whom the title *samanta* applied, who maintained smaller courts in the scores of kingdoms of the early medieval age. During this time, then another of India's historic urban phases took place, the third urbanization, after the first of the Indus Valley and the second of the Gangetic Plain in pre-Mauryan times.

Rich and powerful associations of urban-based corporate trade bodies in south India conducted their commerce over the whole of the peninsula and beyond to South-east Asia. The most famous of them took its name from a capital of one of the earliest of the medieval kingdoms, the Chalukyas. During the heyday of their rule over the Deccan in the seventh and eighth centuries Chalukyan kings had capitals at several places in Karnataka, including Ayyavole (modern Aihole). Taking as their name 'the 500 svamis (lords) of Ayyavole' in hundreds of stone inscriptions, partly in Sanskrit, partly in one of the southern languages, these prestigious traveling traders flourished from the ninth to the fourteenth centuries. Their inscriptions dot the entire southern peninsula, tracing an inter-regional and international trade nexus of merchants. These trade groups provided one of the conduits for translating Dravidian culture from India to South-east Asia, a spill-over and extension beyond the subcontinent of early medieval urbanization.

That the formation of cultures and states in South-east Asia was deeply influenced by India has long been recognized. Different theories give founding roles to the conquests of Indian warriors or to missionary activities of Brahmin scholars or to the penetration of Indian merchants. Each of these explanations can be supported by some evidence, but the most likely major shaper of contact between southeastern India and south-eastern Asia were the efforts of South-east Asian rulers. They discovered in India the means for creating great kingships of their own, as a result of contacts with Indian soldiers, merchants and Brahmins. The major source of this Indian modelling was Tamil country, along with others from south-eastern India. There are several indications of this. The script adopted for the earliest of inscriptions in insular and peninsular south-east Asia was the sort that prevailed in Pallava inscriptions. The sculptural tradition of south-east Asian Buddhists was adopted from Amaravati in coastal Andhra during the fifth century AD. The temple architecture in Java and Cambodia was drawn from Pallava and Chola prototypes. Later south-east

Asians took models of excellence from north-east India, during trips to Nalanda. South-east Asian monks visiting Bengal induced Bengali Buddhists, like the monk Kumara Ghose, to travel to the courts of South-east Asian kings.

Not all of the culture contact between south and south-east Asia was peaceful. The Chola king Rajendra claims in some of his inscriptions to have made conquests in the Malayan peninsula. Some historians have suggested that he was attempting to establish commercial dominance. The later introduction of Islam into Malaya, Java and Sumatra came also from south-east India.

Muslims were present in India from the time of the founding of Islam. India's west coast knew Muslims and others from western Asia as part of the commercial expansion of the early medieval period. Arab and Jewish merchants not only journeyed along this coast on the Arabian Sea, but some were granted special protection for their religions and were even freed of tax obligations. This is known from inscriptions such a one of the eighth century on copper-plates granted to the Jewish merchant-elder Joseph Rabin, at the port of Cochin. A small Jewish community continues still to live there. At about the same time another sort of Muslim presence is recorded in the form of an Arab army which conquered Sind, the ancient heartland of the Indus cities, and parts of Punjab to the east. India's Islamic period might have begun at this early time rather that in 1200 AD, except for the resistence to Arab invaders by the various kings of Kanauj such as Yasovaram around 736 and later Rajput chiefs and kings like the Gujara-Pratiharas who held Kanuauj and most of northern India until around 950 AD. Not long after that however, in the year 1000 AD, incursions began from other Muslim fighters who were not Arabs but steppe-fighters from Central Asia.

Looking back over the period 500 to 1200 we are able to see only dimly the heritage of the Gupta golden age. The early medieval period was a distinct departure in many ways and it was the pattern for future development. The regionalization of culture, of religion and of politics was the critically significant process of the early medieval age. This involved two sorts of subordinate processes. One was the extension and transformation of Sanskritic forms dating from Gupta times. Many forms, however, were adapted to local values and were brought into localized culture through modification. Simultaneously as well, local and even folk cultural elements were given Sankritic meanings. An instance of this was the 'marriage' of the protecting goddess Minakshi at Madurai in Tamil Country to Shiva. She was in a sense turned into Siva's Sanskritic wife Parvati in a temple ritual sponsored by the Pandyan kings. This sort of synthesizing of political, religious and cultural elements was a central feature of the regional process and assured that whatever unity is assumed about the classical Gupta age was forever dissolved in later times. As to which of the components of the regionalizing processes may have been the more important, or determining—political or religious or cultural—that is very difficult to decide. One can say that the ambition of local chiefs to become kings gave a boost to the royalisation of the gods and construction of temples. But if a powerful desire to worship the gods had not existed—in the bhakti movement—poeple would not have attended temple worship. We can say, too, that expanded trade and Jain and Buddhist religious activities during and after the Mauryan period gave impulses to state formation. Taxing trade gave chiefs and kings extra income.

Ambitious chiefs tried to legitimize their enlarged claims through their utilization of Jain, Buddhist, and Hindu ritual. This utilization became a process

of regionalisation in that it was necessary to mix northern symbols of divinity with local ones, since the gods of the Hindu pantheon were distant from the experience of ordinary people.

At the same time, Buddhist values supported impulses among Hindus of devotion toward dieties who were brought into the everyday life of ordinary people. The north Indian Shiva and Vishnu were joined by a relative recent addition to the Sanskritic pantheon, Krishna, and all three became the object of devotion of people who were part of the culture of the immanence of the divine. Influence from the indigenous culture of South Asia, the pre-Vedic culture, contributed to the religious change which saw the great gods inhabiting stone and metal idols in temples, making them more accessible. The worship of these idols through song and myth contributed to the popularity of literature in regional languages and to the growth of regional languages. The association of royal establishments with these temples enhanced the status of both gods and human rulers.

This period of political and cultural creativity coincided with the rapid development of commodity production, the manufacturing by hand of goods which made India's reputation in these early times as a land of fabulous wealth and elegance. This reputation attracted people to the subcontinent, feeding further the vitality of commerce within and beyond South Asia. It is often observed that Jain and Buddhist ideologies lingered so long in India because they provided a moral coloration to the practical values of merchants and moneyed men. They may also have provided an institutional framework that linked Buddhist and Jain monasteries with the high commerce of the age. Hindu temples would eventually assume that role.

Another aspect of the political and cultural development of the age was the widespread acceptance of caste as a way to incorporate disparate groups into the new states and the new links between urbanization, commerce and manufacturing. Elites in areas of fertile agriculture patronized Brahmin families, granting them rich villages and lands, in return for priestly services which would legitimize the elite, landed status. Brahmins were not only necessary to would-be kings over expanded domains; they were also interesting to the lords of villages as a way of strengthening their authority over the low status laborers who worked their rice fields. In dry land areas, where hunters and pastoralist and dry land agriculturalists held sway, Brahminical influence was not so powerful and caste had a milder impact on social formations.

Though Buddhist and Jain institutions were ultimately made marginal by first, devotional Hinduism and then by iconoclastic Islam, much in their ideologies and many of their institutions enjoyed a long life in parts of the subcontinent—as Buddhism did in Bengal and Jainism in Karnataka. The heritage of their principles lived on the reformed Hinduism of Shankara's teachings. But more impressively, Buddhism experienced a full rebirth outside of India—in Tibet and China and in South-east Asia—as a result of the work of missionaries from India, as well as the interest of travelers at the Buddhist universities at Takshisilla and Nalanda.

States and their formation in this era remains a problem because of differences among historians about whether the pre-Islamic era was, like that of Europe, feudal. How are these monarchies to be characterized? There is wide spread agreement now that none of these monarchies were centralized. There is also some agreement among historians that the samanta was an

important identifying institution of politics. Samantas are first known in the fifth century AD Gupta kingdom of Samudragupta. Here they were military, possibly tribute-paying subordinates who, nevertheless, were also independent rulers of tracts adjoining the often modest core realm of a 'world-conquoring' chakravartin. Later the same term was extended to include military servants of kings who attained a high degree of independence on lands granted for their services, hence a kind of feudalization.

If the exact characterization of the state is elusive, there are other aspects of early medieval politics about which there is more certainty. One has to do with the extent and importance of urbanizatioin. This was another of the intensive urban phases in India's development. And it gives reason to be sceptical of speaking about an Indian feudalism. Nowhere is this clearer than in the way that the city of Kanauj in the western Gangetic plain was the focus of north Indian politics for several centuries during which competing conquerors from the north, south, east and west strove to seize and hold it, because the city had become the emblem of the chakravartin. But, all over the subcontinent other cities were created as the centres of other lordships. We have evidence in, among other sources, impressive and large ruins. The study of these remains has made historical archaeology a major intellectual enterprise in modern India. The pronounced urban character of the early medieval age—produced by a combination of religious and political causes—accounts in part for the attraction of India as a permanent homeland for the Turkic steppe fighters. Cities could be dominated so as to provide the means to sustain the new institutions of Islam and a new elite of Muslim fighters and rulers.

Of the new medieval epoch that begins around 1200 AD modern Indian historians continue in the main to insist that the establishment of permanent Muslim rule over the Gangetic plain was as violent a change as the founding of British sovereighty during the middle of the eighteenth century. This interpretation, however, stems more from a focus on the modern era and its problems, than an unprejudiced look at historical sources.

The medieval age which began about 1200 AD was made possible by the sheer multiplicity of states in the subcontinent. Each was centered upon a city to be conquered and hinterlands to be ruled by Muslim horsemen of central Asia. However, even if political forms in South Asia made such conquests possible, the forces which provoked the invasions lay outside the subcontinent. It was contradictions in the wider world of Islam itself that changed the course of the Indian middle age.

References

Austin, Granville. The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford: Clarendon Press, 1966.

Basham, A.L. The Origin and Development of Classical Hinduism. Ed. and completed by Kenneth G. Zysk. New York: Oxford University Press, 1989.

Eaton, Richard M. Sufis of Bijapur, 1300-1700: Social Roles of Sufis in Medieval India. Princeton: Princeton University Press, 1978.

Habib, Irfan, ed. Medieval India, 1: Researchers in the History of India, 1200-1750. New Delhi: Oxford University Press, 1992.

Harrison, Mark. "Tropical Medicine in Nineteenth-Century India," British Journal for the History of Science [Cambridge], 25, Pt. 3, No. 86, September 1992, 299-318.

Mukhia, Harbans. Perspectives on Medieval History. New Delhi: Vikas, 1993.

Future of Print Journalism in the Time of Mobile and Internet

Tej Narayan Ram

Bureau Chief, Swaraj Khabar, Hindi Daily News Paper

The decline of newspapers has been widely debated, as the industry has faced dropping newsprint prices, slumping ad sales, the loss of much classified advertising and precipitous drops in circulation. In recent years the number of newspapers slated for closure, bankruptcy or severe cutbacks has risen, especially in the United States, where the industry has shed a fifth of its journalists since 2001. Revenue has plunged while competition from Internet media has squeezed older print publishers.

The debate has become more urgent lately, as a deepening recession has cut profits, and as once-explosive growth in newspaper Web revenues has levelled off, forestalling what the industry hoped would become an important source of revenue. One issue is whether the newspaper industry is being hit by a cyclical trough and will recover, or whether new technology has rendered newspapers obsolete in their traditional format. To survive, newspapers are considering combining and other options, although the outcome of such partnerships has been criticized. Despite these problems, newspaper companies with significant brand value, which have published their work online, have a significant rise in viewership.

Causes for Decline

The newspaper industry has always been cyclical, and the industry has weathered previous troughs. Television's arrival in the 1950s began the decline of newspapers as most people's source of daily news. But the explosion of the Internet in the 1990s increased the range of media choices available to the average reader while further cutting into newspapers' dominance as the source of news. Both television and the Internet bring news to the consumer faster and in a more visual style than newspapers, which are constrained by their physical format and their physical manufacturing and distribution. Competing mediums also offer advertisers moving images and sound. And the Internet search function allows advertisers to tailor their pitch to readers who have revealed what they are seeking—an enormous advantage.

The Internet has also gone a step further than television in eroding the advertising income of newspapers, as — unlike broadcast media — it proves a

convenient vehicle for classified advertising, particularly in categories such as jobs, vehicles, and real estate. Free services like Craigslist have decimated the classified advertising departments of newspapers, some of which depended on classifieds for 70% of their ad revenue. Research has shown that Craigslist cost the newspaper industry $5.4 billion from 2000-2007, and that changes on the classified side of newspaper business led to an increase in subscription prices, a decrease in display advertising rates, and impacted the online strategy of some newspapers. At the same time, newspapers have been pinched by consolidation of large department stores, which once accounted for substantial advertising sums.

Press baron Rupert Murdoch once described the profits flowing from his stable of newspapers as "rivers of gold", but several years later said, "sometimes rivers dry up." "Simply put", wrote *The Buffalo News* owner Warren Buffett, "if cable and satellite broadcasting, as well as the Internet, had come along first, newspapers as we know them probably would never have existed." As their revenues have been squeezed, newspapers have also been increasingly assailed by other media taking away not only their readers, but their principal sources of profit. Many of these 'new media' are not saddled with expensive union contracts, printing presses, delivery fleets and overhead built over decades. Many of these competitors are simply 'aggregators' of news, often derived from print sources, but without print media's capital-intensive overhead. One estimate put the percentage of online news derived from newspapers at 80%.

"Newspapers are doing the reporting in this country," observed John S. Carroll, former editor of the *Los Angeles Times* for five years. "Google and Yahoo! aren't those people putting reporters on the street in any number. Blogs cannot afford it." Many newspapers also suffer from the broad trend toward "fragmentation" of all media — in which small numbers of large media outlets attempting to serve substantial portions of the population are replaced by an abundance of smaller and more specialized organizations, often aiming only to serve specific interest groups. So-called narrowcasting has splintered audiences into smaller and smaller slivers. But newspapers have not been alone in this: the rise of cable television and satellite television at the expense of network television in countries such as the United States and United Kingdom is another example of this fragmentation.

With social media sites overtaking TV as a source for news for young people, news organisations have become increasingly reliant on social media platforms for generating traffic. A report by Reuters Institute for the Study of Journalism described how a 'second wave of disruption' had hit news organisations, with publishers such as The Economist having to employ large social media teams to optimise their posts and maximise traffic. Major publishers such as *Le Monde* and *Vogue* now use advanced artificial intelligence (AI) technology from Echobox to post stories more effectively and generate higher volumes of traffic.

Performance in the Market (2000–present)

United States

Since the beginning of 2009, the United States has seen a number of major metropolitan dailies shuttered or drastically pruned after no buyers emerged,

including the *Rocky Mountain News*, closed in February, and the *Seattle Post-Intelligencer*, reduced to a bare-bones Internet operation. *San Francisco Chronicle* narrowly averted closure when employees made steep concessions. In Detroit, both newspapers, *Detroit Free Press* and *The Detroit News*, slashed home delivery to three days a week, while prodding readers to visit the newspapers' Internet sites on other days. In Tucson, Arizona, the state's oldest newspaper, the *Tucson Citizen*, said it would cease publishing on March 21, 2009, when parent Gannett Company failed to find a buyer.

A number of other large, financially troubled newspapers are seeking buyers. One of the few large dailies finding a buyer is *The San Diego Union-Tribune*, which agreed to be sold to a private equity firm for what *The Wall Street Journal* called "a rock-bottom price" of less than $50 million — essentially a real estate purchase. (The newspaper was estimated to have been worth roughly $1 billion as recently as 2004.) The Sun-Times Media Group, publisher of the eponymous bankrupt newspaper, fielded a meager $5 million cash bid, plus assumption of debt, for assets last claimed worth $310 million.

Large newspaper chains filing bankruptcy since December 2008 include the Tribune Company, the Journal Register Company, the Minneapolis Star Tribune, Philadelphia Newspapers LLC, Sun-Times Media Group and Freedom Communications.

Some newspaper chains that have purchased other papers have seen stock values plummet. The McClatchy Company, the nation's third-largest newspaper company, was the only bidder on the Knight Ridder chain of newspapers in 2005. Since its $6.5 billion Knight Ridder purchase, McClatchy's stock has lost more than 98% of its value. McClatchy subsequently announced large layoffs and executive pay cuts, as its shares fell into penny stock territory. (Although McClatchy faced delisting from the New York Stock Exchange for having a share price below $1, in September 2009, it was able to overcome this threat. Others have not been so lucky. In 2008 and 2009, three other U.S. newspaper chains have seen their shares delisted by the New York Stock Exchange.)

Other newspaper company valuations have been similarly punished: the stocks of Gannett Company, Lee Enterprises and Media General traded at less than two dollars per share by March 2009, with The Washington Post Company's stock faring better than most, thanks to diversification into educational training programs — and away from publishing. Similarly, UK-based Pearson PLC, owner of the *Financial Times*, increased earnings in 2008 despite a drop in newspaper profits, thanks to diversification away from publishing.

The New York Times Company, hard-pressed for cash as its shares slid below five dollars per share, suspended its dividend, sold and leased back part of its headquarters, and sold preferred shares to Mexican businessman Carlos Slim in return for a cash infusion. But the credit rating agencies still cut the rating on Times Company's debt to junk status, and the cash crunch at *The New York Times* prompted it to threaten to shutter *The Boston Globe* unless workers made deep concessions. Even New News Corp., the diversified media holding company overseen by Rupert Murdoch, was hit, forced to write down much of the value of newspaper publisher Dow Jones & Company that it purchased for $5 billion in 2007. Apparently shelved are plans announced by Murdoch at the time of the acquisition to expand *The Wall Street Journal*'s newsroom.

One development occurred in mid 2013, when billionaire Jeff Bezos, founder of Amazon.com, paid US$250 million for *The Washington Post* and several smaller newspapers. (The *Post* company had sold *Newsweek* a few years earlier.) The purchase, which ended the more than 80-year ownership of the paper by the Graham family, was called "generous" by publisher Katharine Weymouth, who was asked to remain at the helm. When it was noted that the paper might have to run stories which are critical of Amazon.com or Bezos in the future, Bezos agreed not to interfere with the newspaper's independence. Others have said that Bezos drastically overpaid for the paper, and that late publisher Katharine Graham might not have made the sale

The deterioration in the United States newspaper market led one senator to introduce a bill in March 2009 allowing newspaper companies to restructure as nonprofit corporations with an array of tax breaks. The Newspaper Revitalization Act would allow newspapers to operate as nonprofits similar to public broadcasting companies, barring them from making political endorsements. A 2015 report from the Brookings Institution shows that the number of newspapers per hundred million population fell from 1,200 (in 1945) to 400 in 2014. Over that same period, circulation per capita declined from 35 percent in the mid-1940s to under 15 percent. The number of newspaper journalists has decreased from 43,000 in 1978 to 33,000 in 2015. Other traditional news media have also suffered. Since 1980 the television networks have lost half their audience for evening newscasts; the audience for radio news has shrunk by 40%.

United Kingdom

In the United Kingdom, newspaper publishers have been similarly hit. In late 2008 *The Independent* announced job cuts. In January the chain Associated Newspapers, now DMG Media, sold a controlling stake in the *London Evening Standard* as it announced a 24% decline in 2008 ad revenues. In March 2009 parent company Daily Mail and General Trust said job cuts would be deeper than expected, spanning its newspapers, which include the *Leicester Mercury*, the *Bristol Evening Post* and the *Derby Telegraph*. One industry report predicted that 1 in 10 UK print publications would cut its frequency of publication in half, go online only or shut in 2009.

Across the World

The challenges facing the industry are not limited to the United States, or even English-speaking markets. Newspapers in Switzerland and the Netherlands, for instance, have lost half of their classified advertising to the Internet. At its annual convention slated for May, 2009, in Barcelona, Spain, the World Association of Newspapers and News Publishers has titled the convention's subject "Newspapers Focus on Print & Advertising Revenues in Difficult Times".

In September 2008, the World Association of Newspapers called for regulators to block a proposed Google–Yahoo! advertising partnership, calling it a threat to newspaper industry revenues worldwide. The WAN painted a stark picture of the threat posed to newspapers by the search engine giants. "Perhaps never in the history of newspaper publishing has a single, commercial

entity threatened to exert this much control over the destiny of the press," said the Paris-based global newspaper organization of the proposed pact.

But there are bright spots in the world market for newspapers. At its 2008 convention, held in Gothenburg, Sweden, the World Association of Newspapers released figures showing newspaper circulations and advertising had actually climbed in the previous year. Newspaper sales were up nearly 2.6% the previous year, and up 9.4% over the past five years. Free daily newspapers, noted the WAN, accounted for nearly 7% of all global newspaper circulation — and a whopping 23% of European newspaper circulation. Of the world's 100 best-selling daily newspapers, 74 are published in Asia — with China, Japan and India accounting for 62 of those.

Sales of newspapers rose in Latin America, Asia and the Middle East, but fell in other regions of the world, including Western Europe, where the proliferation of free dailies helped bolster overall circulation figures. While Internet revenues are rising for the industry, the bulk of its Web revenues come from a few areas, with most revenue generated in the United States, western Europe and Asia–Pacific region.

Technological Change

The increasing use of the Internet search function, primarily through large engines such as Google, has also changed the habits of readers. Instead of perusing general interest publications, such as newspapers, readers are more likely to seek particular writers, blogs or sources of information through targeted searches, rendering the agglomeration of newspapers increasingly irrelevant. "Power is shifting to the individual journalist from the news outlet with more people seeking out names through search, e-mail, blogs and social media," the industry publication *Editor & Publisher* noted in summarizing a recent study from the Project for Excellence in Journalism foundation.

> *"When we go online", writes columnist Nicholas Kristof of* The New York Times, *"each of us is our own editor, our own gatekeeper."*

Where once the ability to disseminate information was restricted to those with printing presses or broadcast mechanisms, the Internet has enabled thousands of individual commentators to communicate directly with others through blogs or instant message services. Even open journalism projects like Wikipedia have contributed to the reordering of the media landscape, as readers are no longer restricted to established print organs for information.

But the search engine experience has left some newspaper proprietors cold. "The aggregators and plagiarists will soon have to pay a price for the co-opting of our content," Rupert Murdoch told the World Media Summit in Beijing, China. "If we do not take advantage of the current movement toward paid content, it will be the content creators – the people in this hall – who will pay the ultimate price and the content kleptomaniacs who triumph."

Critics of the newspaper as a medium also argue that while today's newspapers may appear visually different from their predecessors a century ago, in many respects they have changed little and have failed to keep pace with changes in society. The technology revolution has meant that readers accustomed to waiting for a daily newspaper can now receive up-to-the-minute

updates from Web portals, bloggers and new services such as Twitter. The expanding reach of broadband Internet access means such updates have become commonplace for many users, especially the more affluent, an audience cultivated by advertisers.

The gloomy outlook is not universal. In some countries, such as India, the newspaper remains more popular than Internet and broadcast media. Even where the problems are felt most keenly, in North America and Europe, there have been recent success stories, such as the dramatic rise of free daily newspapers, like those of Sweden's *Metro International*, as well as papers targeted towards the Hispanic market, local weekly shoppers, and so-called hyperlocal news. But these new revenue streams, such as that from newspapers' proprietary Web sites, are often a fraction of the sums generated by the previous advertisement- and circulation-driven revenue streams, and so newspapers have been forced to curtail their overhead while simultaneously trying to entice new users. With revenues plummeting, many newspapers have slashed news bureaus and journalists, while still attempting to publish compelling content — much of it more interactive, more lifestyle-driven and more celebrity-conscious.

In response to falling ad revenues and plunging circulation, many newspapers have cut staff as well as editorial content, and in a vicious cycle, those cuts often spur more and deeper circulation declines—triggering more loss of ad revenues. "No industry can cut its way to future success," says industry analyst John Morton. "At some point the business must improve."Overall, in the United States, average operating profit margins for newspapers remain at 11%. But that figure is falling rapidly, and in many cases is inadequate to service the debt that some newspaper companies took on during better times. And while circulation has dropped 2% annually for years, that decline has accelerated.

The circulation decline, coupled with a 23% drop in 2008 newspaper ad revenues, have proven a double whammy for some newspaper chains. Combined with the current recession, the cloudy outlook for future profits has meant that many newspapers put on the block have been unable to find buyers, who remain concerned with increasing competition, dwindling profits and a business model that seems increasingly antiquated.

"As succeeding generations grow up with the Web and lose the habit of reading print", noted *Columbia Journalism Review* in 2007, "it seems improbable that newspapers can survive with a cost structure at least 50% higher than their nimbler and cheaper Internet competitors." The problem facing newspapers is generational: while in 2005 an estimated 70% of older Americans read a newspaper daily, fewer than 20% of younger Americans did.

> *"It is the fundamental problem facing the industry," writes newspaper analyst Morton. "It's probably not going away. And no one has figured a way out."*

By 2016 social media sites were overtaking television as a source for news for young people and news organisations have become increasingly reliant on social media platforms for generating traffic. A report by Reuters Institute for the Study of Journalism described how a 'second wave of disruption' had hit news organisations, with publishers such as *The Economist* having to employ

large social media teams to optimise their posts and maximise traffic. Major publishers such as *Le Monde* and *Vogue* increasingly use advanced artificial intelligence (AI) technology to post stories more effectively and generate higher volumes of traffic.

Outlook for the Future

In 2016, for the third year in a row, the CareerCast survey of the best and worst jobs in the U.S. reports that a newspaper reporter is the worst career. It pointed to fewer job prospects because of publications closing down, and declining ad revenue providing less money for salaries. Being an over the air broadcaster was the third worst, and advertising sales is in the bottom 10. Average annual salary for print journalists is $37,200. Depending on location and circumstances, each specific newspaper will face varied threats and changes. In some cases, new owners have increased their reliance on print, not trying to rely a lot more on digital services. However, in most cases, there is an attempt to find new revenue sources online that are less based on print sales. How much further ad sales will decline cannot be predicted with accuracy.

Ultimately, the newspaper of the future may bear little resemblance to the newsprint edition familiar to older readers. It may become a hybrid, part-print and part-Internet, or perhaps eventually, as has happened with several newspapers, including the *Seattle Post-Intelligencer*, *The Christian Science Monitor* and the *The Ann Arbor News*, Internet only. In the meantime, the transition from the printed page to whatever comes next will likely be fraught with challenges, both for the newspaper industry and for its consumers.

"My expectation," wrote executive editor Bill Keller of *The New York Times* in January 2009, "is that for the foreseeable future our business will continue to be a mix of print and online journalism, with the growth online offsetting the (gradual, we hope) decline of print". The paper in newspaper may go away, insist industry stalwarts, but the news will remain. "Paper is dying," said Nick Bilton, a technologist for *The Times*, "but it's just a device. Replacing it with pixels is a better experience." On September 8, 2010, Arthur Sulzberger, Jr., Chairman and Publisher of *The New York Times*, told an International Newsroom Summit in London that "We will stop printing the New York Times sometime in the future, date TBD."

Mitchell Stephens calls for a turn toward "wisdom journalism" that will take a more evaluative, investigative, informed, and possibly even opinionated stance. But even as pixels replace print, and as newspapers undergo wrenching surgery, necessitating deep cutbacks, reallocation of remaining reporters, and the slashing of decades-old overhead, some observers remain optimistic. What emerges may be "newspapers" unrecognizable to older readers, but which may be more timely, more topical and more flexible. Less competition from other local printers will also be a major determining factor.

"Journalistic outlets will discover", wrote Michael Hirschorn in *The Atlantic*, "that the Web allows (okay, forces) them to concentrate on developing expertise in a narrower set of issues and interests, while helping journalists from other places and publications find new audiences." The 'newspaper' of the future,

say Hirschorn and others, may resemble *The Huffington Post* more than anything flung at today's stoops and driveways.

Much of that experimentation may happen in the world's fastest-growing newspaper markets. "The number of newspapers and their circulation has declined the world over except in India and China," according to former CEO Olivier Fleurot of *Financial Times*. "The world is becoming more digital but technology has helped newspapers as much as the Internet." Making those technological changes work for them, instead of against them, will decide whether newspapers remain vital — or roadkill on the information superhighway.

There will be a percentage of readers that refuse to use the Internet and electronic screens, preferring hard copies. What this percentage will be, in various places and times, remains to be seen. Some readers have too much screen time already, and enjoy going back to paper and ink at times. Some ad attempts online are blocked, unlike a paper ad. The value of print advertising is that a significant percentage of the population will see the same ad, unlike specialized Internet ads.

References

Alterman, Eric (March 31, 2008). *"Out of Print: The Death and Life of the American Newspaper"*. The New Yorker.

Baker, Russell (August 16, 2007). *"Goodbye to Newspapers?"*. The New York Review of Books.

Clifford, Stephanie (October 12, 2008). *"Newspapers' Web Revenue is Stalling"*. The New York Times. Retrieved May 3, 2010.

Fitzgerald, Mark (March 18, 2009). *"How Did Newspapers Get In This Pickle?"*. Editor & Publisher. Retrieved 2014-01-30.

Lieberman, David (March 17, 2009). *"Newspaper Closings Raise Fears About Industry"*. USA Today. Retrieved May 3, 2010.

More Newspaper Shake-ups Loom with Chapter 11*". Associated Press. February 23, 2009. Archived from the original on February 27, 2009. "Freedom Communications Files for Bankruptcy Protection"*. The New York Times. September 9, 2009. Retrieved May 3, 2010.

Morton, John (October–November 2007). "Buffeted: Newspapers Are Paying the Price for Shortsighted Thinking". American Journalism Review.

"Newspaper Overview". idio. June 28, 2009. *Archived from the original on July 4, 2009.* Retrieved 2009-07-14.

Ovide, Shira; Adams, Russell (March 19, 2009). *"San Diego Paper Lands Fire-Sale Buyer"*. The Wall Street Journal.

Plunkett, John (November 24, 2005). *"Murdoch Predicts Gloomy Future for Press"*. The Guardian. London. Retrieved May 3, 2010.

Richard Campbell, Christopher R. Martin, Bettina G. Fabos (2008). *Media and Culture with 2009 Update.* Macmillan. p. 307. ISBN 978-0-312-47824-7. Retrieved March 27, 2009.

Saba, Jennifer (March 16, 2009). *"Specifics on Newspapers from 'State of News Media' Report"*. Editor & Publisher. Archived from the original on March 20, 2009. Retrieved 2009-03-17.

Seamans, Robert; Zhu, Feng (February 2014). *"Responses to Entry in Multi-Sided Markets: The Impact of Craigslist on Local Newspapers"* (PDF). Management Science. 60 (2): 476–493. doi:10.1287/mnsc.2013.1785.

"The Newspaper Economic Action Plan: *A sense check". idio. June 4, 2009. Retrieved 2009-07-14.*